चतुरसेन का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य-१

# बाहर भीतर

आचार्य चतुरसेन

# प्रकाशकीय

आचार्य चतुरसेन का कहानी-साहित्य में जो विशिष्ट स्थान है उससे हिन्दी के पाठक भली भांति परिचित हैं। उन्होंने १६०६ से लिखना आरम्भ किया था और अन्त तक लिखते रहे। आधी सदी के अपने दीर्घकाल में उन्होने लगभग साढ़े चार सौ कहानियां लिखीं, जिनमें अधिकांश अपने कला-वैशिष्टच के लिए सुविख्यात हो गईं। शैली की दृष्टि से तो आपका नाम हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में आदर से लिया जाता है।

आचार्यजी की कहानियों के दो-तीन संग्रह बहुत पहले निकले थे, परन्तु उनका सारा कहानी-साहित्य एक जगह संकलित नही हो पाया था। यह एक बहुत बड़ा अभाव था, जिसकी पूर्ति के लिए आचार्यजी के ही जीवन-काल मे उनके समग्र कहानी-साहित्य को पुस्तक-माला के रूप में प्रकाशित करने की एक रूपरेखा हमने बनाई थी। इतना ही नही, कहानियों का संकलन-सम्पादन भी उनकी देख-रेख मे शुरू हो गया था और इस माला के लिए उन्होने स्वयं 'कहानीकार का वक्तव्य' भी लिखा था (जो इस सग्रह के प्रारम्भ में दिया गया है); किन्तु दुर्भाग्यवश इस बीच उनका देहावसान हो गया।

सम्प्रति, हमारे सामने पहली आवश्यकता यह थी कि लेखक का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य प्रामाणिक रूप से एक जगह उपलब्ध हो सके, जिससे हिन्दी कथा-साहित्य के पाठक आचार्यजी की कहानी-कला का रसास्वादन और यथेष्ट अध्ययन कर सकें। इसके लिए आचार्यजी के निर्देशों के अनुसार, उनके छोटे भाई श्री चन्द्रसेनजी ने अथक परिश्रम से इस महान लेखक की, पत्र-पत्रिकाओं व पाण्डुलिपियों में बिखरी हुई सामग्री को संकलित तथा सम्पादित किया है, जिसे हम क्रमशः पुस्तक-

माला के रूप में प्रकाशित करने जा रहे है।

हरएक कहानी के ऊपर संक्षिप्त टिप्पणी दी गई है, आशा है, इससे पाठकों को कहानी की पृष्ठभूमि जानने में सुविधा होगी।

आचार्यजी की कहानियों को साधारणतया निम्न विषयानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है-—मुगल, बौद्ध, ऐतिहासिक, राजपूती, सामाजिक, समस्या, राजनीतिक, वीरता, भाव, प्रेम, कौतुक और पारिवारिक।

हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक-माला हिन्दी-साहित्य के एक अभाव की पूरक होगी। यह विद्वानों, कथा-साहित्य के विद्यार्थियों तथा रस के इच्छुक पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

# क्रम

# अपनी कहानियों के सम्बन्ध में

मेरी कहानियों की हिन्दी-साहित्य में बहुत कम चर्चा हुई है। शूरवीर समालोचकों ने एक प्रकार से मेरा बायकाट-सा ही कर रखा है। लुत्फ यह है कि ये समालोचक न तो कहानियां पढ़ते हैं, न पढ़ना जानते हैं। इधर-उधर दूसरे आलोचकों की नकल अपने श्रीमुख से भी कर देते हैं। मैं एक ढीठ लेखक हूं और इन समालोचकों की योग्यता से खूब वाकिफ हूं। अत. मैं इनकी ओर आंख उठाकर देखता तक नही। न इनकी राय की कानी कौड़ी के बराबर मैं परवाह करता हूं। कहानिया मैं अपने पाठको के लिए लिखता हूं; और मेरे पाठक मेरी कहानियों से बहुत खुश हैं, यह मुझे पता लगता रहता है। बहुत दिन हुए एक समालोचक-पुङ्गव ने मेरी किसी कहानी को चोरी का माल शिनाख्त किया था, और मुझपर यह मुकद्दमा खड़ा किया था कि मूल कहानी का अंग-भंग करके मैंने उसे कुत्सित कर दिया है। यों तो मैं आक्षेपों का उत्तर देने का आदी नही हूं, पर उस बार मौज में आकर मैंने इन आक्षेपक महोदय का आरोप बिना सबूत के ही स्वीकार कर लिया था, और स्वेच्छा से मृत्यु-दण्ड की मांग की थी। परन्तु मेरी एक शर्त थी कि कहानी के अंग-भंग करने के अपराध में सज़ा-ए-मौत को मैं तभी स्वीकार करूंगा जबकि सुयोग्य समालोचक मेरी विधवा लेखनी का पाणिग्रहण कर उसका सौभाग्य सलामत रखें। अफसोस है, फिर वे मैदान में आए ही नही, और मैं अभी तक कागज़ों की बर्बादी करने के लिए ज़िन्दा हूं।

सन् १९१७ की बात होगी। उन दिनों मैं बम्बई में प्रैक्टिस करता था। तभी

मैंने अपनी कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूं' लिखकर दुलारेलाल भार्गव को लखनऊ भेजी, जो आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध हुई। 'सुधा' उन्होने तब निकाली ही थी। एक दिन मुझे उनका पोस्टकार्ड मिला। लिखा था, 'आपको यदि नागवार न गुज़रे तो हम कहानी का पारिश्रमिक आपको देना चाहते हैं।' पाठक मेरी खुशी का अनुमान न लगा सकेंगे। यह एक ऐसी आमदनी का सीगा खुल रहा था जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। अब तक तो मैं इसीमें खुश था कि मेरी रचनाएं छप रही हैं। तब मैं 'प्रताप', कानपुर में ही लेख भेजता था, पर उसने कभी एक धेला भी पारिश्रमिक नहीं दिया था। अतः कार्ड का मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि 'पुरस्कार यदि मुझे काट न खाए तो मुझे किसी हालत में उसका भेजा जाना नागवार न गुज़रेगा।' कुछ दिन बाद ही पांच रुपये का मनीआर्डर मिला। उस दिन मैंने सपत्नीक जशन मनाया और कई दिन उन पांच रुपयो का हम लोगों को नशा रहा। उसके बाद श्री सहगल ने पहले दो रुपये, फिर चार रुपये पृष्ठ का निर्ख मुकर्रिर कर दिया और मेरी कहानियां मेरी एक आंशिक आमदनी का ज़रिया बन गईं। मैंने भी अब कहानी लिखने की ओर ध्यान दिया।

सन् १९०६ और ७ के बीच जब मैंने लेखनी को छुआ, तो वह काल आज के काल से सर्वथा भिन्न था। देश नीद से जागकर चौकन्ना हो रहा था। बंग-भंग पर बंगाली तरुणों ने पहली हुंकार भरी थी—और पंजाब-केसरी लाला लाजपत-राय और सरदार अजीतसिंह को मांडले में देश-निकाला दे दिया गया था। मुझे याद है, लालाजी के देश-निकाले पर मेरी पहली कविता बम्बई के श्री बैंकटेश्वर ? समाचार में छपी थी। उन दिनों मैं पांचवीं या छठी कक्षा में पढ़ता था। बंगवासी और भारतमित्र में बंग-विप्लव की कथा मैं तब बड़े चाव से पढ़ता था। बहुधा मैं उन विषयों पर कविता लिखता रहता था। इन्हीं दिनो मेरे हाथ मेवाड़ के इतिहास की एक पोथी आ लगी थी। उसका तो मैं नित्य पाठ करता था। इससे मेवाड़ की वीरगाथा की छाप मेरे हृदय में घर कर बैठी और मैं वीररस की कविता कर-करके मित्रों को भेजने लगा। पिताजी आर्यसमाजी और समाज-सुधारक थे। उनके काम करने के ढंग बड़े ओजस्वी और प्रभावशाली होते थे। उनका मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा उससे मैंने कुरीतियों के विरुद्ध कलम उठाई। मेरा ख्याल है, सबसे पहले मैंने 'हिन्दुओं की छाती पर जहरीली छुरी' नाम की एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी, जिसमें विधवाओं की हिमायत थी। पीछे यह पुस्तिका चालीस-

पचास हज़ार की संख्या में छपी। बहुत सुधारकों ने उसे छापकर मुफ्त बांटा। इससे मेरा उत्साह बढा और मैंने पहली कहानी 'सच्चा गहना' लिखी, जो प्रयाग की गृहलक्ष्मी में छपी। इसके बाद सामाजिक कुरीतियों पर मैं बराबर लिखता रहा। कविता मेरी छूट गई और गद्य मेरा सतेज हो गया। राजपूत-जीवन से मैं अधिक प्रभावित रहा, इससे मैं जब-तब राजपूत-जीवन और कुरीति-निवारणमूलक छोटे-छोटे गद्य-काव्य और कहानियां लिखने लगा। सन् १२ के बाद 'प्रताप', कानपुर; 'कर्मवीर', खडवा; 'प्रभा', कानपुर; 'शारदा', नागपुर, 'सुधा', 'माधुरी', लखनऊ मे तथा इलाहाबाद के 'चांद' में तेज़ी से लिखना शुरू किया; और अब अपनी रचनाओं को इन पत्रो में छपी देखने को मैं बेचैन रहने लगा। 'प्रताप' खास तौर पर मेरे वीररस भरे गद्य-काव्यों को छापता था। 'चांद' कुरीति-निवारणमूलक कहानिया और लेख छापना पसन्द करता था। इस समय तक मुझे न तो अपनी रचनाओ का कुछ साहित्यिक मूल्य ही ज्ञात था, न मैं कला के सम्बन्ध में कुछ समझता था। लिखने की परिपाटी भी मेरी आप ही विकसित होती जा रही थी। यह तो मुझे बहुत बाद में पता चला कि उस काल की लिखी गई कुछ चीज़ें साहित्यिक दृष्टि से काफी वज़नी मानी गईं।

मैं नहीं जानता कि दूसरे लोग कहानियां लिखने की प्रेरणा कहा से पाते थे, परन्तु मैं तो कहानी की टोह में आसपास चारों ओर जासूसी नजर से देखने लगा। बहुधा मित्रों और परिचितो के चरित्रो पर ध्यान करता। प्लाटों की टोह में चौपाटी के चक्कर लगाता, परन्तु यह बात मेरे ध्यान में भी न आई कि मुझे अन्य लेखको की कहानियां पढ़कर कुछ प्रेरणा लेनी चाहिए। जब-तब कोई कहानी मिली तो पढ़ ज़रूर लेता था, पर उसपर मैंने ध्यान कभी नही दिया। मेरी आसक्ति इतिहास की ओर ज़रूर थी। मै बचपन ही से प्राचीन गौरवमय चरित्रों को चाव से पढता रहा हूं। अतः मैं तुरन्त ही राजपूत-चरित्र पर कलम चलाने लगा और गम्भीर होने पर बौद्ध युग तक जा पहुंचा।

राजपूत-चरित्र पर मेरी कहानियों मे मेरा तरुण रक्त है। पहले जब मैं अपने को जन्मतः क्षत्रिय समझता था, तब ऐसा प्रतीत होता था जैसे मै अपनी ही गुण-गरिमा गा रहा हूं। वास्तव में राजपूत-जीवन पर जो मेरा मन केन्द्रित हुआ, वह केवल इसलिए नही कि राजपूत पीड़ित और व्यथित थे, अपितु मेरा मन राजपूत-जीवन के प्रति कुछ ममता से भर गया था। ऐसा कुछ लगता था कि

जैसे ये हमारी पूर्वजो की गाथाएं हैं। इसीसे राजपूत-जीवन पर मेरी कलम काफी तीखी चली।

जीवन एक ज्योति है, उसमें ऊष्मा कम है और प्रकाश अधिक। जहां प्रकाश कम और ऊष्मा अधिक है, वह ज्योति नही ज्वाला है, जो जीवन को भस्म कर देती है। वीरत्व उस ज्योति की लौ है। जीवन का सच्चा सुख वीरत्व में है। वीरत्व में अमरता ओतप्रोत है। नश्वरता देह में है। देहाभिमान ही आत्मा को नश्वर बनाता है। देहाभिमान ही भौतिक है, क्षणभंगुर है। जो कोई देहाभिमान को त्याग देता है वही अमर होता है। देहाभिमान को त्यागने के अनेक रूप हैं। परन्तु क्षत्रियगण जो युद्धक्षेत्र में देह-त्याग करते हैं, वे सबसे महान हैं। त्याग श्रेष्ठ है, पर सर्वश्रेष्ठ त्याग शरीर का त्याग है, जिसे राजधर्म में युक्त क्षत्रियगण नित्य करते हैं। शरीर का त्याग बिना देहाभिमान को त्याग किए नहीं होता। शरीर-त्याग से ऊंचा त्याग बहुत दुर्लभ है। उसका रूप है—शरीर के भीतर आत्मा को बद्ध रहने पर भी आत्मा शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप हो जाए। ऐसा बहुत कम होता है और जहा होता है, वह पुरुष विदेह या जीवनमुक्त हो जाता है।

परन्तु वीरत्व की रूपरेखा भिन्न-भिन्न हैं। युद्धक्षेत्र मे शस्त्र लेकर शत्रु को मारते हुए मरना आकृष्ट कोटि का वीरत्व है। ऊंची कोटि की वीरता और ओज तो वह है कि शत्रु को क्षमा करते हुए पापो की शान्ति और धैर्य से आहुति देना। धैर्य और उदात्त रीति से सहिष्णुतापूर्वक प्राणत्याग ही सर्वाधिक शौर्य और वीरता समझा जाएगा। राजपूतों का जीवन पृथ्वी के सब योद्धाओं से अद्भुत रहा है। उनके ओज और तेजपूर्ण जीवन में राजपूत स्त्रियों का जितना सहयोग रहा है, उतना कदाचित् ही पृथ्वी की किसी जाति की स्त्रियो का रहा हो। स्त्रियों के ये असाधारण साहसिक कार्य केवल उनके आत्मसम्मान की भावना के आधार पर होते थे। कर्तव्य, स्थैर्य, आत्मगौरव और अप्रतिम ओज ही उनका मार्ग रहा। राजपूत मृत्यु के व्यवसायी जीवित नर-नाहर थे। उन्होंने अमर जीवन के सिद्धान्तो को समझ लिया था। वे मृत्यु से कभी नही डरे, वृद्ध होने पर कभी पुराने नही हुए। क्रोध और हास्य के वे अधिष्ठाता थे, दैन्य और रुदन उनके पास न था।

'जैसलमेर की राजकुमारी', 'कुम्भा की तलवार', 'हठी हम्मीर', 'सिंहगढ़-विजय' ऐसी ही कहानियां हैं। 'राजपूत बच्चे', 'स्त्रियो का ओज' और 'मरी खाल की हाय' में जो छोटे-बड़े स्केच राजपूती जीवन के इतने सजीव बन गए—वह केवल

अन्तर्वेग के ही कारण। इनमें मैंने परिश्रम कुछ ऐसा नही किया।

मुगल-चरित्र पर मेरी कलम अपने-आप ही रपट पड़ी। राजतूतो का वर्णन करते-करते मैं उधर झाकने लगा था। वास्तव में यह एक प्रतिक्रिया ही कहना चाहिए। परन्तु मेरा उद्देश्य इसी समय प्रचार-भावना से हट गया। मानव-मन के अन्तर्द्वन्द्व के रेखाचित्रो पर मेरा ध्यान गया। यही कारण मेरे साहित्यिक जीवन मे आने का हुआ। सन् १६१७ में मैंने अपनी प्रसिद्ध मुगलकालीन कहानी 'दुखवा मैं कासे कहू' लिखी। इसके बाद 'दे खुदा की राह पर', 'सोया हुआ शहर', 'लालारुख', 'नवाब कुदसिया बेगम', 'बार्वाचन' आदि कहानियां जो मैंने लिखीं, उनमें मैंने शुद्ध सात्विक भावदर्शन और चरित्र-चित्रण के साथ मानव-मन के अन्तर्द्वन्द्व का प्रदर्शन किया। मुस्लिम संस्कृति के प्रति क्षोभ का कुछ भी अंश उसमें न रहा।

इस समय तक भी मेरे रक्त में आर्यसमाजी प्रचारवाद था, इसलिए सामाजिक प्रश्नों पर जहां व्यंग्य दरकार होता, मैं कहानी लिख डालता। मेरी कहानी के पीछे कला न होती। रूढ़िवाद के विपरीत क्रोध और बेहद असन्तोष होता। इससे मेरी कलम आप ही आग उगलने लगी। उसके लिए मुझे ज़रा भी प्रयास नही करना पड़ा और लोगो ने मुझे अनायास ही 'लौह लेखनी का धनी' की उपाधि दे डाली। याद आता है, इस नाम से सबसे प्रथम मुझे श्री सहगल ने पुकारा। उन दिनों राजपूती ओज पर छोटे-छोटे गद्य-काव्य मैं 'प्रताप' में लिखता था। पता नहीं—कहा से वे हीरे, मोती, जवाहर पाताल फोड़कर निकल आते थे। उनमे ऐसी ज्वाला और तड़प होती थी कि उधर मेरी कलम का प्रवाह चलता रहता था, इधर आखों में सावन-भादों की झड़ी लगी रहती थी। यह गन्दी जनानी आदत अभी तक मुझमे है। इसलिए तभी से मेरी यह आदत पड़ गई है कि मैं कहानियां किसीके सामने दिन में नहीं लिखता। या तो बन्द कमरे में लिखता हूं या रात को दो बजे; जब अपनी दुर्दशा का अकेला मैं ही दर्शक होता हूं।

इतिहास मे अभिरुचि मेरी प्रथम ही से थी। अब ज्यों-ज्यों मेरा अध्ययन गम्भीर होता गया—मैं भारत की प्राचीन संस्कृति का पुजारी होता गया। इसी समय बौद्ध ग्रन्थों में मुझे अम्बपाली की एक छोटी-सी चर्चा मिली, जब बुद्ध उसकी बाड़ी में ठहरे थे। और मैंने बौद्ध जीवन पर पहली कहानी 'अम्बपाली' लिखी, जो 'चांद' में शायद सन् १६२४-२५ में छपी। इसके बाद अम्बपाली पर

हिन्दी में कई कहानियां लिखी गईं और उपन्यास भी एक-दो लिखे गए। अम्ब-पाली हिन्दी-साहित्य की एक चर्चा का विषय बन गई। फिर वह काल भी आया जब मैंने अम्बपाली के चरित्र को लेकर 'वैशाली की नगरवधू' लिखी। यह मेरे हाथों साहित्य का शृंगार था, जैसा मैं कर सकता था। जैसा सजा सकता था, वैसा मैंने वैशाली की नगरवधू के रूप में साहित्य-शृंगार किया।

नगरवधू को जब मैंने समाप्त किया, तभी मैं समझ गया था कि साहित्य-कार का काम इतिहास की विवेचना करना नही है। साहित्य का सत्य जीवन के सत्य से पृथक् है। इतिहास जीवन का सत्य है। इसलिए साहित्य के सत्य में और इतिहास के सत्य मे तादात्म्य नही हो सकता। इतिहास का सत्य चिर सत्य है। इसका अभिप्राय है कि अमुक काल में ऐसा हुआ, परन्तु साहित्य का सत्य स्थिर सत्य है। उसका अभिप्राय यह है कि अमुक काल में ऐसा होता था। इसीपर से मैंने नौ निर्दिष्ट रसो के बाद एक अनिर्दिष्ट रस 'इतिहास रस' की स्थापना की। इसका अभिप्राय यह है कि साहित्यकार इतिहास के तथ्यो को यथावत् वर्णन करने के लिए बाधित नही हैं। वह अपनी कल्पना और भावनाओं का पूरा विकास कर सकता है। बिना इसके साहित्य का सत्य स्थिर नही रह सकता। नगरवधू में मैंने काफी कल्पना की उड़ानें भरी है। कहना चाहिए, उसमें इतिहास का केवल रस ही रस है, स्वाद ही स्वाद है, शेष तो सब कुछ कल्पना है, भावना है, शृंगार है, और जीवन की विविध व्यापक व्यंजनाएं हैं, धारणाएं हैं। 'सोमनाथ' में आकर और भी यह भाव व्यक्त हो उठा है। गजनी के महमूद ने सोमनाथ पर अभियान किया था। उपन्यास में यह तथ्य तथा कुछ नाम ही ऐतिहासिक हैं, शेष सब कुछ कल्पना है। परन्तु उस कल्पना का आधार मनोरंजन नहीं है; जीवन की गम्भीर व्याख्याएं हैं। शोभना, फतहमुहम्मद, दामो महता, महमूद और अन्य पात्र गहन मानवीय तत्त्वों की अभिव्यक्ति करते हैं। उनमें त्याग है, तप है, शौर्य है, राजनीति, धर्मनीति और कूटनीति के भारी-भारी यन्त्र है। जातियो मे उत्थान-पतन, विनाश और विलय के रेखाचित्र हैं। मैंने चेष्टा की है कि पाठको के मन पर इन चरित्रों की गहरी छाप पड़े और पाठक तनिक भी कलुष मन में यहा से न लेने पाएं।

मेरे मन में क्रोध बहुत है, तीव्रता भी कम नही। कलुष का भी अन्त नही। परन्तु साहित्य-सृजन में तो मैं केवल दो ही वस्तुएं काम में लेता हू—धैर्य और न्याय। किसी भी दशा में मैं इनसे इधर-उधर नही होता। अपनी सम्पूर्ण चेतना

से मैं शक्ति-भर सावधान रहकर ही कलम चलाता हूं।

अब यद्यपि मैंने अपनी शैली बदल दी है और लिखने से प्रथम मैं अध्ययन करने लगा हूं; तब लिखने से प्रथम मैं अध्ययन बन्द कर देता था। मुझे भय रहता था कि कही दूसरो की भावना मेरी लेखनी में न आ जाए। मेरी इस आदत के कारण ही कहानी लिखना मेरे लिए दुरूह हो उठा। क्योंकि अपने मष्तिक की कहानी लिखने के लिए चरित्र, जीवन, स्वभाव, मानसिक घात-प्रतिघात के कोमल दाव-पेच और भाव-विभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना पड़ता था। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मेरे वैद्यक पेशे ने भी मुझे इस काम में बहुत मदद की। इस पेशे के कारण सर्वसाधारण के गोपनीय और रहस्यपूर्ण चरित्र तो मेरे सामने आते ही थे, राजा-महाराजाओं और करोड़पति सेठों के घरों के बड़े-बड़े छिद्र भी मुझे मालूम होने लगे। बम्बई जैसी महानगरी। वहा मैं रहता था श्रीमन्तों के शीर्षस्थल पर। मकान का किराया ही पौने चार सौ रुपया मासिक देता था। यह आज की बात नही; चालीस वर्ष पुरानी बात है। सौ नित नये शिगूफे मेरे सामने खुलते थे। एक तरुणी रानी साहेबा ने तो मुझे अपनी कोठी पर बुलाकर कमरे में बन्द कर दिया और कहा, "छुट्टी तब मिलेगी, जब मेरी सौत को अधी या पागल कर दोगे।"

एक श्रीमन्त करोड़पति ने पचीस हज़ार की गड्डी मेरी आंखों के सामने रख दी थी—इसलिए कि मैं उनकी सौतेली मां को विष दे दू, जिसकी चिकित्सा बड़े ही यत्न से उन्होंने मेरे सुपुर्द की थी। एक छत्रपति राजा ने तो अपनी पत्नी और पुत्र को ही साफ कराना चाहा था, जिससे वे अपनी उपपत्नी के पुत्र को वैध उत्तराधिकारी बना सकें। एक राजा साहब ने अपने छोटे पुत्र को, जो दूसरी रियासत पर गोद गया था, उस रियासत का झटपट स्वामी बनाने के लिए—गोद लेने-वाले रुग्ण राजा और उसकी पत्नी को ही साफ कराना चाहा था और इन कामों के लिए कितनी भारी-भारी रकमें पेश की गई थी; आप इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

उस वक्त बुद्धि ने साथ नहीं दिया, नही तो आज के दिन न देखने पड़ते—जब लेखों के पारिश्रमिक की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। लांखो की सम्पत्ति हो चुकी होती। परन्तु मुझे तो ऐसा कोई शिगूफा मिलते ही रुपया फांसने की नहीं, उसपर एक कहानी लिख मारने की तलाबेली उठ खड़ी होती थी। यह कहना

व्यर्थ है कि ऐसी भंडाफोड करनेवाली कई कहानियां लिखने के कारण मेरे अनेक श्रीमन्त ग्राहकों ने नाराज़ होकर मुझे अपने यहा बुलाना ही बन्द कर दिया। पाठक यदि ऐसी दो-चार कहानियों का मज़ा लूटना चाहते है तो मेरी 'ठकुराइन', 'अकस्मात्', 'कन्यादान', 'मुहब्बत', 'जैण्टिलमेन' आदि कहानियां पढ़ देखे। सबसे अधिक कहानिया मैने 'चांद' मे लिखी। फिर भी उनकी सख्या बीस-पचीस से अधिक नही होगी।

इन कहानियो मे मैने बहुत परिश्रम किया। मैं नही जानता कि चोटी के लेखको की क्या शैली है. परन्तु अपनी एक कमजोरी तो मै कहूंगा ही कि अपनी कहानी के साथ मैं बहुत काल तक रहता हूं। मै उसमें डूबता हू। उसे विलमुल कर डालता हूं। फिर उसे रस्सी की भाति उमेठ डालता हूं। इसके बाद उसे रुई की तरह धुनता हूं। कहानी के साथ ही अपने हृदय और मस्तिष्क की भी मै यही गत बना डालता हू। फिर कहानी और मै एक हो जाते है। तब मैं उसके साथ रोता, हसता, गाता और नाचता हू। कहानी के पात्रों को जब इच्छा होती है, मुझसे सलाह लेते है, और कही मेरी गाडी अटकती है, तो मै उनकी सलाह लेता हू।

इस प्रकार मेरी कहानी तैयार होती है और मैं उसके नीचे दस्तखत करके सम्पादक के पास भेज देता हू। प्राय: पत्रकार आंधी की भाति तकाज़ा करते रहते हैं; खास करके जो मज़दूरी नकद देते है या पेशगी भेजते है, परन्तु इनके तकाज़ो का मेरे अन्धेर दरबार मे कोई मूल्य नही। कभी-कभी मुझे एक कहानी लिखने मे एक-एक वर्ष लग जाता है। 'चाद' में प्रकाशित 'जीवनमृत' कहानी एक वर्ष मे पूर्ण हुई थी। उसी पत्र में प्रकाशित 'पतिता' ने आठ महीने लिए थे। 'अम्बपाली' ने छः मास खर्च कराए थे; और 'उपगुप्त' तथा 'प्रबुद्ध' ने आठ-नौ मास लिए थे। 'तन्मय' मेरी चार-पांच पृष्ठो की छोटी-सी कहानी है। वह सात-आठ बार लिखी गई और चार मास में पूर्ण हुई। 'माधुरी' की 'जीजाजी' दो मास में खत्म हुई थी। 'द्वितीया' ने पांच मास और 'नवाब ननकू' ने ढाई मास लिए थे।

तब क्या इतना समय खोने का कारण आलस्य है? मेरे अति घनिष्ठ मित्र तक यही विश्वास करते है, पर मैं कहानी के अतिरिक्त अन्य सब विषयो पर, जिनमें मेरी गति है, अपने नित्य के सब काम करते हुए, फुलस्केप के पचास पृष्ठ दैनिक लिख सकता हूं और प्राय: लिखता ही हू।

यद्यपि अपनी कहानियों के साथ चिरकाल तक रहना मैंने अपना दोष माना

है, परन्तु जब मै इस सुख का, जिसका अनुभव अपनी कहानी के पात्रो के साथ रहते करता हू तथा जो भावी प्लाट के सम्बन्ध में उनसे सलाह-मशवरा करने, उनके साथ रोने ओर हसने मे आनन्द आता है, वह वर्णनातीत है।

कभी-कभी अत्यन्त साधारण-सी बात पर उत्कृष्ट कहानी तैयार हो जाती है। 'नवाब ननकू' मेरी उत्कृष्ट कहानी है, परन्तु उसकी मूल छाया मुझे एक मोटर ड्राइवर से मिली जब उसका-मेरा कुछ घण्टों का सहवास हुआ था। 'तिकड़म', 'ठाकुर साहब की घडी', 'प्राइवेट सेक्रेटरी' और 'मरम्मत', 'अकस्मात्' एक ज़रा-सा सूत्र मिलते ही एक ही सिटिंग मे लिखी गई है। एक-दो कहानिया कुछ स्त्रियो को देखकर ही एकाएक प्रेरणा पाकर लिखी गई है। 'पानवाली' और 'दे खुदा की राह पर' ऐसी ही कहानिया है।

कुछ कहानियो के साथ मेरे अपने जीवन की मार्मिक पीड़ाओ का भी समावेश है, पर ऐसी कहानिया कम है।

इधर मैंने कुछ नये ढग की कहानिया लिखने की चेष्टा की है। इन कहानियो में न कथा है, न घटनाए है; न आदि है, न अन्त; न संयोग है, न वियोग; न चरित्र-चित्रण। केवल भावना का अन्तर्वेग है। 'दूध की धार', 'धरती और आसमान', 'नही', 'युगलागुलीय' ऐसी ही कहानियां है। इन कहानियो मे सोद्देश्य भावना की सर्वथा समाप्ति हो जाती है और कलापक्ष ही निखर जाता है। परन्तु चाहे मेरी कथा मे कोई उद्देश्य हो या केवल कला का ही विकास हो, उनमे जीवन की व्याख्या अवश्य रहती है। मेरी यह निश्चित धारणा है कि जीवन की व्याख्या का नाम ही साहित्य है। साहित्य को जीवन के इतिवृत्त से बचाकर उसकी व्याख्या मे हा केन्द्रीभूत करने से साहित्य का, सच्ची कला का, रूप निखरता है।

आरम्भ मे मैंने समालोचको की शूरवीरता और बहुज्ञता का सकेत किया है। ये समालोचकगण अधिकाश मे साहित्यिक नही, अध्यापक है। इनमे से बहुतो की साहित्यिक सामर्थ्य प्रायः नगण्य है। परन्तु विद्यार्थियो को पढ़ाते-पढाते वे समालोचना करने का दुस्साहस कर बैठते है। वे नही जानते कि लेखक किस मनोभाव मे मग्न होकर जीवन के रेखाचित्रो को उभारता है। उनकी समालोचना की टेक्निक एक प्रकार से निर्जीव यान्त्रिक-सी होती है। इनमें बहुत-से तो ऐसे है जिनका साहित्य मे भी बड़ा नाम है, पर जिस विषय की वे समालोचना करते हैं, उस विषय पर उनका अध्ययन नगण्य ही है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और

अध्यापक गुलाबराय जैसे पुराने प्रकाण्ड अध्यापको तक को समालोचना-क्षेत्र में मैं दयनीय समझता हूं। तब नये आलोचको की बात तो मैं क्या कहू। डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पढ़कर मैने उन्हे लिखा था, 'या तो आप 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के लेखक है या इस 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' के। ये दोनो रचनाए एक ही पुरुष की नही हो सकती।' 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में जितनी विलक्षण साहित्य-गरिमा है उनका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' उतना ही बोगस है।

यहा दो बातों की ओर मैं पाठको का ध्यान और आकर्षित करूगा। एक तो यह कि समालोचकगण नये साहित्य को न पढ़ते है, न उसकी खोज-जाच की तकलीफ उठाते है। खास कर अध्यापकवर्ग में यह आलस्य-भाव अधिक रूढ़िबद्ध है। अपने परिश्रम से बचने के लिए वे पुरानी लकीर ही पीटते रहते है। इसका परिणाम यह होता है कि वे नई पीढ़ी को साहित्य के आधुनिकतम विकास से वचित रख रहे हैं, तथा साहित्य और साहित्यकार के वास्तविक स्वरूप से पृथक् एक कृत्रिम और मनमाना अप्रामाणिक स्वरूप उनके सम्मुख रख रहे है। मैं तो इसे अक्षम्य अपराध समझता हू। उदाहरणस्वरूप मैं अपनी ही कहानी की चर्चा करूगा। 'दुखवा मै कासे कहू' कहानी मैंने सन् १७ के लगभग लिखी थी जिसे आज तेतालीस वर्ष बीतते है। परन्तु मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी कहकर आज भी वही कहानी कालेजो के पाठ्य कहानी-सग्रहो मे ली जाती रही है। आज के तरुण इसे मेरी प्रातिनिधिक सर्वश्रेष्ठ कहानी समझकर पढ़ते है। इनके पिताओ ने भी पढी थी और शायद इनकी सन्तति भी पढ़ेंगी। तब क्या मैं चालीस साल, अब तक घास छीलता रहा? आज मेरी कहानियो की संख्या साढ़े चार सौ से ऊपर पहुच चुकी है। अब जो कोई मेरी इस कहानी को, जो उस समय मैंने लिखी थी, जब हकीकत में मेरे साहित्य का बालकाल था, मेरी सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कहानी कहता हैं, वह निश्चय ही मूढ पुरुष है। कहानियों के चुनाव में चयनकर्ताओ और आलोचको का अज्ञान तो खैर है ही, इससे भी खराब बात गुटबन्दी है। गुटबन्दी की प्रचारात्मक प्रवृत्ति ने हमारे साहित्य के भावी विकास को बहुत अधेरे मे डाल दिया है। आवश्यकता इस बात की है कि एक निष्पक्ष विद्वन्मण्डल हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कुछ कहानियो का चुनाव करे और वे ही व्याख्या-सहित नये पाठको और विद्यार्थियों को पढ़ाई जाएं, तथा पाठकों के समकक्ष उन्हें सही रूप मे उपस्थित

किया जाए।

जैसाकि मै कह चुका हूं, अपना कथा-साहित्य अपने पाठकों के लिए लिखता हू। उन्हे पेशेवर समालोचक से अधिक विज्ञ और सहृदय समझता हू। मेरा कथा-साहित्य युग के साथ अपने उद्देश्यों की दिशाएं बदलता चला जा रहा है। उसका सबसे बड़ा उद्देश्य आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता रहा है।

मुझे प्रसन्नता है कि अब तक बिखरी हुई मेरी कहानियो की पहली किस्त हिन्दी प्रतिनिधि प्रकाशक सर्वश्री राजपाल एण्ड सन्ज़ आपके सम्मुख उपस्थित कर रहे है, जिसमें कुछ चुनी हुई कहानियां है। साथ ही आपके सम्मुख अगली किस्तें भी आएंगी।

ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान —चतुरसेन
२६ जनवरी, १९५९

# लालारुख

इस कहानी में एक कोमल भावुक प्रेम का मोहक रेखाचित्र है। मुगलकालीन ऐश्वर्य की एक सजीव झांकी भी इस कहानी में दिखाई देती है। कथोपकथन की समर्थ पद्धति और भाषा की झलक इस कहानी में देखे ही बनती है। कहानी पढने के समय पाठकों को एक ऐसे भाव-समुद्र में तुरन्त डूब जाना पड़ता है जो अतिशय सुखद है। प्यार की एक उदग्र मूर्ति इस कहानी में लालारुख के रूप में व्यक्त हुई है।

उस दिन दिल्ली के बाज़ार में बड़ी धूम थी। चारों तरफ चहल-पहल ही नज़र आती थी। घर-घर में जलसे हो रहे थे और जशन मनाया जा रहा था, बाज़ार सजाए गए थे। खास कर चांदनी चौक की सजावट आंखों में चकाचौंध उत्पन्न करती थी। असल बात यह थी कि बादशाह आलमगीर की दुलारी छोटी शाहज़ादी लालारुख का ब्याह बुखारे के शाहज़ादे से होना तय पाया गया था। इसके साथ ही यह बात भी तमाम दरबारियों और बुखारा के एलचियों से सलाह-मशविरा करके तय पाई गई थी, खास तौर से बुखारा के शाहज़ादे ने इस बात पर पूरा ज़ोर दिया था कि उसे कश्मीर के दौलतखाने मे शाहज़ादी का इस्तकबाल करने की इजाज़त दी जाए, और बादशाह ने इस बात को मज़ूर कर लिया था। उस दिन लालारुख की सवारी दिल्ली के बाज़ारों में होकर कश्मीर जा रही थी, और दिल्ली शहर की ये सब तैयारियां इसी सिलसिले में थी। जिन सड़को से सवारी जानेवाली थी, उनपर गुलाब और केवड़े के अर्क का छिड़काव किया गया था। दूकानों की सब कतारें फूलों से सजाई गई थी। जगह-जगह पर मौलसरी और बेले के गजरों से बन्दनवार बनाए गए थे। बज़ाज़ों ने कमख्वाब और ज़रबफ्त के थानों को लटकाकर खूबसूरत दरवाज़े तैयार किए थे, जौहरी और सुनारो ने सोने-चांदी के ज़ेवरो और जवाहरात के कीमती जिंसों से अपनी दूकान के बाहरी हिस्से को सजाया था। इन्तज़ाम के दारोगा और बरकंदाज़ लाल-लाल वरदियां पहने

और ज़री की पगड़ियां डाटे घोड़ों पर और पैदल इन्तज़ाम के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। छज्जों और छतो पर लालारुख की सवारी देखने के लिए ठठ की ठठ औरतें आ जुटी थी। परदानशीन बड़े घर की औरतें चिलमनो की आड में खड़ी होकर लालारुख की सवारी देखने का इन्तज़ार कर रही थी। नजूमियो और ज्योतिषियों से लालारुख की विदाई का मुहूरत दिखा लिया गया था। ठीक मुहूरत पर लालारुख की सवारी लालकिले से रवाना हुई। सबसे आगे शाही सवारों का एक दस्ता हाथ मे नंगी तलवारें लिए चल रहा था। उसके बाद ज़र्क-बर्क पोशाक पहने हाथ में बड़े-बडे भाले लिए, बरकंदाजों का एक झुड था। इसके बाद तातारी बांदियां तीर-कमान कसे और नंगी तलवार हाथ में लिए, जड़ाऊ कमर-पेटी मे खंजर खोसे, तीखी निगाहो से चारों तरफ देखती हुई आगे बढ रही थी। इसके बाद झूमते हुए शाही हाथी थे, जिनपर ज़रदोज़ी की सुनहरी झूलें पड़ी हुई थी, और जिनकी सोने की अम्बारियां सुनहरी धूप में चमचमा रही थी। इनमें महीन रेशमी जाली के पर्दे पड़े हुए थे, जिनमे शाहज़ादी लालारुख की सहेलिया, उस्तानियां, मुगलानियां और रिश्ते की दूसरी शाही औरतें थी। इनके पीछे नकीबों की एक फौज थी, जो चिल्ला-चिल्लाकर हुजूर शाहजादी की सवारी की आमद लोगों पर ज़ाहिर कर रही थी। इसके बाद खास बादियो और महरियों के पैदल झुरमुट में कीमती, जडाऊ सुखपाल में शाहज़ादी लालारुख बैठी थी। एक विश्वास-पात्री बांदी पीछे खड़ी शाहज़ादी पर धीरे-धीरे पंखा झल रही थी। सुखपाल पर गुलाबी रंग के निहायत खूबसूरत, मकड़ी के जाले की तरह महीन पर्दे पड़े हुए थे। इनके पीछे घोड़े पर सवार एक सरदार खोज़ा फिदाहुसेन था, और उसके पीछे मुगल सरदारो का एक मज़बूत दस्ता। इसके बाद रसद, डेरे, तम्बू और बल्लियो से लदे हुए बहुत-से ऊंट, खच्चर, हाथी तथा बेलदार मज़दूर चल रहे थे।

लालारुख का सौन्दर्य अप्रतिम था, और उसके कोमल तथा भावुक ख्यालातों की ख्याति देश-देशान्तरो तक फैल गई थी। देश-देशान्तरों के शाहज़ादे उसे एक बार देखने को तरसते थे। उसका रंग मोतियों के समान था। उसकी आभा और शरीर की कोमलता केले के नये पत्ते के समान थी। उसके दांत हीरे के से और आंखें कच्चे दूध के समान उज्ज्वल और निर्दोष थी। उसका भोलापन और सुकुमारता अप्रतिम थी, और निर्मम आलमगीर, जो प्रेम की कोमलता से दूर रहा,

इस अपनी नन्ही और भोली बेटी को सचमुच प्यार करता था। उसने अप ने हाथो से सहारा देकर उसे सुखपाल में सवार कराया, और आंखों मे आसू भरकर विदा कराया।

सवारी जब दिल्ली की सीमा पार करके लहलहाते खेतों, जंगलो और पहाड़ियों पर पहुंची तो लालारुख ने अपने नाजुक हाथो से पर्दा हटाकर एक नजर दूर तक फैली हुई हरियाली पर डाली, और जो कुछ भी उसने देखा उससे बहुत खुश हुई। आज तक उसे जंगल की हरियाली देखने का मौका नही मिला था। शाही महल के झरोखो से भी वह झाक न पाती थी। शाही महल की तडक-भडक और बनावट से वह ऊब गई थी, इसीलिए जगल का दृश्य देखकर उसके मन मे आनन्द होना स्वाभाविक था। नये-नये दृश्य उसकी आखो के आगे आते-जाते थे। रग-बिरंगे फूलो से लदे हुए वृक्ष और लताए, स्वच्छन्दता से चौकडी भरते हुए हिरनो के झुड, चहचहाते हुए भांति-भाति के पक्षी उसके मन मे कौतूहल पैदा कर रहे थे। वह उत्फुल्ल नेत्रों से प्रकृति की शोभा निहारती हुई और भाति-भाति के विचारो तथा शंकाओ से उद्विग्न-सी आगे बढ रही थी। हर दस कोस पर पडाव पड़ता था।

एक दिन जब सुदूर पश्चिम और उत्तर के आकाश की क्षितिज-रेखा में हिमालय की धवल चोटियां प्रात:काल की सुनहरी धूप-किरणो से चमककर देखनेवालो के नेत्रों मे चमत्कार पैदा कर रही थी, और शीतल मन्द-सुगन्ध वासन्ती वायु गुदगुदाकर मन को प्रफुल्ल कर रही थी, लालारुख अपने खेमे में, रेशम के कोमल गद्दे और तकियो मे अलसाई-सी पडी हुई, अपने यौवन से बिलकुल बेखबर होकर अपनी सहचरियो से सुरम्य कश्मीर की सुषमा का बखान सुन रही थी। महलसरा के खोजा दारोगा ने सामने आकर कोर्निश की और अर्ज़ की कि कश्मीर से बुखारे के नामवर शाहज़ादे ने हुज़ूर शाहज़ादी की खिदमत में एक नामी गवैये को भेजा है, और वह ड्योढ़ियो पर हाज़िर होकर कदमबोसी की इजाज़त से सरफराज़ होना चाहता है।

लालारुख का चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने कनखियो से अपनी एक सखी की ओर देखा, और फिर मुस्कराकर वीणा के झंकृत स्वर मे कहा—क्या वह सिर्फ गवैया है?

"नहीं हुज़ूर, वह एक नामी शायर भी है, और उसकी कविता की भी वैसी ही धूम है, जैसी उसके गाने की।"

"क्या वह बुखारे का बाशिंदा है?"

"नहीं हुजूर, वह कश्मीर का रहनेवाला है। वह एक कमसिन खूबसूरत और निहायत बाअदब नौजवान है।"

शाहज़ादी ने एक बार दारोगा की तरफ देखा, और पूछा—क्या कह सकते हो कि शाहज़ादे के साथ उसके किस तरह के ताल्लुकात है?

"जी हा, तहकीकात से मालूम हुआ कि हज़रत शाहज़ादे के साथ इस नौजवान के बिलकुल दोस्ताना ताल्लुकात हैं।"

"क्या शाहज़ादे ने कुछ ताकीद भी लिख भेजी है?"

"जी हां हुजूर, उन्होने लिखा है कि मैं अपने जिगरी दोस्त इब्राहीम को शाहज़ादी का इस्तकबाल करने और उन्हें गाने तथा कविता से खुश करने को भेजता हू। शाहज़ादी को उनसे पर्दा करने की ज़रूरत नही।"

शाहज़ादी नीची नज़र करके मुस्कराई, और धीमे स्वर से कहा—बहुत खूब, शाहज़ादे के दोस्त का हर तरह आराम से रहने का इन्तज़ाम कर दो। इतना कहकर वह जल्दी से ख्वाबगाह में चली गई और ख्वाजा सरा कोर्निश करके बाहर आया।

कही बदली छा रही थी। कश्मीर की घाटियो में लालारुख की छावनी पड़ी थी। चारों तरफ सुहावने दृश्य थे। दूर पर्वत-श्रेणियां शोभा बखेर रही थीं। चांदनी छिटकी थी, और वह बदली में छन-छनकर धरती पर बिखर रही थी। लालारुख ने सुना, कोई वीणा के मधुर झंकार के साथ वीणा-विनिंदित स्वर में मस्ताना गीत गा रहा है। उस प्रशान्त रात्रि मे इस सुमधुर गायन और उसके प्रेमभावनापूर्ण शब्दों से लालारुख प्रभावित हो गई। उसने प्रधान दासी को बुलाकर कहा—कौन गा रहा है?

"वही कश्मीरी कवि है।"

"बड़ा प्यारा गीत है!"

"और वह गायक उससे भी ज्यादा प्यारा है!"

"क्या वह बहुत खूबसूरत है?"

"मगर हुजूर के तलुओ योग्य भी नहीं।"

लालारुख मुस्कराई। उसने कहा—किसीको भेजकर उसे कहला दो, ज़रा नज़दीक आकर गाए।

बादी 'जो हुक्म' कहकर चली गई। और कुछ क्षण बाद ही मूर्तिमती कविता और संगीत की मधुर धार उस भावुक शाहज़ादी के मानस-सरोवर में हिलोरें लेने लगी।

वह सोचने लगी, जिसका कण्ठ-स्वर इतना सुन्दर है, और जिसका भाव इतना मधुर है, वह कितना सुन्दर होगा! शाहज़ादी की इच्छा उसे एक बार आख भर-कर देख लेने की हुई। शाहज़ादे ने कहला भेजा था कि उससे पर्दा न किया जाए। परन्तु शाहज़ादी इतनी हिम्मत न कर सकी। उसने प्रधान दासी के द्वारा कवि से कहला भेजा कि वह नित्य इसी भाति शाहज़ादी के लिए गाया करे तो शाहज़ादी उसका एहसान मानेगी। उस दिन से दिन-भर शाहज़ादी उस अमूर्त सगीत के रूप की कल्पना विविध भांति करने लगी, और जब वह स्वर्ण क्षण आता तो उस स्वर-सुधा मे मस्त हो जाती।

कश्मीर धीरे-धीरे निकट आ रहा था। शाहज़ादे से मिलने का दिन निकट आ रहा था। तमाम कश्मीर मे शाहज़ादी के स्वागत की बड़ी तैयारियां हो रही है, इसकी खबर रोज़ शाहज़ादी को लग रही थी, पर शाहज़ादी का दिल धड़क रहा था। क्या सचमुच यह अमूर्त सगीत एक दिन विलीन हो जाएगा? धीरे-धीरे शाहज़ादी के मन में साक्षात् करने की इच्छा बलवती होने लगी।

शालामार की सुन्दर और स्वर्गीय छटा अवलोकन करती हुई लालारुख अन-मनी-सी बैठी थी। अब वह उस अमूर्त के दर्शन से नेत्रों को धन्य करना चाहती थी। उसने उस स्निग्ध चादनी के एकान्त मे उस कवि को बुला भेजा था। हाथ में वीणा लिए जब उसने घुटने टेककर शाहज़ादी को अभिवादन किया, तब क्षण-भर के लिए शाहज़ादी स्तम्भित रह गई। उसके होठ कांपकर रह गए, बोल न सकी। कवि ने कहा—हुज़ूर शाहज़ादी ने गुलाम को रूबरू होने का हुक्म देकर उसे निहाल कर दिया।

"मैं, मैं तुम्हें बिना देखे न रह सकी।"

"शाहज़ादी का क्या हुक्म है?"

"एक बार इस चादनी मे मेरे सामने बैठकर वही प्यारा संगीत सुना दो।"

"जो हुक्म।"

कवि की उंगलियों ने तारों में कम्पन उत्पन्न किया, साथ ही कण्ठ का मधु प्रवाहित हुआ। शाहज़ादी उसमे खो गई। गाना खत्म कर कवि ने साहस करके

मुग्धा राजकुमारी का कोमल कर अपने होठों से लगा लिया। शाहज़ादी चीख उठी। उसने अपना हाथ खींच लिया, पर दूसरे ही क्षण उसने कहा—ओह इब्राहीम, मै तुम्हारे बिना नही जी सकती। और वह मूर्छित होकर कवि पर झुक गई।

शालामार बाग में शाहज़ादी ने कुछ दिन मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। कश्मीर से शाहज़ादे के तकाज़े आ रहे थे कि जल्द सवारी आए, पर शाहज़ादी शाहज़ादे के पास जाते घबराती थी। वह अपना हृदय कवि को दे चुकी थी। वैसी ही चांदनी थी, संगमरमर की एक पटिया पर दोनों प्रेमी बैठे थे। फूलो का ढेर और शीराजी सामने रखी थी। शाहजादी ने कहा—प्यारे इब्राहीम, इस कदर मुतफिक्र क्यो हो?

"शाहिज़ादी, हम जो कुछ कर रहे है उसका अंजाम क्या होगा? शाहज़ादा जब भेद जान लेगे तो हमारी जान की खैर नही। मुझे अपनी ज़रा भी परवा नहीं, पर आपको उस प्रलय मे मैं न देख सकूगा।"

"ओह इब्राहीम, शाहज़ादे बहुत उदार है, वे समझते होगे मुहब्बत में किसीका ज़ोर-ज़ुल्म नही चलता। वे हमे माफ कर देगे।"

"नही शाहज़ादी, वे तुम्हे अपनी जान से ज्यादा चाहते है, माफ न करेंगे।"

"तो इब्राहीम, मैं खुशी से तुम्हारे साथ मरूगी। क्या तुम मौत से डरते हो?"

"नहीं दिलरुबा, और खासकर इस प्यारी मौत से।"

"तो फिर यह राज़ क्यों पोशीदा रखा जाए? शाहज़ादे को लिख दिया जाए।"

"ये तमाम ठाट-बाट हवा हो जाएगे।"

"उसकी परवा नहीं, तुम मेरे सामने बैठकर इसी तरह गाया करना, मैं तुम्हारे लिए रोटियां पकाया करूंगी।"

"प्यारी शाहज़ादी! बेहतर हो, इस गुलाम को भूल जाओ।"

"ऐसा न कहो, यह कलमा सुनने से दिल धड़क उठता है।"

"तो फिर तुम्हारा क्या हुक्म है?"

"शाहज़ादे को मैं सब हकीकत लिख भेजूगी।"

"तुम क्यों, यह काम मैं करूंगा, फिर नतीजा चाहे जो भी हो।"

इब्राहीम के गिरफ्तार होने की खबर आग की तरह शाहज़ादी के लश्कर में

फैल गई। शाहज़ादी ने सुना तो पागल हो गई। खाना-पीना छोड दिया। सवारी तेज़ी के साथ आगे बढने लगी। ज्यों-ज्यो कश्मीर नज़दीक आता था, सजावट और स्वागत की धूमधाम बढ़ती जाती थी। परन्तु शाहज़ादी बदहवास की। शहर में उसका बडी धूमधाम से स्वागत हुआ। और जब महल के फाटक मे उसकी सवारी घुसी तो उसपर हीरे-मोती बखेरे गए। शाहज़ादी ने पक्का इरादा कर लिया था कि ज्योंही वह शाहज़ादे के सामने पहुचेगी, उसके कदमो पर गिरकर इब्राहीम की जानबख्शी की भीख मागेगी।

शाहज़ादा जडाऊ तख्त पर बैठा शाहज़ादी के स्वागत करने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके बगल मे एक दूसरा जड़ाऊ तख्त शाहजादा के लिए पड़ा था। शाहज़ादी ने ज्योंही हवादान से पैर निकाला, शाहजादा उसे देखकर अवाक् रह गया। बिखरे बाल, मलिन वेश, सूखा और पीला चेहरा और सूजी हुई आखें। शाहज़ादी ने आख उठाकर शाहजादे को नही देखा। वह आगे बढ़कर तख्त के नीचे ज़मीन पर लोट गई। उसने शाहज़ादे के पैर पकड़कर कहा—क्षमा, क्षमा, ओ उदार शाहज़ादे, क्षमा।

शाहजादे ने कहा—उठो शाहज़ादी, तुम्हारे लिए सब कुछ किया जा सकता है, यह तुम्हारा तख्त है, इसपर बैठो। शाहज़ादी ने डरते-डरते आंखे उठाकर शाहज़ादे की ओर देखा। 'या खुदा' इतना ही उसके मुह से निकला, और वह शाहज़ादे की गोद मे बेहोश होकर लुढक गई।

"हां, तो तुम इब्राहीम की जा बख्शी चाहती हो प्यारी ?"

"हां प्यारे, तुम इब्राहीम को जानते हो ?"

"कुछ-कुछ।"

दोनों ठहाका मारकर हंस पड़े। लालारुख ने शाहज़ादे की गोद में मुह छिपा लिया।

# बावर्चिन

इस कहानी में अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह के पतनकाल का और मुगल बेगमों के आसुओ का, जो कभी केवल हीरे-मोती, इत्र और ऐश्वर्य ही को जानती थी, ऐसा सचोट रेखाचित्र है, जो हृदय में घाव कर जाता है। साम्राज्यों के पतन मे विश्वासघातियों का सदा हाथ रहा है। इसमें भी एक ऐसे ही विश्वासघाती का संकेत किया गया है जिसके बड़े-बड़े वर्णन मुगलतख्त के पतनकाल में इतिहास में पाए गए है।

सन् १८४५ की २८वी मई के तीसरे पहर एक पालकी चादनी चौक मे होकर लालकिले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख्वाब और ज़री के पर्दों से ढकी हुई थी। आठ कहार उसे कधो पर उठाए थे और सोलह तातारी बांदियां नंगी तलवार लिए उसके गिर्द चल रही थीं। उनके पीछे चालीस सवारो का एक दस्ता था, जिसका अफसर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर चढ़ा हुआ था। उसकी ज़रबफ्त की बहुमूल्य पोशाक पर कमर मे नाजुक तलवार लटक रही थी, जिसकी मूठ पर गंगाजमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी दाढ़ी के बीच, अंगारे की तरह दहकते चेहरे मे मशाल की तरह जलती हुई आखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ घुमाता हुआ, अकड़कर, किन्तु खूब सावधानी से, पालकी के पीछे-पीछे जा रहा था।

भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चांदनी चौक की सड़कें आज की जैसी तारकोल बिछी हुई आईने की तरह चमचमाती न थीं, न मोटरों की पोंपों-पोंपों और सर्राटेबन्द दौड़ थी। चादनी चौक की सड़कों पर काफी गर्दगुब्बार रहता था। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलो की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलिया एक अजब बांकी अदा से उछला करती थी।

अब जिस स्थान पर घण्टाघर है, वहां तब एक बड़ा-सा हौज था, जो चांदनी

चौक की नहर से मिल गया था; और जहा कम्पनी बाग और कमेटी की लाल सगीन इमारत खड़ी है, वहां एक बडी भारी किन्तु खस्ताहाल सराय थी, जिसकी बुर्जियां टूट गई थी और जहा अनगिनत खच्चर, टट्टू, बैलगाड़िया, घोड़े और परदेसी बेतरतीबी से पेड़ो के नीचे या बेमरम्मत कोठरियों मे भरे हुए थे।

जिस समय पालकी वहा से गुज़र रही थी, उस समय हौज़ पर खासा धोबी-घाट लगा हुआ था। कोई नहा रहा था, कोई साबुन से कपड़े धो रहा था। सराय के टूटे किन्तु सगीन फाटक पर देशी-विदेशी आदमियो का जमघट लगा था।

पालकी अवश्य ही कही दूर से आ रही थी। कहार लोग पसीने से लथपथ हो रहे थे। उनका दम फूल रहा था और वे लड़खडा रहे थे। पीछे से अफसर तेज़ चलने की ताकीद कर रहा था, मगर ऐसा मालूम होता था कि अब और तेज़ चलना असम्भव है।

कहारों मे एक बूढा कहार था। उसका हाल बहुत बुरा हो रहा था। कुछ कदम और चलकर वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, पालकी रुक गई।

तातारी बादिया झिझककर खड़ी हो गईं। अफसर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढा अभी संभला न था। एक चाबुक सपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमडी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान मे शब्द पड़े—उठ, उठ, ओ दोज़ख के कुत्ते ! देर हो रही है।

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस, पचीस-पचास चाबुक तड़ातड़ पड़े, खून का फव्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया !!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेलकर अफसर ने खूनी आंख भीड पर दौड़ाई। एक गठीला गौरवर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सबसे आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भीगी होगी। अफसर ने डपटकर उसे पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण सपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द—साला, जल्दी !

युवक ने क्रुद्ध स्वर मे कहा—जनाब ! हुक्म बजा लाता हू, मगर ज़बान सभाल···

दस-बीस चाबुक खाकर युवक वही तड़पकर गिर गया। उसकी नाक और मुह से खून का फव्वारा बह चला। अफसर ने और एक आदमी को कन्धा लगाने

का हुक्म दिया। क्षण-भर में पालकी फिर अपनी राह लगी।

चिराग जल चुके थे। दीवाने-खास में हजारा फानूस की तमाम काफूरी मोमबत्तिया जल रही थी। जमुना की लहरो से धुलकर पूर्वी हवा झरोखों से छन्-छनकर आ रही थी। खास-खास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ लाने की इन्तजारी में अदब से खडे थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहू-लुहान पड़ा था। अन्त पुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ-स्वर ने कहा—होशियार, अदब कायदा निगहदार! यह शब्द-स्वर चोबदारो ने दोहराया—होशियार अदब कायदा निगहदार! उमराव-मण्डल और मन्त्रि-मण्डल ज़मीन तक सिर झुकाकर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार मे निस्तब्धता छा गई। धीरे-धीरे वृद्ध सम्राट् बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धों का सहारा लिए भीतरी ड्योढ़ी से निकलकर सिंहासन पर आ बैठे। चार बादिया मोरछल लेकर बगल मे खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—ज़ल्ले इलाही बरामद कर्द मुजरा अदब से!

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढा और सम्राट् के सामने जाकर उसने तीन बार झुककर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के अनुसार कुछ शब्द कहकर सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित किया। इसी प्रकार सभी सरदारो ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वज़ीर को संकेत किया। वज़ीर ने जवान से कहा—जवान! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत अगर्चे सुन चुके हैं, मगर तुम्हारी खास ज़बान से सुनना चाहते है। तमाम हालात मुफस्सिल मे बयान करो।

युवक ने ज़मीन मे लोट-लोटकर सब मामला बयान किया। बादशाह ने फरमाया—सब हरूफ-बहरूफ सही है। कहा है वह ज़ालिम ज़मीर?

ज़मीर तख्त के सामने आकर घुटनो के बल गिर गया।

बादशाह ने फर्माया—ज़मीर! तुझे कुछ कहना है?

"खुदावन्द! रहम! रहम!"

बादशाह ने हुक्म दिया—इस जालिम को सीधा खड़ा करो। मगर ठहरो, मैं इसपर भी रहम किया चाहता हू। इसे नौकरी से बरखास्त किया जाता है। और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद ज़ब्त की जाती है और वह उस कहार के घरवालों को बख्श दी जाती है।

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बांदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग ज़मीन तक झुक गए।

बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—आराम होने तक शाही महलों में रहने की तुम्हें इजाज़त बख्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे मालजे को मुकर्रर किए जाते हैं।

युवक ने बादशाह की कदमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्तःपुर मे प्रवेश कर गए।

अन्त.पुर के उन झरोखो के भीतर, जहा किसी भी मर्द की परछाई पहुचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मखमली गद्दे पर वह घायल युवक पड़ा अपने प्रारब्ध-विकास की बात सोच रहा था। एक ही दु:खदायी घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पासा पलट दिया था। वह सोच रहा था, 'क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटा छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जाएगा?' वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा—एक धवल अट्टालिका, दास-दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या-क्या?

सभी विचारधाराओ के ऊपर उसे एक नवीन विचारधारा मूर्छित कर रही थी—वह कौन है? वही क्या इस सब भाग्य-परिवर्तन की कुजी नही? पालकी के उस दुर्भेद्य पर्दे के भीतर···! वह सोच मे मूर्छित हो गया।

हठात् उसकी विचारधारा को धक्का देते हुए, कक्ष का पर्दा हटाकर दो दासियो के साथ एक खोजे ने प्रवेश किया। दासियो के हाथ मे भोजन की सामग्री थी। स्वप्न-सुख की तरह कहीं वह राजभोग लुप्त न हो जाए, घायल युवक इस भय से लपककर उठा।

खोजे ने कहा—खाना खा लो, और खुदा का शुक्र करो। हुज़ूर शाहज़ादी तुमपर बहुत खुश हैं, और वे जल्द तुम्हे देखने को तशरीफ लानेवाली है।

चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहज़ादी ने कक्ष मे प्रवेश किया। दो अल्पवयस्का दासियां परछाई की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र, महीन रेशमी परिधान पर ज़रदोज़ी और सलमे का बारीक काम निहायत फसाहत से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्तिमती रेखा

के समान समस्त भारत के सम्राट् की पौत्री शाहज़ादी गुलबानू थी।

केवल क्षण-भर ही वह युवक उस अतिदुर्लभ मुख की ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु मानो उसके शरीर का सत निकल गया था। वहीं गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने जरा बढ़कर अपना मस्तक शाहज़ादी के कदमों पर रख दिया। शाहज़ादी के जूतो मे लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहज़ादी ने मानो फूल बखेर दिए। उसने कहा—कल के हादिसे का मुझे बहुत रंज है, पर मैं समझती हू, अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी से तमाम माजरा देखा था। मगर कर क्या सकती थी! दादाजान से आते ही शिकायत कर दी थी।

युवक ने ज़रा ऊंचा उठकर शाहज़ादी का आंचल आंखों से लगाया और बार-बार ज़मीन चूमकर कहा—हुज़ूर खुदावन्द शाहज़ादी, कल अगर हुज़ूर की पालकी की खाक न नसीब होती तो आज यह दिन कहा? जहापनाह ने इस नाचीज़ गुलाम को निहाल कर दिया। ताबेदार ताउम्र इन कदमो का नमकहलाल रहेगा।

शाहज़ादी कुछ न कहकर धीरे-धीरे चली गई, परन्तु उसके सास की सुगन्ध वहां भर गई थी, और उसीके प्रभाव से युवक के घाव भर गए थे। वह उस स्थान को, जहां शाहज़ादी के कमल-पद छू गए थे, अपनी छाती से लगाकर बदहवास पड़ रहा। उस मूर्ति को चाहे क्षण-भर ही वह देख सका था, पर वह उसके रोम-रोम में रम गई थी। पर दुनिया के पर्दे में कौन-सा ऐसा मर्द-बच्चा था जो फिर उसे एक बार देख लेने का हौसला भी कर सकता?

बारह साल बीत गए। सन् ५७ की २४वीं मई थी। गदर की आग धू-धू करके जल रही थी। चिनगारिया आसमान को छू चुकी थीं। निकल्सन ने दिल्ली पर घेरा डाल रखा था। भाग्य की रेखा के बल पर बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह ने बागियो का साथ दिया था। क्षण-क्षण में बागी हार रहे थे। अंग्रेज़ी तोपें कश्मीरी दरवाजे पर गरज रही थी। लाहौरी दरवाज़ा सर हो चुका था। फतहपुरी मस्जिद के सामने अंग्रेज़ी घुड़सवार और बागियों की लाल होली खेली जा रही थी। लाशो के ढेर में से अधमरे सिपाही चिल्ला रहे थे। अंग्रेज़ बराबर

बढते और जो मिलता उसे संगीनो से छेदते चले आ रहे थे। कर्नल वाट्सन के हाथ मे कमान थी। इनके साथ थे एक सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर जनाब इलाहीबख्श। वे एक अरबी नफीस घोडे पर पान चबाते, इतराते बढ रहे थे, लोग देख-देखकर भयभीत होकर घर मे छिप रहे थे।

यह इलाहीबख्श वही घायल युवक थे, जो अपनी जवामर्दी और चतुराई से दस वर्ष मे बादशाह के अमीर और नगर के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली व्यक्ति बन गए थे। अग्रेजो ने दमदार मुगलो को जहा तोपों और सगीनों की नोक से वश मे किया था, वहा कुछ नमकहराम, सगदिल लोगो को अपनी भेद-नीति और सोने के टुकड़ो से वश में कर लिया था। इलाहीबख्श भी उनमे से एक थे। दस वर्ष पहले शाहज़ादी के कदमों पर गिरकर नमकहलाली की जो बात उन्होंने कही थी, वह अब उन्होने दरगुज़र कर दी थी। वे अब अंग्रेज़ो के भेदिये थे।

दोनो व्यक्ति सराय के सामने जाकर ठहर गए। हौज़ के पास, जहां अब घण्टाघर है, बराबर-बराबर फांसियां गड़ी थी और क्षण-क्षण मे चारों तरफ गली-कूचों से आदमी पकड़े जाकर फासी पर चढ़ाए जा रहे थे। कुछ खास कैदी इनकी प्रतीक्षा मे बंधे बैठे थे। हडसन साहब ने सबको खड़ा होने का हुक्म दिया। इलाही-बख्श ने उनमें से मुगल सरदारों और राजपरिवारवालो की शिनाख्त की; वे सब फांसी पर लटका दिए गए। इसके बाद, बादशाह किले से भाग गए है, यह सुनकर एक फौज की टुकड़ी लेकर दोनो तीर की तरह रवाना हुए।

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज़ पढ़ रहे थे। उनके हाथ कांप रहे थे और आखो से आसुओ की धारा बह रही थी। शाहज़ादी गुलबानू ने आकर कहा—बाबाजान ! यह आप क्या कर रहे हैं ?

"बेटी अब और कर ही क्या सकता हूं ? खुदा से दुआ मांगता हूं, कहता हूं—ऐ दुनिया के मालिक ! मेरी मुश्किल आसान कर। यह तख्त, तैमूर के खून का तख्त तो आज गया ही, मेरे बच्चों की जान और आबरू पर रहम बख्श !"

गुलबानू ने कहा—बाबा ! दुश्मन किले तक पहुच चुके है। आपके लिए सवारी तैयार है, भागिए !

बादशाह ने अधे की तरह शाहज़ादी का हाथ पकड़कर कहा—भागू कहां ? हाय ! वह घड़ी अब आ ही गई !

इसके बाद उन्होंने अपनी जड़ाऊ सन्दूकची मगाई और परिवार के सब लोगों को बुलाकर एक-एक मुट्ठी हीरे सबको देकर कहा—खुदा हाफिज़ !

किले से निकलकर बादशाह सीधे निज़ामुद्दीन गए। उस वक्त उनके मुख-मण्डल की आभा उतरी हुई थी। कुछ खास-खास ख्वाजासरा, कहार और इने-गिने शुभचिन्तको के सिवा कोई साथ न था। चिन्ता और भय से वे रह-रहकर कांप रहे थे। उनकी सफेद दाढ़ी धूल से भर रही थी। बादशाह चुपचाप जाकर सीढ़ियो पर जाकर बैठ गए।

गुलामहुसेन चिश्ती सुनकर दौड़ आए। बादशाह उन्हे देखते ही खिलखिला-कर हंस पड़े। चिश्ती साहब ने पूछा—खैर तो है ?

"खैर ही है, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ये बदनसीब गदरवाले मनमानी करनेवाले है। इनपर यकीन करना बेवकूफी है। ये खुद डूबेंगे और हमें भी डुबाएगे। वही हुआ, भाग निकले। मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी कि मैं मुगलों का आखिरी चिराग हूं। मुगलो के तख्त का आखिरी सास टूट रहा है, कोई घड़ी-भर का मेहमान है। फिर खून-खराबी क्यो करू ? इसीलिए किला छोड़कर चला आया। मुल्क खुदा का है, जिसे चाहे दे, जिसे चाहे ले। सैकड़ों साल तक हमारे नाम का सिक्का चला। अब हवा का रुख कुछ और ही है। वे हुकूमत करेंगे, ताज पहनेंगे। इसमे अफसोस क्यो ? हमने भी तो दूसरो को मिटाकर अपना घर बसाया था ! हां, आज तीन दिन से खाना नसीब नहीं हुआ है। कुछ हो तो ले आओ ?"

चिश्ती साहब ने कहा—सिर्फ बाजरे की रोटी और सिर्के की चटनी है। हुक्म हो तो हाजिर करू।

"वही ले जाओ।"

बादशाह ने शान्तिपूर्वक एक रोटी खाकर और पानी पीकर कहा—बस, अब हुमायू के मकबरे मे चला जाऊंगा, वहां जो भाग्य में होगा वह होगा।

हुमायू के मकबरे में हडसन और इलाहीबख्श ने आकर बादशाह को गिरफ्तार करके रंगून भेज दिया।

तीन वर्ष व्यतीत हो गए। दिल्ली में अंग्रेजी अमल जमकर बैठ गया था। लालकिले पर यूनियन जैक फहरा रहा था। फांसियों की विभीषिकाओं ने नगर

और ग्राम की जनता के मन मे दहल उत्पन्न कर दी थी। भेड़ की तरह दब्बू चुप-चाप अंग्रेज़ो के विधान को अटल प्रारब्ध की तरह देख और सह रहे थे। इलाही-बख्श के पास बादशाही बख्शीश ही बहुत थी, अब अंग्रेज़ी जागीरों और मेहर-बानियो ने उन्हे आधी दिल्ली का मालिक बना दिया था। सरकारी नीलाम में मुहल्ले के मुहल्ले उन्होने कौड़ियों मे पाए थे। उनकी बड़ी भारी अट्टालिका खड़ी मनुष्य के भाग्य पर हस रही थी। सन्ध्या का समय था। अपनी हवेली के विशाल प्रागण मे तख्त के ऊपर बढिया ईरानी कालीन पर मसनद के सहारे इलाहीबख्श बैठे अम्बरी तमाखू पी रहे थे, दो-चार मुसाहिब सामने अदब से बैठे जी-हुजूरी कर रहे थे। मियांजी को, मालूम होता है, बचपन के दिन भूल गए थे। वे बहुत बढ़िया अतलस के अगरखे पर कमख्वाब की नीमास्तीन पहने थे।

धीरे-धीरे अन्धकार के पर्दे को चीरती हुई एक मूर्ति अग्रसर हुई। लोगों ने देखा, एक स्त्री-मूर्ति मैला और फटा हुआ बुर्का पहने आ रही है। लोगों ने रोका मगर उसने सुना नही। वह चुपचाप मिया इलाहीबख्श के सम्मुख आ खड़ी हुई।

मिया ने पूछा—क्या चाहती हो ?

"पनाह !"

"कौन हो ?"

"आफत की मारी !"

"अकेली हो ?"

"बिलकुल अकेली !"

"कुछ काम करना जानती हो ?"

"बावर्ची का काम सीख लिया है !"

"तनख्वाह क्या लोगी ?"

"एक टुकड़ा रोटी !"

बहुत महीन, दर्द-भरी, कुम्पित आवाज़ मे इन जवाबों को सुनकर मियां इलाहीबख्श सोच मे पड़ गए। थोडी देर बाद उन्होने नौकर को बुलाकर उस स्त्री को भीतर भिजवा दिया। उस दिन उसीको खाना बनाने का हुक्म हुआ।

मियां इलाहीबख्श दस्तरखान पर बैठे। दोस्त-अहबाबों का पूरा जमघट था। तब तक दिल्ली मे बिजली-तारों से नहीं बांधी गई थी। सुगन्धित मोमबत्तियां शमादानों मे जल रही थी।

खाना खाने से सभी खुश हुए। नई बार्वचिन की तारीफ के पुल बाधने लगे। दोस्तों ने कहा—ज़रा उसे बुलाइए और इनाम दीजिए।

इलाहीबख्श ने बार्वचिन को बुला भेजा। उसने कहा—आका से दस्त-बस्ता अर्ज़ है कि मै गैर मर्दों के सामने बेपर्दा नहीं हो सकती। हा, आका से पर्दा फजूल है। दोस्त लोग मन मारकर रह गए। मगर इलाहीबख्श के मन मे प्रतिक्षण बार्वचिन को देखने की बेचैनी बढ चली। एकान्त होने पर उन्होने उसे बुला भेजा। बार्वचिन ने जवाब दिया—मेरे मिहरबान मालिक ! सफर, मिहनत और भूख से बेदम तथा कपड़ो से गलीज हू—खिदमत में हाज़िर होने के काबिल नही।

इलाहीबख्श स्वय भीतर गए और बार्वचिन के सामने जा खड़े हुए। बोले—क्या मै तुम्हारी मुसीबत की दास्तान सुन सकता हूं ? यह तो मैं समझ गया कि तुम शरीफ खानदान की दुखियारी हो।

बार्वचिन ने अच्छी तरह अपना बुर्का ओढ़कर कहा—मालिक ! मेरी कोई दास्तान ही नही !

"क्या मुझसे पर्दा रखोगी ?"

"यह मुमकिन नहीं है।"

"तब ?"

"क्या आप मुझे देखना चाहते है ?"

"ज़रूर, ज़रूर !"

वह मैला और फटा बुर्का चम्पे की-सी उंगलियो ने हटाकर नीचे गिरा दिया। एक पीली किन्तु अभूतपूर्व मूर्ति, जिसके नेत्रों में पानी और होंठों में रस था, सामने दीख पड़ी।

इलाहीबख्श ने आंखो की धुन्ध आंखों से पोंछकर ज़रा आगे बढ़कर कहा—तुम्हें, आपको, मैंने कही देखा है !

"जी हां, मेरे आका ! शेरे दादाजान की मिहरबानी से, लालकिले के भीतर जब आप मेरी डोली में लगाए जाने के लिए चाबुको से लहू-लुहान किए गए थे, तब यह बदनसीब गुलबानू आपको तसल्ली देने तथा और भी कुछ देने आपकी खिदमत में आई थी। उम्मीद थी, मर्द औरत की अमानत—खासकर वह अमानत, जो दुनिया की चीज़ नही, जिसके दाम जान और कुर्बानी हैं—सभालकर रखेंगे। पर पीछे यह जानने का कोई जरिया न रहा कि हुज़ूर ने वह अमानत किस हिफाज़त

से कहां छिपाकर रखी। गदर में वह रही या मेरे बाबाजान के तख्त के साथ वह भी गई ?

इलाहीबख्श का मुंह काला पड़ गया। बदहवासी की हालत में उनके मुंह से निकल पड़ा—आप शाहज़ादी गुलबानू…?

गुलबानू ने शात स्वर में कहा—वही हू जनाब ! मगर डरिएगा नही ! अगर गदर में मेरी अमानत लुट भी गई होगी तो वह मागने जनाब की खिदमत मे नही आई हूं। अब गुलबानू शाहज़ादी नहीं हुज़ूर की कनीज़ है—महज़ बावर्चिन है ! मेरे आका, क्या बांदी के हाथ का खाना पसन्द आया ? क्या बदनसीब गुलबानू की नौकरी बहाल रह सकेगी ?

इलाहीबख्श बेहोश होने लगे। वे सिर पकड़कर वही बैठ गए। गुलबानू ने पंखा लेकर झलते हुए कहा—जनाब के दुश्मनों की तबियत नासाज़ तो नही, क्या किसीको बुलाऊं ?

इलाहीबख्श ज़मीन पर गिरकर शाहजादी का पल्ला चूमकर बोले—शाह-ज़ादी, माफ करना ! मैं नमकहराम हूं।

"मैं जानती हूं, मगर हुज़ूर, यह तो बहुत छोटा कसूर है। क्या हुज़ूर यह नही जानते कि औरतें दिल और मुहब्बत को सल्तनत से बहुत बड़ी चीज़ समझती हैं ? क्या आप यकीन करेंगे कि बारह साल तक मैं आपकी उस ज़मीन मे घायल तड़पती सूरत को आंखों मे बसाकर जीती रही। जो कुछ बन सका बाबाजान से कहकर किया। मैं जानती थी कि मिल न सकूगी, मगर आपको दुनिया में एक रुतबा देने की हसरत थी—वह पूरी हुई।"

इलाहीबख्श पागल की तरह मुह फाड़कर सुन रहे थे।

शाहज़ादी ने कहा—जब बाबाजान ने आपके दगा और अंग्रेज़ो से आपके मिल जाने का हाल कहा तो दिल टूट गया। मगर उस दिल से अब काम ही क्या ? वह टूटे या साबुत रहे, आखिर अनहोनी तो हो गई—एक बार फिर मुलाकात हो गई। ज़हे किस्मत !

इलाहीबख्श भागे। वे चुपचाप घर से निकले। नौकर-चाकर देख रहे थे। उसके बाद किसीने फिर उन्हें नही देखा।

# अबुलफ़ज़ल-वध

अबुलफ़ज़ल-वध एक प्रसिद्ध कहानी है। आचार्यजी ने मुगलकाल के इतिहास की एक घटना को बहुत कुशलता से कहानी रूप में पेश किया है। सलीम को शराबी, निकम्मा और गुनहगार बताकर अबुलफ़ज़ल ने अकबर के कान भरे थे। अन्त में वीरसिंहदेव ने उसका सिर काटकर सलीम के लिए सम्राट् बनने का मार्ग खोल दिया।

बैरौन के दुर्ग के पच्छिम भाग में एक भग्न शिवमन्दिर के भीतर तीन व्यक्ति बैठे किसी गुरुतर विषय पर परामर्श कर रहे थे। मौसम बहुत खराब था। दिन-भर वर्षा हुई थी। अब भी बूदें गिर जाती थी। कड़ाके की सरदी थी और रात्रि अत्यत अधकारमयी थी। हवा ज़ोर से चलकर पहाड़ से टकराती थी और उसका भयानक गर्जन दिल को दहला देता था।

तीन व्यक्तियो में एक तेजस्वी पुरुष था। उसकी महुमूल्य वेश-भूषा, पगड़ी पर हीरे का तुर्रा और कंठ में अगूर के बराबर बड़े-बड़े मोतियों की माला तथा ज़री के कमरपेटे में जवाहरात से जड़ी हुई मूठ की पेशकब्ज़ उस व्यक्ति के उच्च पद को उसकी तीखी, चीते के समान चितवन, सहज गंभीर स्वर, रोबदार मुख उसके प्रकृत वीरत्व को स्पष्ट कर रहा था। वह व्यक्ति बुदेलखंड के स्वर्गीय महाराज मत्करशाह के सातवें पुत्र, बैरोन के ठिकानेदार राजा वीरसिंहजी थे, जिनकी वीरता ने बुदेलखंड में आनन्द, श्रद्धा और प्रतापी मुगल साम्राज्य मे आतंक जमा दिया था, और जिन्होने बाहुबल से हाल ही मे मुगल फौजदार से भंडेर और ईरिच के इलाके छीनकर कब्ज़ा कर लिया था।

दूसरा व्यक्ति, जो उनकी दाहिनी ओर वीरभाव से बैठा था, एक ३५ वर्ष की आयु का मुसलमान व्यक्ति था। इसकी छोटी-छोटी, घनी, काली मूछे और छटी हुई दाढ़ी के बीच सुन्दर, अतिगौर मुख और उसपर बड़ी-बड़ी, किन्तु लाल डोरो से सयुक्त स्थिर आखें देखनेवालो पर बिना प्रभाव डाले नही रहती थीं।

यह व्यक्ति एक लाल रंग का कश्मीरी दुशाला कमर मे सपेटे, अपनी तलवार की मूठ को दृढता से मुट्ठी में पकड़े मानो कोई भारी बात सोच रहा था, और मन ही मन उसकी संभावना और औचित्य पर विचार कर रहा था। इसका नाम था मिरज़ा गौर।

तीसरा व्यक्ति एक पचीस-छब्बीस वर्ष का बिलकुल नवयुवक, सुन्दर नवयुवक था। उसकी स्वच्छ बडी-बडी आखें उसके मन की स्वच्छता की द्योतक थी। प्रशस्त माथा सच्चरित्रता प्रकट कर रहा था। उसकी चौडी छाती और अस्थिर होकर बैठने का ढग प्रमाणित कर रहा था कि जिस गुरुतर कार्य की चर्चा हो रही है, उसपर विचार-परामर्श करने मे देर करने की अपेक्षा कुछ झटपट कर डालना ही उत्तम है। उसका हाथ अपनी तलवार पर था, और लगभग आधी तलवार नगी खिची हुई थी। उसका सुन्दर मुह क्रोध से तमतमा रहा था, और बड़े-बड़े श्वासों से उसकी छाती उठ-बैठ रही थी। यह राजा साहब का विश्वस्त शरीर-रक्षक मुकुट था।

राजा वीरसिंहजी कुछ देर स्वस्थ होकर बोले—देखो मिरज़ा, सब बातो की ऊंच-नीच ठीक-ठीक सोच लो। रामशाह ने विश्वासघात तो किया है, पर मेरे बड़े भाई है।

"महाराज, राजाओं का भाई कोई नही है, यह तलवार है। वह भी तभी तक, जब तक हाथ मे रहे। आप स्वय सोच देखिए, और उपाय क्या है?"

मुकुट ने बीच ही में उतावली से कहा—अपराध क्षमा हो महाराज, मुझे आज्ञा दीजिए, मैं रामशाह महाराज का अभी सिर काट लाऊंगा। ऐसा विश्वास-घात भाई के साथ! धिक्कार!!

"ठहरो मुकुट, सब बातों पर धीरज से विचार कर लो, क्रोध करने को बहुत समय है। देखो, उन्होने परसों पाच हज़ार सेना लेकर दुर्ग में प्रवेश किया था।"

"जी हां, और कसम खाकर कहा था कि दो दिन को दुर्ग खाली कर दो, मैं तुम्हारा भाई हूं। विश्वास करो, हम समझाकर शाही सेना वापस कर देगे। दुर्ग भी दो दिन मे तुम्हे दे देगे। पर उसी दिन दस हज़ार शाही सेना और दुर्ग मे बुला ली, और आपपर रात्रि को सोते समय छापा मारा। महाराज मैं कभी क्षमा न करूंगा।"

महाराज वीरसिंह हंस दिए। उन्होने कहा, "अच्छी बात है, मत करना, पर

पन्द्रह हजार सेना से लड़ोगे कैसे ?"

"क्या मेरी तलवार मे दम नही ?"

"बहुत है।"

"तब ?"

"इससे बहुत काम लिया जाएगा ; मुकुट, अभी इसे सुरक्षित रहने दो। हा, मिरजा, फिर तुम्हारा क्या विचार है ? देखो, उधर सम्राट् अकबर की शत्रुता, इधर एक वंश, एक रक्त के भाई का विश्वासघात। घर का द्रोह तो कुछ करने ही न देगा।"

"परन्तु महाराज, सम्राट् स्वयं बड़ी मुसीबत मे है। उधर मेवाड़ मे युद्ध हो रहा है, प्रताप ने उनकी जान आफत में डाल रक्खी है। इधर सलीम ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया है। महाराज, दिल्ली के तख्त का यह गृह-कलह ही हमारी संधि है। महाराज को इससे लाभ उठाना चाहिए।"

"तुम चाहते क्या हो ?"

"महाराज, चुपचाप प्रयाग चलकर सूबेदार और शाहज़ादे सलीम से मुलाकात करें; फिर जो कुछ होना होगा, स्वय ही हो जाएगा।"

"और यदि शाहज़ादे ने मुझे शरण न दी ?"

"शाहज़ादा स्वय आपकी शरण में आवेगा, इसका ज़िम्मा मेरे ऊपर रहा।"

"यह कैसे ?"

"उसे महाराज की सहायता की बड़ी ज़रूरत है।"

"किस तरह ?"

"यह महाराज वहां चलकर ही जानेंगे।"

राजा वीरसिंह सोचने लगे। अन्त मे कहा, "मिरज़ा, अब और कोई उपाय नहीं, चलो प्रयाग। विलंब का काम नही, अभी कूच होगा। मुकुट, घोड़े ले आओ।"

'जो आज्ञा' कहकर मुकुट उठकर चला गया। दोनों योद्धा लम्बी यात्रा की तैयारी करने लगे।

•

इलाहाबाद-दुर्ग के रगमहल से सटे हुए, एक छोटे-से किन्तु अत्यन्त सुसज्जित कमरे में शाहज़ादा सलीम चिन्तामग्न, म्लान-मुख बैठे थे। उनका पीला और दुबला चेहरा, कुछ गढ़े में धंसी हुई उनींदी आंखें उनकी विलासिता को स्पष्ट

कर रही थी। कमरे मे केवल एक अल्पवयस्क, सुन्दर दास मोरछल लिए खड़ा था। नकीब ने आकर अर्ज़ की, "ख़ुदाबद, राजा वीरसिंह बुदेला कदमबोसी को हाज़िर है।"

शाहजादे ने उतावली से कहा, "उन्हे ले आओ न।"

राजा वीरसिंह ने सम्मुख आकर कोर्निश की। शाहज़ादे ने सम्भ्रात उठकर राजा साहब को छाती से लगा लिया, और बराबर बैठाकर कहा, "राजा साहब, आपकी बहादुरी की तारीफ बहुत सुनी है, तभी दोस्ती की ख्वाहिश थी, वह आज पूरी हुई। आप जो मेरे पास तशरीफ ले आए, इससे मेरी ही इज्ज़त अफज़ाई हुई है। अब आप दरगाह को अपना घर समझें, और ऐसा कोई काम बताकर मुझे ममनून करें, जो इस बात को साबित करे कि मैं आपका सच्चा दोस्त बनने का कितना ख्वास्तगार हूं।"

राजा वीरसिंहदेव सलीम की इतनी चापलूसी और उत्सुकता देखकर दंग रह गए, कुछ भी न समझ सके। उन्होने कहा, "हजरत शाहज़ादा, आप मुझ नाचीज़ को क्यो शर्मिंदा करते हैं?" मैं तो आपकी पनाह आया हूं। बादशाह और खास मेरे बड़े भाई ने मेरे साथ दगा की है। फुसलाकर किला खाली करा लिया और धोखा देकर रात को वध करने की चेष्टा की। इन दोस्तो और इस तलवार के बल से जान बचाकर भागा हूं। मिरज़ा गौर ने मुझे दरगाह में आने की सलाह दी है। शाहजादा मुझ शरणागत की इतनी आवभगत करेंगे, मैंने यह सोचा भी न था।"

सलीम ने कहा, "राजा साहब, आप मेरी आंखे और भुजा हैं। आप मेरे सलाहकार और दोस्त हैं। मैं आपके लिए जान भी दूगा। कहिए, आप क्या चाहते है!"

वीरसिंह की आंखो से आसू निकल आए। उन्होने क्षण-भर शाहजादे की तरफ देखा, और कहा, "शाहज़ादा, तब यह सेवक भी रक्त की एक-एक बूद आपको देगा। मेरे बादशाह शाहनशाह अकबर नही आप हैं। आज से आप मेरे मालिक है।"

सलीम ने सिर से पगड़ी उतारकर कहा, "मालिक सबका ख़ुदा है, मैं आपका भाई, छोटा भाई हू, और दिली दोस्त हू। यह पगड़ी लीजिए, और अपनी मुझे दीजिए। आपने मुझे बादशाह कहा है, मैं आपको बुन्देलखण्ड का महाराज कहता हू।"

महाराज ने उठकर पगड़ी आदरपूर्वक ले ली। सलीम भी उठ खड़ा हुआ

महाराज ने अपनी पगड़ी शाहजादा को दी। दोनों एक बार फिर गले मिले।

अब काम की बात का परामर्श होने लगा। धीरे-धीरे सलीम ने दिल की गांठ खोल दी। कहा, "महाराज, आप जानते है, मेरा परम शत्रु कौन है ?"

"कौन ?"

"वह बूढ़ा बाघ, वह शेख !

"कौन शेख ?"

"वह पाजी पाखडी अबुलफजल, जो आलिम कहाता है, और सिपहसालार से भी ऊंचा रुतबा रखता है।"

"शेख क्या कहते है ?"

"बादशाह सलामत को मेरे विरुद्ध उसीने भडकाया है। वह मुझे शराबी, निकम्मा और गुनहगार समझता है। महाराज, वह गुलाम बादशाह सलामत की दाढी का बाल हो रहा है।" सलीम कुछ देर चुप रहे। पर मानो उनका मन बेचैन हो रहा था, कुछ बात थी, जो निकलना चाहती थी। महाराज चुपचाप ये उतार-चढ़ाव देख रहे थे।

सलीम ने फिर कहा, "महाराज, वह फिर दक्षिण से आ रहा है, दक्षिण को फतह करके वह इस बार बादशाह के और भी मुंह लग जाएगा। वह मेरा इस बार नाश कर डालेगा।" इतना कह सलीम ने आतुर होकर महाराज का हाथ ज़ोर से पकड़कर कहा, "महाराज, मेरी मदद कीजिए, दोस्ती निभाइए। सलीम को आप नाशुकरा न पाएगे।"

"शाहज़ादा क्या चाहते है ?"

"यही कि वह आने न पावे, बादशाह से मिलने भी न पावे। उसे आप कैद कर लीजिए या मार डालिए।"

"और यदि वह युद्ध न करे ?"

"वह बड़ा मगरूर और गुस्सैल है, जरूर लड़ पड़ेगा।"

"परन्तु शाहज़ादा, ज़रा सोचिए, यह काम क्या मुनासिब होगा ? बादशाह सब बात जानेंगे, तब..."

"आह महाराज, आप भी मुझे नाउम्मीद करेंगे ?"

"शाहज़ादा, यह काम अच्छा नतीजा न लाएगा।"

"यह काम तो होना ही चाहिए।"

"आप सब आगा-पीछा सोचिए तो।"

"महाराज, बुन्देलखण्ड के महाराज, वह जब तक ज़िन्दा है, तब तक मैं मरा हुआ हू।"

महाराज सोच में पड़ गए। सलीम ने कहा, "महाराज, मेरा तख्त, इज्जत, आज़ादी सब इसी काम पर है। उसे रोकिए, कैद कीजिए या मार डालिए। वह मेरे कलेजे का काटा है, उसे निकालिए। देखिए, यह पगडी यदि आपकी दी हुई न होती, और इसकी यदि मैं इज्ज़त न करता, तो इसे अभी आपके कदमों पर धरता। महाराज, दोस्ती का हक अदा कीजिए।"

महाराज ने गहरी सास ली। उन्होंने कहा, "शाहज़ादा, मैं आपकी इच्छा पूरी करूगा। पर मुझे अभी जाना होगा।"

सलीम फड़क गया। उसने अपना सुनहरी काम का ज़िरह-बख्तर महाराज को पहनाया, अपनी जड़ाऊ तलवार उनकी कमर में बाधी, और सिरोपाव देकर सैयद मुज़फ्फरअली के साथ विदा कर दिया।

शेख अबुलफजल जल्दी-जल्दी कूच करता बढ रहा था। बादशाह सलामत का हुक्म था कि वह जल्दी से जल्दी उनसे मिले। वास्तव में बादशाह को शेख की फौज और उसकी अक्ल की भी बहुत ज़रूरत थी। नरवर जाकर महाराज वीरसिंहदेव ने डेरा जा जमाया। उनके साथ बहुत ही कम सेना थी, परन्तु अब और कुछ हो भी नही सकता था। वीरसिंहदेव ने शेख से कहला भेजा, "मै आपसे मुलाकात किया चाहता हूं, बिना मुझसे मुलाकात किए आप आगे नही बढ़ सकते।"

अबुलफजल क्रोध में भभक उठा। एक तुच्छ राजा का इतना साहस! गुस्से मे भरकर कहा, "मेरा घोड़ा ले आओ। मै अकेला ही उससे मुलाकात करूंगा, और उसका सिर काट लाऊगा। उसकी ऐसी हिमाकत!" एक पठान सरदार ने कहा, "जनाब, बेहतर है, इस वक्त लड़ाई-झगड़े को बचा जाए, बादशाह सलामत का हुक्म तो आपपर ज़ाहिर ही है।"

शेख ने घोड़े की रास खीचकर कहा, "मैंने दखिन फतह किया है। अब इस तरह चाहे जो भी कोई आकर मेरा रास्ता रोकेगा, और ज़बरदस्ती मुलाकात करेगा, तो हो चुका। रास्ता छोड़ो।" बूढे शेख ने दर्प से गर्दन तानी और घोड़े को एड़ लगा दी।

महाराज ने सुना, तो नंगी पीठ घोड़े पर चढ़कर दौड़े। बीच मैदान मे ही दोनों की मुठभेड हो गई। शेख ने तलवार खीचकर कहा, "तुम्हीं वीरसिंहदेव हो ?"

"मै ही हू शेख साहब, मेरी आपसे एक अर्ज़ है !"

"अर्ज़ सुनने की फ़ुर्सत नही ! वार रोको।" इतना कहकर शेख ने वार किया।

महाराज ने पीछे हटकर कहा, "शेख साहब, जरा ठहरिए; मेरी बात सुन लीजिए।"

शेख ने कहा, "तुझपर लानत है, लडाई के वक्त बातें करना चाहता है। तूने मुझे रोकने की जुर्रत क्यो की ? शेख अबुलफजल इस गुस्ताखी को यो ही नहीं बर्दाश्त करेगा।"

शेख ने तड़ातड़ वार करने शुरू किए। महाराज वीरसिंहदेव ने और कुछ वार बचाए। अन्त में वे भी युद्ध करने लगे। दोनो ओर की सेनाएं कुछ क्षण युद्ध देखती रही। हठात् मुगल-दल अर्राकर दौड़ पडा। महाराज की सेना भी टूट पड़ी। एक बार महाराज ने फिर युद्ध रोकने की चेष्टा की, परन्तु इतने ही मे एक गोली शेख की कनपटी को चीरती हुई निकल गई। शेख तत्क्षण मरकर धरती मे गिर गए। उनके गिरते ही शाही फौज तितर-बितर हो गई। महाराज खिन्नवदन शिविर मे लौट आए।

शाहज़ादा सलीम अन्तःपुर के निकट, नज़रबाग के बीचोबीच, एक सगमरमर के चबूतरे पर, कीमती ईरानी कालीन पर बिछे हुए एक सोने के सिंहासन पर, मसनद लगाए बैठे थे। मिरज़ा गौर ने एक थाल शाहज़ादे के सामने पेश किया। सलीम ने कहा, "क्या लाए हो ?"

"तोहफा है हुजूर !" मिरज़ा ने लाल रेशमी रूमाल उठा लिया, थाल में अबुलफज़ल का सिर था।

सलीम उछल पड़े। उन्होने कहा, "मिरजा, तुम्हे भरपूर इनाम मिलेगा, महाराज कहां हैं ?"

"वे बाहर शाहज़ादे के हुक्म की इन्तज़ारी में खड़े है।" महाराज ने धीरे-धीरे आकर शाहजादे को कोर्निश करके कहा, "शाहज़ादा, आशा है आप सन्तुष्ट होंगे, वह अनुचित काम मैने अन्ततः अंजाम दे दिया।"

शाहज़ादे ने खुशी में कहा, "महाराज, आपने हमे सारा राज्य दे दिया। आपने हमारा अधिकार दृढ़ कर दिया है।" इसके बाद उन्होने संकेत किया। एक खोजा सोने के थाल में मोती-जवाहरात और बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएं भर लाया। सलीम ने खड़े होकर महाराज को बुन्देलखण्ड का राजतिलक कर दिया। वह रत्न-भरा थाल, एक जड़ाऊ माला, एक राजछत्र, दो चवर भेंट किए।

# प्रबुद्ध

अमिताभ बोधिसत्त्व गौतम बुद्ध की प्रभाव-सत्ता की समता विश्वमानवों में केवल ईसा कर सकता है, वह भी आंशिक। तिसपर गवेषणाएं ऐसी है कि कहा जाता है—ईसा बौद्ध शिष्य है। गौतम बुद्ध ने ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व भारत में जन्म लेकर जिस धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया वह विश्व का सर्वप्रथम सर्वसभ्य विश्वधर्म था। सारे संसार की सभ्य, अर्धसभ्य जातियो को उसने संयम, प्रेम, त्याग और अहिंसा का संदेश दिया और जिस काल सामन्तशाही तथा स्वेच्छा-जीवन ही रूढिवाद बना हुआ था, धर्म और जीवन को उसने व्यावहारिक और सरल रूप दिया। मनुष्य जाति को उसने वह दिव्य चक्षु दिया जिससे वह ज्ञानावलोकन कर अपना और औरो का भला कर सके। प्रस्तुत कहानी में उसी दिव्यात्मा के जीवन-रेखाचित्र भाव-ध्वनि मे अंकित है। यह कहानी सन् १९२६ में लिखी गई थी और इसके लिखने में नौ माह लगे थे। उन दिनो हिन्दी में बौद्ध साहित्य का अध्ययन विरल था और आचार्य के साहित्य-प्रांगण में प्रवेश का भी प्रभात था। इस दृष्टि से कहानी में उदीयमान भावी महान साहित्यकार के दर्शन होते है। कहानी में भाव-कल्पना और मानसिक घात-प्रतिघात का प्रभावशाली और गम्भीर प्रदर्शन है तथा कथनोपकथन-शैली में सतेज प्रवाह है जो भावों और विचारों के अद्भुत एकत्व का प्रकटीकरण करता है—कहानी में महाप्राण बुद्ध के अन्तर्द्वन्द्व को साकार किया गया है।

वृद्ध महाराज शुद्धोदन विशेष प्रसन्नवदन दिखाई पड़ रहे थे। वे प्रासाद के भीतरी अलिन्द में एक स्फटिक मणि की पीठ पर बैठे थे। उन्होंने सम्मुख कुछ दूर पर खड़े हुए प्रतिहार को पुकारकर कहा—अरे ! देख तो, युवराज सिद्धार्थ अभी मृगया से लौटे या नहीं ?

प्रतिहार ने आगे बढ़ और धरती पर बल्लम टेककर कहा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव, महाभट्टारकपादीय महाकुमार अभी-अभी मृगया से लौटे हैं, और वे वायुमण्डप में विश्राम कर रहे हैं।

"अच्छा-अच्छा, महानायक प्रबुद्धसेन और महामात्य विजयादित्य को यहा भेज दो।"

प्रतिहार ने नतमस्तक हो प्रस्थान किया। महाराज ने चंवरवाहिनी को सकेत से निकट बुलाकर कहा—जा, राजमहिषी से कह दे कि आज ही तो भाण्ड-वितरण का दिन है, सभी राजकुमारिया आ गई होगी। वे स्वय उनकी शुश्रूषा करें। ऐसा न हो कि किसीको खिन्न होने का अवसर मिले।

महानायक प्रबुद्धसेन ने अलिन्द में आ स्थिर भाव से सम्मुख खड़े होकर और खड्ग को उष्णीष से लगाकर पुकारा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव······

महाराज ने बीच मे ही हसकर कहा—महानायक, आज सभी सेना सज्जित करनी चाहिए। ज्योंही कुमार सिद्धार्थ अन्तिम भाण्ड-वितरण करें, त्योंही जयघोष और सैनिक अभिवादन होना चाहिए। आज ही कुमार सिद्धार्थ सैना को पताका प्रदान करेगे।

महानायक ने नतमस्तक होकर कहा—महाराज की जय हो। समस्त सेना सज्जित होकर भट्टारकपादीय महाराजकुमार के अन्तिम भाण्ड-वितरण की प्रतीक्षा कर रही है।

महामात्य विजयादित्य ने आ, नतजानु होकर महाराज का अभिवादन किया। महाराज ने प्रफुल्लवदन होकर कहा—महामात्य! अब तो समय उपस्थित है, फिर विलम्ब क्यो? सभी राजकुमारिया आ तो गईं? तुम कुमार सिद्धार्थ को तृतीय अलिन्द में ले जाओ, वही भाण्ड-वितरण किया जाएगा। हा, तुम कुमार के सर्वथा निकट रहना और उनकी गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना। नेत्रो का तारतम्य और ओष्ठ-प्रस्फुरण गूढ़ मनोगत भावो को प्रदर्शित कर देगा। ज्योही तुम देखो, कुमार किसी कन्या के प्रति आकर्षित हुए है, त्योही तुम शख-ध्वनि करना, और पुरोहित को शुभसवाद देकर मेरे निकट भेज देना। —इतना कहकर महाराज हंस दिए।

वृद्ध महामात्य भी हसे। उन्होंने कहा—जो आज्ञा, परन्तु कोली राजकन्या यशोधरा अभी तक नही आई है। वह···

बीच में ही एक दण्डधर ने उपस्थित हो, उच्च स्वर से जयनाद करके कहा—कोली राजकन्या भट्टारकपादीय महाराजकुमार से भाण्ड-प्रसाद पाने की अभिलाषा से आई है। वे द्वार पर उपस्थित हैं।

महाराज ने हठात् खडे होकर कहा—जाओ, जाओ, राजमहिषी से कहो कि वे राजनन्दिनी का यथेष्ट स्वागत करे ।

महामात्य ने नतमस्तक होकर कहा—तो अब मै जाता हू ।

"शिवास्ते पन्थानः सन्तु !"

महाराज फिर अलिन्द मे अकेले रह गए। उस समय न जाने कितनी सुखद स्मृतियां उनके हृत्पिण्ड को विकसित कर रही थी ।

वायु-मण्डप की एक स्वच्छ शिला पर राजकुमार सिद्धार्थ विषण्णवदन बैठे थे। उनके शरीर पर केवल एक उत्तरीय और अधोवस्त्र था। वे मानो किसी गहन चिंता में मग्न थे । वसन्त की मृदुल वायु उनके काक-पक्ष को लहरा रही थी। कुसुम गुच्छ झूम-झूमकर सौरभ बखेर रहे थे। तप्त स्वर्ण के समान उनकी शरीर-कान्ति उन महीन वस्त्रों से बिखरी पड़ती थी। उनका मुख, चिन्तन की गम्भीर भावना के कारण प्रस्फुटित किशोरावस्था की उत्फुल्लता से रहित हो गया था; पर उसका अप्रितम सौन्दर्य कुछ और ही रग ला रहा था। उनकी सुडौल गर्दन, विशाल वक्षस्थल, प्रलम्ब बाहु और केहरी जैसी ठवन असाधारण थी। सुकोमल हृद्गत भाव, सुकुमार देह और पुस्त्व का उद्गम एक अलौकिक मिश्रण बना रहा था। वे शिलाखण्ड पर बैठे दोनो हाथो में जानु देकर सम्मुख पुष्करिणी मे खिले एक कमल पुष्प पर बार-बार मत्त भ्रमण का प्रणय-आक्रमण देख रहे थे। परन्तु उस विनोद का कुछ प्रभाव उनके हृदय पर था—यह नहीं कहा जा सकता। उनकी दृष्टि भ्रमर पर थी अवश्य, पर वे किसी गूढ़ जगत् में विचर रहे थे। कभी-कभी उनके होंठ फड़क उठते और कोई शब्द-ध्वनि उनमें से निकल जाती थी। वे इतने मग्न थे कि कब कौन उनके निकट आ खड़ा हुआ है, यह उन्हे ज्ञात ही नही हुआ।

पीछे से स्पर्श पाकर उन्होंने चौककर देखा और सम्भ्रान्त भाव से खड़े होकर वे आगत् वृद्ध पुरुष को प्रणाम करते हुए बोले—आर्य की उपस्थिति का कुछ भी भान नही हुआ !

वृद्ध महापुरुष ने हंसकर कहा—होगा कैसे, तुम स्वयं उपस्थित रहो तब न ? क्षण-भर भी एकान्त हुआ और तुम गम्भीर चिन्तन में मग्न हुए। कुमार ! क्या प्रतापी शाक्यवंश के एकमात्र उत्तराधिकारी के लिए यह उचित है ?

"आर्य, क्षमा कीजिए। मैं भविष्य मे इसका ध्यान रखूगा; परन्तु···आज मेरी

परीक्षा हो गई न ?"

"आशातीत ! तुम्हारे जैसे अन्यमनस्क शिष्य से मुझे इतनी आशा न थी। सभी कहते थे कि कुमार लक्ष्य-वेध न कर सकेंगे। तुम अभ्यास ही कब करते थे ! परन्तु आज तुम्हारा हस्त-लाघव देखकर मैं गद्‌गद हो गया। कुमार ! मैं धन्य हुआ। तुम शाक्यवंश के दीपक होगे। मैं भविष्यवाणी करता हूं—तुम अप्रतिम योद्धा···" वृद्ध पुरुष कुमार के कन्धे पर स्नेह से हाथ रखकर उपर्युक्त वचन कह रहे थे।

कुमार ने बीच में ही बात काटकर कहा—आर्य ! पुरजन फिर तो मेरी परीक्षा का हठ न करेंगे ?"

"कभी नहीं, वे पूर्ण सन्तुष्ट हैं। सर्वत्र ही तुम्हारी अप्रतिम शस्त्रकला की चर्चा हो रही है। पर तुम क्या विशेष थके हुए हो ?"

"तनिक भी नही।"

"तब यह एकान्त-सेवन क्यों ? यह गम्भीर चिन्तन क्यो ? और यह विषण्ण मुखमुद्रा क्यो ?"

"आर्य अत्यन्त स्नेह के कारण ऐसा विचार करते हैं। परन्तु···अरे ! महामात्य इधर ही आ रहे है—आर्य, हमे आगे बढ़कर अमात्यवर का अभिवादन करना चाहिए।"

दोनो व्यक्ति वायु-मण्डप के द्वार तक बढ आए। महामात्य ने हसकर कहा—आयुष्मन् ! आज तुम आखेट मे विजय प्राप्त कर आए। इस समाचार से अन्तःपुर में विशेष उल्लास हो रहा है; महिषी की इच्छा है कि आज सभी राजकुमारिया समुपस्थित है, कुमार उन्हे अपने हाथो से रत्न-भाण्ड प्रदान कर उन्हे प्रतिष्ठित करें।

कुमार ने सलज्ज भाव से कहा—माता की जैसी आज्ञा। तीनों व्यक्ति धीरे-धीरे प्रासाद की ओर चल दिए।

उषा की अलौकिक रश्मि-रेखा की तरह सबके अंत में कोलराजनन्दिनी यशोधरा ने कक्ष मे प्रवेश किया, मानो उन्हें देखते ही कुमार सिद्धार्थ का चिर-निद्रित यौवन जागरित हो उठा। वे धीरे-धीरे सौरभ, आलोक और शोभा बखेरती हुई व्यास-पीठ तक पहुंचकर कुमार के सम्मुख खड़ी हो गईं। वे सिमट

रही थी और झुक रही थी; न जाने अविकसित यौवन के भार से अथवा लज्जा के भार से। वे सम्मुख खड़ी होकर भूमि पर दृष्टि गड़ाए पद-नख से धरती पर बिछे स्फटिक-प्रस्तर पर रेखा खीचने का व्यर्थ प्रयास कर रही थीं।

कुमार चित्रलिखित-से देखते रह गए। वे जागरित भी प्रसुप्त-से थे। कुमार के निकट खड़े अमात्यवर ने कहा—राजनन्दिनी को भाण्ड प्रदान करो आयुष्मन्।

कुमार ने घबराकर इधर-उधर देखा और अस्त-व्यस्त स्वर मे कहा—शुभ्रे! तुमने अति विलम्ब किया, भाण्ड तो सभी वितरण हो चुके।

राजनन्दिनी क्षण-भर उसी तरह खड़ी रही। फिर उन्होने ऋतु प्रणाम करके लौटने का उपक्रम किया।

कुमार असयत होकर आगे बढ़े और कण्ठ से मणिमाला निकालकर उन्होंने कुमारी के गले में डाल दी। कुमारी ने दृष्टि उठाकर कुमार के प्रदीप्त स्वर्णमुख की ओर देखा। वे पत्ते की तरह कापने लगी और उनका मुख प्रस्वेद से भीग गया। कुमार जड़वत् खड़े थे। हठात् महामात्य ने शख-ध्वनि की। क्षण-भर मे भुशुण्डिकाए गर्ज उठी। उसके बाद ही विविध वाद्य-ध्वनि से राजप्रासाद गुजायमान हो गया।

कुमार ने विचलित होकर कहा—आर्य! यह क्या हुआ? पर उन्होने देखा, कक्ष मे वे है और पुण्य-भार से झुकी हुई लतिका के समान राजनन्दिनी यशोधरा हैं। उन्होने साहस करके कहा—राजनन्दिनी क्या प्रतिदान की अभिलाषा रखती है?

कुमारी के अधरोष्ठ में एक क्षीण हास्य-रेखा और कपोलो पर लाली आई और गई। उन्होंने नतजानु होकर महाराजकुमार को अभिवादन किया और उसके बाद वहां से चली गईं।

क्या हम प्रेम की व्याख्या करें? उस प्रेम की, जहां शरीर-सम्पत्ति प्रेम का माध्यम नही है; जहा केवल प्राणों में प्राणो का लय है; जो नेत्रपटल पर नही तौला जाता; केवल आत्मा जिसमे विभोर होती है, जो जीवन से मृत्यु तक और मृत्यु से परे भी वैसा ही पारिजात-कुसुम की तरह अक्षय विकसित रहता है; वासना का यहा सम्पर्क नही; भोग और तृप्ति का यहां प्रसग नही; अभिलाषा और अरुचि दोनों ही यहा नहीं; जहा सुख नहीं, आनन्द है; जहा कुछ भी प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं—सब कुछ प्राप्त है। इस पृथ्वी-तल पर दाम्पत्य जीवन

मे यह प्रेम किस महाभाग ने प्राप्त किया ?

गौतम ने यशोधरा का आचल खीचकर कहा—गोपा प्रिये! अब बस करो, चंगेरी तो भर चुकी। अब इन पुष्पों को लताओ में इसी तरह विकसित छोड दो। ये कल तक तो खिले रह सकेगे ? देखो, जिन डालियों के पुष्प तुम तोड़ चुकी हो वे कितनी अशोभनीय हो गई हैं ?

"होने दो, आर्यपुत्र ! ये कल फिर फूलो से लद जाएंगी। यह तो प्रकृति का स्वभाव है। आप व्यर्थ ही इतना विषाद करते है।"

"व्यर्थ ? नही प्रिये ! इन कुसुम-लतिकाओं के प्रति तुम्हारा आचरण नितांत निष्ठुर है। अभी प्रात काल तो तुम इन्हे अपने हाथो सीच रही थी—सो क्या इसीलिए ?"

"और नही तो क्या ? आर्यपुत्र क्या मुझे ऐसी ही निःस्वार्थ समझे बैठे है ? —मैंने सीचा है तो फूल भी चुनूगी। यह तो जगत् की गति ही है। और यह निष्ठुर आचरण क्या इतना ही ? अभी तो मै रुचि से गूथकर माला बनाऊंगी। ये यूथिका, चम्पा और कुन्द क्या यो ही अस्त-व्यस्त चगेरी मे पड़े रहेंगे, जैसे आर्य-पुत्र के विचार पड़े रहते है ?"

"उलाहना मत दो, प्रिये ! तुम्हें तो उदार होना ही चाहिए। तुम राजनन्दिनी हो, हाय-हाय ! क्या तुम इन कोमल पुष्पो को सुई से विद्ध भी करोगी ?"

"आर्यपुत्र! देखते रहे, मैं एक-एक को विद्ध करूंगी। मैं राजनन्दिनी हूं, पालन करना, कर ग्रहण करना और दण्ड-भय से शासन और सुव्यवस्था बनाए रखना मेरा कर्तव्य है। जल-सिचन करके मैंने पालन किया, पुष्प-चयन करके कर ग्रहण कर रही हूं, और अब सूची-शस्त्र के बल से सुव्यवस्थित करके माला बनाऊंगी। फिर आर्यपुत्र के वक्षस्थल पर वह सुशोभित होगी ; और मेरे परिश्रम का वेतन मुझे प्राप्त होगा।"—इतना कहकर गोपा हस पडी।

महाराजकुमार सिद्धार्थ ने उसे दृढता से पकड़कर कहा—पर मैं विद्रोह करूंगा, अब मैं तुम्हें अधिक यह कर-शोषण नही करने दूगा, प्रिये! चाहो तो मुझे दण्ड दो।

"अच्छी बात है ? मैं तुम्हे बाधकर डाले देती हू।"

इतना कहकर गोपा ने अपने दृढ़ भुज-पाश में कुमार को बाध लिया।

महाराजकुमार के अन्तस्तल में सदैव जागरित प्रबुद्ध सत्ता उस मद से क्षण-

भर को मूर्छित हो गई। उन्होने पत्नी-श्रेष्ठ का प्रगाढ आलिगन करके चुम्बन किया।

गोपा ने हंसकर कहा—आर्यपुत्र स्मरण रखें कि यह अनुग्रह वेतन में नही काटा जाए, पुरस्कार-मात्र समझा जाए।

राजकुमार हस पड़े। उन्होने कहा—गोपा प्रिये ! उस दिन तो तुम इतनी चपला न थीं, जिस दिन भाण्ड-वितरण...

"आर्यपुत्र के पास इसी बात का क्या प्रमाण है कि मैं बालिका हू ?" गोपा ने बात काटकर कहा।

"वही तो हो प्रिये ! यह नेत्र और यह अधरोष्ठ, इन्हे क्या मैं भूल जाऊंगा ? ओह, इन्हींने तो मुझे ठगा।"

राजकुमार मानो एक गम्भीर चिन्तन मे पड गए।

गोपा ने व्याज कोप से कहा—आर्यपुत्र को भ्रम हुआ है। वे थी राजनन्दिनी यशोधरा—कोलकुमारी, और मैं हूं भगवती गोपा—शाक्यसिहासन की युवराज्ञी।

"अच्छा, अच्छा, प्रिये ! अब चलो, प्रासाद मे चले, सूर्य अस्त हो रहा है ; तुम्हें शीत का भय है।"

"जो आज्ञा आर्यपुत्र !"

"अर्द्धरात्रि तो कब की व्यतीत हो गई। त्रिशिरा नक्षत्र आकाश के मध्य भाग में आ गए। आर्यपुत्र क्या शयन न करेगे ?"

"ओह प्रिये ! तुम अभी तक जाग रही हो ?"

"सारा संसार मोहमयी निद्रा मे शयन कर रहा है।"

"हाय ! यह कैसे दु.ख का विषय है !"

"कैसा घोर अधकार है !"

"पर मेरा हृदय प्रकाशित है।"

"मेरे प्रभु ! तुम्हारे इतने निकट होने पर भी मैं उस प्रकाश की एक किरण भी नही देखती।"

"मैं उसे ससार के प्राणि-मात्र को दिखाने की बात सोच रहा हू, प्रिये!"

"इस स्तब्ध अन्ध निशा में ?"

"अन्ध निशा तो मानवहृदय में ओतप्रोत है। तुम समझती हो, जब सूर्योदय

होगा, तब वह छिन्न-भिन्न हो जाएगी ?"

"मैं मूर्ख स्त्री और क्या सोचूगी !"

"नही गोपा, आत्मप्रतारणा की आवश्यकता नही; पर इस बात को तो सोचो। मानव-आत्मा न जाने कब से उसी प्रकार से सो रही है जैसे इस समय ससार। और वह उसी प्रकार अन्धकार मे व्याप्त है जैसे इस समय पृथ्वी। यह निद्रा और अन्धकार कुछ समय में दूर हो जाएगा, उषा का उदय होगा, जगत् सुन्दर हो जाएगा, प्रकृति भाति-भाति के रंग का श्रृंगार करेगी, आलोक से आकाश और भू-लोक शोभायमान होगा, आह ! कैसी सुन्दर बात है, परन्तु मानव-हृदय का अन्धकार और सुषुप्ति तब भी दूर न होगी। यह अक्षय अन्धकार यह चिर मोह-निद्रा मनुष्य पर शाप है। मनुष्य-जाति के इस दुर्भाग्य पर तुम्हे करुणा नही आती ?"

"और इस अनन्त मानव-समुदाय में अकेले आर्यपुत्र जागरित है ?"

"प्रिये ! व्यग्य क्यों करती हो ?"

"अच्छा, आर्यपुत्र ! इस अन्धकार में जागरित होकर किस सौभाग्य की आशा करते हैं ? इस अन्धकार मे तो जागरित पुरुष की अपेक्षा सुख से सोए पुरुष ही अधिक भाग्यशाली है।"

कुमार ने उत्तेजित होकर गोपा का हाथ पकड़ लिया। कहा—किन्तु, यदि उनका कभी प्रभात न हो तो ? उस निद्रा का कभी अवसान न हो तो ?

गोपा विचलित हुई, निरुत्तर हुई। वह पति के निकट बैठकर कुछ सोचने लगी।

सिद्धार्थ ने कहा—प्रिये ! यदि मैं अपने प्रकाश की रेखा से इस अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर सकू ? जागरित होकर मानव-समाज सुन्दर आलोक देखे तो, गोपा ! क्या हमारा जीवन धन्य न होगा ?

"अवश्य !" गोपा ने दृढ़ता से कुमार का हाथ पकड़कर कहा।

"तब इसके लिए हृदय विदीर्ण करना पड़ेगा।"

"विदीर्ण ?"

सिद्धार्थ कुछ न बोले। दोनो महाप्राण आन्दोलित हो रहे थे, "हृदय विदीर्ण करना होगा ?"…गोपा का माथा घूमने लगा। वह ज़ोर से कुमार का आलिगन करके रोने लगी। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ कह न सकती थी; वह बहुत दिन से एक आशका को मन से दूर करने की चेष्टा कर रही थी, पर कर

नही सकती थी। कुमार के भाव को वह कुछ समझ न सकी, पर 'हृदय विदीर्ण' होने की भावना वह सह न सकी—वह पति के वक्षस्थल पर गिरकर फूट-फूटकर रो उठी।

एक बार महाराजकुमार की अन्तर्हित प्रबुद्ध सत्ता फिर मूर्छित हुई। उन्होने गोपा को गाढा आलिगन करके बार-बार उसका चुम्बन किया। धीरे-धीरे दोनो प्राणी शयनकक्ष की ओर चले गए।

"देखो प्रिये, यह क्या हो रहा है?" कुमार ने मुर्झाकर डाली पर झुके एक पुष्प की ओर सकेत करके कहा।

गोपा ने देखा और वह आश्चर्यचकित हो कुमार की तरफ देखकर बोली—आर्यपुत्र का अभिप्राय क्या है?

"अभी कुछ देर पूर्व सूर्य की किरणो ने इस पुष्प को छुआ, यह खिल पड़ा। सूर्य तो अस्त हो रहा है और यह मुर्झा रहा है; अब यह सूखकर झड़ जाएगा।" यह कहकर उन्होने पत्नी की ओर देखा।

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा को एकटक देख रही थी। कुमार ने फिर कहा—गोपा प्रिये! मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही हे।—उनकी दृष्टि गोपा के मुख से हटकर एक बार दोलायमान हुई और फिर वह दूर क्षितिज पर डूबते हुए सूर्य पर अटक गई। मुख पर कुछ हास्य-रेखा आई, पर वह गई नही। वे जड़वत् वैसे ही बैठे रहे।

गोपा घबरा गई। उसने कहा—आर्यपुत्र, अब और क्या विचार रहे है?

कुमार ने चौककर कहा—ओह कुछ भी तो नही, प्रिये! आज मैं नगर मे गया था। वहां मैंने राजपथ पर एक पुरुष देखा, वह एक लाठी के सहारे बड़े कष्ट से चल रहा था। उसके नेत्र इतने निभ्रमथे कि उनकी अपेक्षा नेत्र न होते तो हानि न थी; दात सभी गिर गए थे। उससे उसका मुख तो विकृत हो ही गया था, वाणी भी अस्पष्ट हो गई थी, उसकी खाल काली होकर लटक गई थी और हड्डिया चमक रही थी। उसका अंग-अग काप रहा था। वह बड़े चाव से मेरीओर देख रहा था। मैं उसके निकट गया। उसने कापते-कांपते हाथ ऊपर उठाकर मेरा अभिवादन किया और कहा—कुमार! एक दिन मैं तुमसे भी अधिक सुन्दर था, और एक दिन तुम भी ऐसे ही हो जाओगे। मैने सोचकर देखा। प्रिये! उसका

कथन सत्य हो सकता है।

गोपा कुमार की ओर देखती रही; उसके होठ कांपकर रह गए। कुमार बोले—कुछ आगे चलने पर एक और हृदयद्रावक दृश्य देखा। एक पुरुष को लोग उठाकर ले जा रहे थे। मैंने उन्हे रोककर पूछा : यह क्या है ? उन्होने कहा : यह मर गया है। मैंने उसे देखा, वह न हिल सकता था, न बोल सकता था, उसमे प्राण नही था। वे उसे भस्म करने को ले जा रहे थे। एक ने कहा : अन्त में सभीको ऐसा होना पड़ेगा।

राजकुमार हठात् उठ खड़े हुए। उन्होने शून्यदृष्टि से आकाश की ओर देखा। उनके हृदय का मानो कोई ज़ोर से मन्थन कर रहा था। उन्होंने कातर कण्ठ से गुनगुनाकर कहा—वह कैसी भयानक दशा है ! राजा और रक यहा विवश है ! क्या इस दुःख से छूटने का कोई उपाय ही नही है ? फिर तो ये सुख, राजप्रासाद, धन और अधिकार विडम्बना-मात्र है ? जब ये चिरस्थायी ही नही, जब उस अवश्यम्भावी अवस्था के प्रतिकार मे ये समर्थ ही नहीं, तब ?—उन्होने ज़ोर से पुकारकर कहा—गोपा प्रिये ! तब ?

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा और भाव-भगी से डर गई। उसने त्रस्त स्वर मे कहा—आर्यपुत्र, क्या सोच रहे है ?

"प्रिये ! कोई गूढ वस्तु कही छिपी है !"

"इस राज-सम्पदा से, अधिकार-सत्ता से भी अधिक ?"

"हां।"

"इस यौवन, सौन्दर्य और आनन्द से भी अधिक ?"

"हां।"

"आपकी इस चिरकिङ्करी से भी अधिक ?"

"ओह, गोपा प्रिये, ठहरो ! वह गूढ वस्तु हमें प्राप्त करनी चाहिए।"

"और वह है कहा ?"

"मैं उसे ढूढूगा, वह मनुष्य-मात्र के दु.ख को दूर करने की तालिका होगी।" उनके होठ फडकने लगे और नेत्र उन्मीलित हो गए।

गोपा एक बार कम्पित हुई। उसने कुमार का हाथ पकडकर उठाया और कहा—आर्यपुत्र ! नगर-निरीक्षण तो आपने किया, अब मेरी सारिका का निरीक्षण भी कीजिए, देखिए, यह आपकी तरह मेरा नाम पुकारना सीख गई है। आज

आपको उस मयूर के जोडे को स्वयं भोजन कराना होगा। इसके सिवाय आज आप अन्धकार-निरीक्षण न कर सकेगे ? अभी से शयन-कक्ष मे रहना होगा।

बहुत चेष्टा करने पर उसके होठों पर हास्य आया। कुमार ने अन्यमनस्क होकर कहा—अच्छा प्रिये ! तुम्हारी ही बात रहे।

'पुत्र ! हे भगवान ! यह नया बन्धन उत्पन्न हो गया ! गोपा क्या कम थी ? वह आनन्द और हास्य का मधुर अमृत एक क्षण भी मुझे नीरस नही रहने देना चाहता। परन्तु जो स्वभाव से नीरस है, वह सरस होगा कैसे ! गोपा के प्रेम-पाश को तोड़ने मे मैं कितना बल लगा चुका, वह टूटा नही। अब यह पुत्र ? अरे ! कैसा सुन्दर है यह ! इसे केवल एक बार देखने के लिए मैंने समस्त संयम नष्ट कर दिया। वह स्वर्ण की दीप्त कान्ति धारण करनेवाला अर्द्धनिमीलित नेत्र, छोटा-सा मुख, मानो मेरी ही एक सजीव छाया—मुझसे पृथक् परन्तु मेरे प्राणों की एक कोर ! मैने प्राण दिया और गोपा ने शरीर। गोपा के समान ही सुन्दर और प्रिय, कोमल और रुचिर। अरे ! वह मेरा पुत्र है। हम दोनों के प्राण और शरीर जिस महायोग में एक राशि पर आए, वह इन्द्रियातीत आनन्द का आदान-प्रदान जिस क्षण हुआ, उसकी ऐसी स्थायी स्मृति ? गोपा ! जादूगरनी, यह क्या किया ? उस एक क्षण के करोड़वें हिस्से की आनन्द-लहर को तूने ऐसा स्थिर बना दिया ? मैने उसे गोद मे उठाया। गोपा का वह मूक अनुरोध और वह अप्रतिम उल्लास ? गोपा के नेत्रो में मानो उसके प्राण ही आ गए थे। उसने उसे मेरी गोद मे दिया और मेरे चरण-चुम्बन किए—यह इतनी विनय क्यों ? तब की गोपा प्रिया अब मातृभाव में आप्लावित हुई ! अच्छा ठहरो, उसके नेत्र कैसे थे ? गोपा ने कहा था, ठीक मेरे जैसे ! अरे ! कही मैंने ही तो जन्म नहीं ले लिया ? नही तो उस अबोध बालक पर मेरी इतनी ममता क्यों होती ? मेरा-उसका परिचय कब का है ?'

राजकुमार को कोमल शय्या पर नीद न आई। वे चुपचाप उठकर उपवन मे टहलने लगे। उनके विचारों में फिर उत्तेजना उत्पन्न हो गई। वे पुत्र की बात को सोचते-सोचते चिन्ता में मग्न हो गए—ऐं ! यह कैसा सुख, यह कैसा सौभाग्य, जिसमें निद्रा का भी नाश हो गया ? सारा संसार तो सो रहा है। यह तो चिन्तनीय विषय है, जो सुख है, वह भी दु:ख का मूल है। कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं, जो

मानव-जीवन की इस कठिन व्याधि का उपाय जानता हो। राजकुमार एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठकर जीवन, मरण और उत्पत्ति के विचार में मग्न हो गए।

उस अभेद्य अन्धकार मे मानो उनके दिव्य चक्षु खुल गए। उनसे उन्होंने देखा : ससार का सुख दु खदायी, मृत्यु अनिवार्य और भवितव्य है, पर यह जानकर भी लोग अज्ञान के अन्धकार मे ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, और सत्य की खोज नही करते। कुमार का हृदय अगाध दया से भर गया।

हठात् राजकुमार ने देखा, सम्मुख वृक्ष के नीचे एक गम्भीर महापुरुष खड़े है। कुमार ने पूछा—तुम कौन हो ? और कहा से आये हो ?

"मैं श्रमण हूं, बुढ़ापे के दु खों और रोगों की पीड़ा तथा मृत्यु के भय से मैं घर-द्वार का परित्याग करके निकला हूं; मैं मुक्ति का अन्वेषक हूं, क्योंकि संसार के सब पदार्थ नष्ट हो जाते है। केवल सत्य ही सदा साथ रहता है। प्रत्येक वस्तु बदलती रहती है, कोई पदार्थ स्थिर नही है। मैं अक्षय आनन्द को चाहता हूं, मैंने ससार त्याग दिया है। मैं भिक्षा मांगकर खा लेता हू। मैंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, मै अपने उद्देश्य में तत्पर हूं।"

"मैं भी इन्द्रियों के विषयो की निस्सारता को अच्छी तरह समझ गया हूं। मुझे भोग से घृणा हो गई है। मेरा जीवन मुझे शून्य दीखता है। क्या तुम कह सकते हो कि इस अशान्त जगत् मे कही शान्ति मिल सकती है ?"

"जहा उष्णता है वहा शीतलता भी है। पर महान सुख के लिए महान परिश्रम भी करना होगा। पापविद्ध व्याकुल आत्मा को उस कल्याण-मार्ग का शोध करना चाहिए जो निर्माण की ओर जाए। निर्वाण-सरोवर मे स्नान करने से सारे पाप धुल जाएगे।"

"आह ! तुम्हारा समाचार शुभ है। मेरे पिता और पत्नी मुझे राजकाज में लगाना चाहते है। वे घराने की कीर्ति के इच्छुक है, वे कहते है कि यह समय धर्मजीवी बनने के लिए उपयुक्त नही।"

"आह, यही समय है जब मोह का अन्धकार आत्मा पर छाया हुआ है।"

"महाश्रमण ! धर्मान्वेषण का समय आ गया, मैं उन सब बन्धनों को तोड़ डालता हूं, जो धर्म-प्राप्ति में बाधक है।"

राजकुमार ने एक बार उच्च अट्टालिका की ओर देखा। श्रमण ने कहा—कुमार सिद्धार्थ ! तुम्हारी जय हो ! तुम महान हो ! तुम तथागत हो ! देखो,

सत्य को पराकाष्ठा तक पहुंचाना। जिस प्रकार सूर्य सब ऋतुओं में स्थिर होकर अपने नियमित मार्ग पर चलता है, उसी प्रकार तुम भी सत्य-पथ पर अटल रहना। तुम 'बुद्ध' होगे, तुम लक्षावधि मनुष्यो की बुद्धि को शुद्ध करोगे, तुम जगत् के पथ-प्रदर्शक होगे।

सिद्धार्थ ने देखा, महापुरुष यह कहते-कहते अन्तर्धान हो गए। वे उठ खडे हुए। उन्होने कहा—मैंने सत्य का साक्षात् कर लिया। मै अव बन्धनों को तोड़ूंगा। मैं बुद्ध-पद प्राप्त करूंगा।

वे धीरे-धीरे गम्भीर चिन्तन करते हुए अलिन्द की ओर लोटे।

माता और पुत्र सुख-नींद मे बेसुध सो रहे थे। गोपा के अरुण अधर पर हास्य की रेखा फैल रही थी, और उनके बीच कुन्दकली के समान दात चमक रहे थे। वह किस सुख-स्वप्न को देख रही है?—कुमार क्लान्त भाव से खड़े-खड़े यही सोचने लगे, गोपा का एक हाथ शिशु के वक्ष पर था। उस सुगन्धित कक्ष मे शिशु का छोटा किन्तु अति मनभावन मुख दीप्त हो रहा था। सिद्धार्थ का हृदय भर आया। उन्होंने प्रण किया · मै सकल्प पर स्थिर रहूंगा। फिर भी उनके नेत्रो से अश्रुधारा बह चली। वे बोले—और यह शोकावेग कितना दुर्धर्ष है? इस धारा के वेग को रोकना कितना कठिन है? कुमार आगे बढ़कर शय्या के पास घुटनों के बल बैठ गए। एक बार उन्होंने शिशु का मुह चूमने का उपक्रम किया, पर जागने के भय से वे वैसे ही बैठे रहे। गोपा की सुख-निद्रा पर उनकी दृष्टि थी। अश्रु वेग से उमड़ रहे थे। अन्त में उन्होने हृदय में वह साहस सचित किया जो पृथ्वी पर कभी किसी तरुण ने नही किया था। वे धीरे से उठे। उन्होने दोनों हाथो की मुट्ठी बांधकर आकाश में स्तब्ध तारागणों की ओर देखा, और फिर एक दृष्टि गोपा के स्निग्ध यौवन और शिशु के अज्ञात मोह पर डाली और चल दिए।

पृथ्वी पर अन्धकार छा रहा था। उन्होंने फाटक पर आकर देखा, चन्न उपस्थित है।

"चन्न, क्या तुम जागरित हो?"

"परम परमेश्वर महाभट्टारकपादीय युवराज की जय हो!"

"चन्न, एक घोड़ा तो ले आओ।"

"जो आज्ञा।"

तारो के क्षीण प्रकाश मे वह महान राजकुमार राजपाट, सुख-भोग और ऐश्वर्य पर लात मारकर महान प्रकाश की खोज मे जा रहा था।

"चन्न! बस, अब आवश्यकता नही। तुम घोड़ा लेकर राजधानी लौट जाओ।"

"स्वामिन्, मैं आपको प्राण रहते न छोडूंगा।"

"चन्न! लो ये बहुमूल्य वस्त्र भी तुम ले जाओ। अब कहो, तुम्हारा स्वामी कौन है?"

"महाराज युवराज! यह आप क्या कर रहे है?"

"ठहरो।" युवराज ने तलवार से अपने सुन्दर केश-गुच्छ काटकर तलवार चन्न के सम्मुख रखकर कहा—लो इसे भी सभालो।

चन्न धरती पर गिरकर रोने लगा। वह बोला—प्रभु! मै कदापि-कदापि न जाऊगा।

"चन्न! वत्स! हठ मत करो। शोक भी मत करो, आनन्दित हो। मैं सत्य की खोज मे जा रहा हू। मैं जगत् को आनन्द प्रदान करूंगा। जाओ वत्स! पिताजी और गोपा को धैर्य प्रदान करना।"

एक आन्तरिक तेज से दीप्त पुरुष की तरह सिद्धार्थ चल दिए। चन्न पछाड़ खाकर गिर पड़ा। सिद्धार्थ के नेत्र सत्य के प्रचण्ड उत्साह से देदीप्यमान हो रहे थे। उनका यौवन-सौन्दर्य उस पवित्र तेज मे परिवर्तित हो गया था जो उनके श्रीमुख पर दृष्टिगोचर हो रहा था।

राजगृह महानगरी जनपूर्ण हो रही थी। प्रतापी बिम्बसार वहा के सम्राट् थे। जब मध्याह्नकाल होता—गृहस्थ भोजन कर चुकते—वीतरागी सिद्धार्थ भिक्षा-पात्र हाथ मे लिए नगर की गलियो मे भिक्षा मागने निकलते। वह प्रभा-वान मुखमण्डल, विनम्र गति, पृथ्वी पर झुके हुए नेत्र और ओष्ठसम्पुट से मृदु-ध्वनि से निकलनेवाला 'कल्याण' शब्द नगरवासियो के लिए अपूर्व था। वे प्रत्येक घर से एक ग्रास भोजन ग्रहण करते थे, और बारह ग्रास लेकर नगर के बाहर चले जाते थे। जनपथ और राजपथ पर उनके पीछे भीड़ लगी रहती। आबालवृद्ध उनके लिए मार्ग छोड़ देते, उनके भिक्षा-पात्र में ग्रास डालकर कृतार्थ होते, और सोचते: कोई महान मुनि नगर मे आए है।

सम्राट् बिम्बसार ने सुनकर गुप्तचरो के द्वारा जाना कि शाक्यवंश का राजा-पुत्र राजपाट त्याग वनवासी हुआ है। वह राजकीय वस्त्र पहन, स्वर्ण-मुकुट सिर पर धारण कर, अमात्यो-सहित उससे मिलने आया। मुनि सिद्धार्थ वृक्ष के नीचे गम्भीर मुख-मुद्रा किए बैठे थे। बिम्बसार ने प्रणाम कर कहा—आपके हाथ में राज्य-रश्मि शोभा देती है, भिक्षा-पात्र नही। आपका तारुण्य इस तपस्या के योग्य नहीं। श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषों को शक्तिसम्पन्न होना चाहिए। धर्म खोकर धनी होना उत्तम नही, पर धन, धर्म और बल को प्राप्त कर जो इन्हे दूरदर्शिता से भोग करे वह मेरा गुरु है।

मुनि सिद्धार्थ ने आंख उठाकर सम्राट् को देखा और कहा—राजन् ! आप धार्मिक और विवेकी हैं, आपका कथन सत्य है; पर मै सारे बन्धनों से पृथक् हो चुका हू, क्योकि मै निर्वाण का इच्छुक हू। जिसे उस सच्चे ज्ञान की अभिलाषा है, उसे उन सब बातो से विरक्त हो जाना चाहिए जो उसके चित्त को अपनी ओर खीचती हैं। उसके लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अधिकार और वासनाओं का त्याग करना परमावश्यक है। मैने वैभव की असारता को समझ लिया है, और अब मै अमृत के धोखे विष-पान नही करूगा। सम्राट् ! आप मुझपर करुणा करने का कष्ट न उठाइए। करुणा के पात्र वे है जो ससार की चिन्ता मे दिन-रात व्याकुल रहते है, जिनके हृदय मे न शान्ति है और न मन मे एकाग्रता। हे राजन्, कहिए तो एक राजा और भिक्षुक की मृतक देह में क्या अन्तर है?

सम्राट् बिम्बसार ने बद्धाजलि होकर प्रणाम किया और कहा—हे त्यागी ! आप धन्य है ! आपकी कामना पूर्ण हो। परन्तु आप पूर्ण बुद्ध होने पर एक बार मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर कृतार्थ अवश्य करें।

मुनि सिद्धार्थ ने सम्राट् की प्रार्थना को स्वीकार किया।

"हे विद्वानो ! क्या आप ही प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता आराद और उदरक है! मै आपसे आत्मा के विषय की जिज्ञासा करने आया हू !"

"हे मुनि ! हम वही है। तुम्हे जो संशय हो, कहो।"

"मैं यह जानना चाहता हू कि आत्मा क्या है?"

"आत्मा वह है जो देखता, चखता, सूघता और छूता है; फिर भी वह न तुम्हारा शरीर है, न आख, कान, नाक और न मुख। आत्मा वह है जो त्वचा द्वारा छूता

है, जिह्वा से रस लेता है, आंख से देखता और कान से सुनता है।"

"हे विद्वानो ! आत्मा की मुक्ति क्या है ?"

जिस प्रकार पक्षी पिजरे से छूटकर स्वतन्त्रता प्राप्त करता है, उसी प्रकार आत्मा सब बन्धनो और उपाधियों से छूटने पर मुक्त हो जाता है।"

"परन्तु क्या उष्णता अग्नि से भिन्न है ? मनुष्य रूप, रस, वासना, संस्कार, बुद्धि, चित्त आदि का संघात है; यही सघात तो 'मै' है; वही 'मैं' तो आत्मा है। तब वह भिन्न सत्ता कैसे हुई ? और जब तक वह 'अह' शेष है, तब तक तुम्हारी वास्तविक मुक्ति कदापि नही हो सकती।"

"परन्तु मुनि ! क्या तुम अपने चारो ओर कर्म-फल को नही देखते ? वह कौन-सी बात है जिसने मनुष्यो के आचार, विचार, अधिकार, जाति और वैभव मे भिन्नता उत्पन्न कर दी है ? वह कर्म-फल ही तो है।"

"कर्म-फल तो है ही, पर आत्मवाद का आधार क्या है ? संसार में कोई काम, वस्तु, फल या विचार नही हो सकता, यदि उसके पूर्व उसका कारण विद्यमान न हो। किसान जो बोएगा, फसल पर वही काटेगा। परन्तु 'अहं' की भिन्न सत्ता और उसका शरीरोत्तर गमन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ? क्या मेरी व्यक्ति-विशेषता प्रवृत्ति और मन—दोनों का संघात नही है ? क्या मेरे व्यक्ति-वैशिष्ट्य मे शारीरिक और मानसिक दोनो शक्तिया सम्मिलित नहीं हैं ? यदि किसी मनुष्य के अन्दर से भूख-प्यास, चलना-फिरना, रोना-हसना आदि निकाल दिए जाए तो फिर उसकी मनुष्यता की क्या सार्थकता रह गई ? उन प्राकृत और दैहिक बातो के बिना मनुष्य यथार्थ मे क्या है ? जिस प्रकार कल का 'मै' आज के 'मै' का पूर्वज है, और कल के 'मैं' ने आज के 'मै' मे जन्म लिया है, एव आज का 'मै' कल के 'मैं' मे फिर जन्म लेगा, उसी प्रकार पूर्व-जन्मों का अनादि प्रवाह चल रहा है।"

"हे मुनि ! तुम अभी मूर्ख हो।"

"हे विद्वानो ! तुम अभी मनन करो।"

कुमार सिद्धार्थ वहां से चल दिए। उस बिल्व-वन में पाच तपस्वी कठोर तप कर रहे थे। मुनि सिद्धार्थ ने भी तप करना शुरू किया। छः वर्ष के कठोर तप से उनका शरीर सूखकर लकडी के समान हो गया, वे मृतप्राय हो रहे थे, परन्तु उन्होने सोचा—खेद है कि इन उपवासों और व्रतो से मुझे कुछ भी शान्ति नही मिली। यह सब मिथ्या है। वे उठे, उन्होने स्नान किया, परन्तु दुर्बलता के कारण गिर पड़े।

गोप-कन्या नन्दा ने दया कर उन्हे खीर दी, जिससे उनके शरीर मे बल का सञ्चय हुआ। वे तपश्चर्या छोड़कर धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। अन्ततः वहां से भी चल दिए।

बोधि-वृक्ष निकट आ गया। मुनि ने उसे देखा। पृथ्वी कम्पायमान होने लगी। जगत् में प्रकाश छा गया। मार—जो विषयो का पोषक, और मृत्यु का प्रेरक है, तथा सत्य का शत्रु है—आया। उसकी तीनो लुभावनी पुत्रिया अपनी राक्षसी सेना के साथ थी। सम्मुख आए मार ने भयानक गर्जना की। मुनि बोधि-वृक्ष के नीचे शान्त बैठे रहे। उसकी तीनो पुत्रियों ने उनपर बाण फेके। पर प्रबल जितेन्द्रिय के हृदय में कोई तामसी इच्छा न उत्पन्न हुई। तब समस्त दुष्ट आत्माओ ने उनपर एकसाथ आक्रमण किया, पर नारकीय ज्वालाए सुगन्धित पवन के झोंकों मे परिवर्तित हो गई, वज्रपात ने कमल पुष्प का रूप धारण कर लिया। मार पराजित होकर भागा। एक अलौकिक तेज दिशाओ मे व्याप्त हो गया।

मुनि सिद्धार्थ ध्यान-मग्न थे। वे ससार की विपत्तियो, कष्टो और दुष्कर्मों के बुरे परिणामो को प्रत्यक्ष देख रहे थे। वे सोच रहे थे—ससार की यह कैसी विचित्र गति है? वे एकाएक बोल उठे—धर्म सत्य है, धर्म ही मनुष्य को अज्ञान, पाप और दु.खो से बचाता है। जीवन-विकास की बारह कड़िया है, जिन्हे द्वादश निदान कहते हैं। सत्यचतुष्टय ये हैं—(१) दुःख, (२) दु.ख का कारण, (३) दु.खों की समाप्ति, (४) अष्टाग मार्ग (जिनपर चलने से दु खो का नाश होगा)। मुनि सिद्धार्थ इस सिद्धान्त को प्राप्त करके बुद्ध हो गए। वे बोले—धन्य है वह जिसने धर्म को समझ लिया। धन्य है वह जो किसीको हानि नहीं पहुंचाता। धन्य है वह जिसने पापो पर विजय प्राप्त की है वह वही महापुरुष है—ज्ञानी है, बुद्ध है।

बुद्ध इन सिद्धान्तो की प्राप्ति से उदीयमान तेज से दिप रहे थे। शान्त और गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। दो व्यक्तियो ने आकर उनके चरणों मे सिर रख दिया।

"हे मनुष्यो! तुम्हारा कल्याण हो! तुम कौन हो?"

"हे प्रभु, मेरा नाम तपुस है और इसका मल्लिका; हम व्यापारी हैं। यह चावल की रोटी और शहद हमारे पास है; इसे ग्रहण कर कृतार्थ करे।"

"हे सज्जनो ! मैने तुम्हारा भोजन ग्रहण किया। बुद्ध-पद प्राप्त होने पर यह मेरा प्रथम भोजन हुआ। हे धर्मात्माओ ! तुम तथागत बुद्ध के प्रथम शिष्य बने। तथागत बुद्ध का कथन है—जगत् का कोई अन्याय, अत्याचार और पाप स्वार्थ से रहित नही। सारे दोषों का मूल स्वार्थी मन के अन्दर है। पाप न धरती में है, न आकाश मे; न हवा मे, न पानी में, न रात में, न दिन मे; वह स्वार्थी मनुष्य के मन मे है। ज्ञान तो तभी मिल सकता है, जब स्वार्थ की निस्सारता और अस्थिरता का पूर्ण ज्ञान हो जाए। मनुष्य उच्च और आदर्श जीवन तभी प्राप्त कर सकता है जब उसे यह निश्चय हो जाए कि स्वार्थ-त्याग के बिना कोई मनुष्य आत्मिक जीवन के पवित्र सुख को अनुभव नही कर सकता। यथार्थ सुख स्वार्थपरायणता और विषय-भोग मे नही है, कृत्रिमता और आडम्बर को दूर करने में है।"

इतना कहकर बुद्ध मौन हो गए। दोनो व्यापारियों ने चरणों मे गिरकर कहा—हे प्रभु, हम बुद्ध की शरण है, हम बुद्ध के धर्म को ग्रहण करते है।

बुद्ध ने नेत्र उठाकर देखा, और दोनो हाथ ऊंचे करके कहा—कल्याण ! कल्याण ! !

मगध मे हलचल मच गई थी। सभीकी जिह्वा पर एक ही बात थी : शाक्य-मुनि पतियो को बहकाकर पत्नियो से अलग करता है। वह वशो का नाश करता है।

बुद्ध अपने प्रमुख शिष्यों-सहित राजगृह मे पधारे थे। भिक्षु जब नगर मे निकलते तब लोग कहते —देखें, अब किसकी बारी आती है !

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन, अश्वजित्, आचार्य महाकश्यप और उनके भ्राता—सभी भगवान बुद्ध के शिष्य हो गए थे। जो प्रख्यात और तत्त्वदर्शी था, राजगृह का वह महाधनपति यशस भी बुद्ध की शरण जा चुका था, और उसके महाधनवान चारो मित्र, जो काशी में रहते थे, उसके अनुयायी बन चुके थे।

मगध के सम्राट् बुद्ध के दर्शन को पधारे। सहस्रावधि मनुष्य उनके साथ थे। वे लाखो की सम्पदा भेंट को लाए थे। राजा के साथ उसके सभी मन्त्री और सेनानायक थे। उन्होंने देखा : जटिलो के आचार्य महाकश्यप के साथ

भगवान बुद्ध बैठे है। सम्राट् ने चकित होकर सोचा कि शाक्य-मुनि ने क्या कश्यप को अपना आध्यात्मिक गुरु माना है या कश्यप गौतम का शिष्य हो गया है ?

बुद्ध ने सम्राट् के सशय को समझकर कहा—कश्यप ! तुमने कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया है, और वह कौन-सी बात है जिसने तुमको अग्नि-पूजा और कष्ट-दायक तपश्चर्या छोड़ने के लिए बाध्य किया है ?

कश्यप ने कहा—अग्नि की उपासना से दु खो और प्रपंचो के चक्र में पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। अब मैंने इसे त्याग दिया है। तपस्याओं और पशु-बलिदानों के स्थान मे मैं सर्वोच्च निर्वाण की प्राप्ति के लिए लगा हूं।

तब बुद्ध ने आंख उठाकर सम्राट् की ओर देखा और कहा—जो अपने 'अहं' रूप को जानता है, और समझता है कि इन्द्रिया अपने-अपने कार्यों को किस प्रकार करती है, वह स्वार्थ और अहकार के फेर मे नही पड़ता और अभय शान्ति उपलब्ध करता है। ससार को 'मैं' का ख्याल है। मेरा शरीर, मेरा धन, मेरा नाम, मेरा रूप, मेरा शत्रु, उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे धोखा दिया, उसने मुझे बदनाम किया, इत्यादि सकल्प-विकल्प ही समस्त झूठे भयो और दुष्ट भावों के उत्पादक है। कोई कहते है कि यह 'मैं' मृत्यु के पश्चात् स्थिर रहता है। कोई कहता है, उसका अन्त हो जाता है, परन्तु वे दोनों भूल पर है। इन्द्रियो का पदार्थों के सन्निकर्ष से ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे सूर्य की शक्ति से शीशे मे अव्यक्त अग्नि व्यक्त हो जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियां और पदार्थो के मिलने से स्मृति आदि का क्रमश: विकास होता है और चेतना-शक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ के बदलने से उस सत्ता का प्रादुर्भाव होता है जिसे 'अहं' कहते है। बीज से अंकुर फूटता है, परन्तु अकुर से बीज नही फूटता। दोनो एक नही हैं। इस प्रकार 'अहं' एक भ्रम है, 'मैं' क्षणिक है। वह क्षण-क्षण में बदलता है। जो इस तत्त्व को समझेगा वह काम, क्रोध, लोभ, मोह को क्षणिक परिणाम समझ, उन्हें दबाने की कोशिश करेगा। स्वार्थ की प्रबल प्रवृत्ति को रोको और फिर तुम मन की उस निश्चय अवस्था को प्राप्त करोगे, जो पूर्ण शान्ति, परम पुरुषार्थ और सत्य ज्ञान की दात्री है।

—माता जिस प्रकार बच्चे के लिए प्रतिक्षण आत्मबलिदान करती है, उसी प्रकार सत्य-ज्ञाता विवेकी को शुद्ध हृदय से परहित की सदा कामना करनी

चाहिए। यह भावना जितनी प्रौढ़ होगी उतना ही निर्वाण-पद निकट होगा। यही बौद्ध-धर्म है।

बुद्ध जब उपदेश देकर शान्त हुए तब सम्राट् ने नतमस्तक होकर कहा—भगवन् ! जब मैं राजकुमार था तब पाच भावनाएं मेरे मन में थी : (१) मैं राजा होऊं, वह पूरी हुई; (२) पवित्रात्मा बुद्ध मेरे ही शासन-काल मे मेरे राज्य मे पधारें, वह भी पूरी हुई; (३) मैं उनकी सेवा मे उपस्थित होकर उनका सत्कार करूं, वह भी पूर्ण हुई; (४) मैं भगवान का पवित्र उपदेश सुनू, वह भी पूरी हुई; (५) मैं भगवान के धर्म को समझ सकू, वह भी पूर्ण हुई। प्रभो ! आपका सत्य महान है। आप उस बात को स्थापित करते है जो अब तक अस्त-व्यस्त रही है। आपने उसे व्यक्त किया जो अब तक अव्यक्त था। आपने उन्हे मार्ग बताया जो अब तक भटके थे। आप अन्धकार में पडे हुओं के लिए दीपक जलाते है। आज मैं बुद्ध की शरण लेता हूं; संघ की शरण लेता हूं; धर्म की शरण लेता हूं।

बुद्ध ने कृपा-दृष्टि से सम्राट् को देखा और समस्त उपस्थित मण्डल बुद्ध-धर्म में दीक्षित हो गया।

कपिलवस्तु मे उल्लास था, पिता का आतिथ्य स्वीकार करने भगवान बुद्ध सात वर्ष बाद लौटे है। महाराज शुद्धोदन अपने मन्त्रिगण-सहित स्वागत को आए। वे अपने पुत्र के तेज और सौन्दर्य को दूर से देख गद्‌गद हो गए। उन्होने मन ही मन कहा—निस्सन्देह यह मेरा पुत्र है। कुमार सिद्धार्थ का ऐसा ही रूप-रग था। परन्तु यह महामुनि अब सिद्धार्थ नही रहा। वह बुद्ध है, पवित्रात्मा है, सत्य का स्वामी और मनुष्यों का शिक्षक है।

वे रथ से उतर पड़े और आनन्दाश्रु बहाते हुए बोले—आज सात वर्ष बाद मैने तुम्हे देखा है। क्या तुम जानते हो कि तुम्हे देखने की मुझे कितनी इच्छा थी ?

प्रणाम करके बुद्ध पिता के पास बैठ गए। राजा के जी मे आया कि उनका नाम लेकर पुकारें, पर साहस न हुआ।

वे मानो मन ही मन कह रहे थे—पुत्र सिद्धार्थ ! आ, और पिता के पास पुत्र की भाति रह। अन्त में उन्होने कहा—मैं यह सारा राजपाट तुम्हे सौपना चाहता था; पर देखता हू, राज्य को तुम तुच्छ समझते हो।

बुद्ध ने कहा—पिता ! आपका हृदय प्रेमपूर्ण है, पर आपका जितना प्रेम मुझ-

पर है, उतना ही यदि प्रजा पर भी हो तो आपको सिद्धार्थ से बढकर पुत्र मिल सकते है। आप मेरे लिए मन से पुत्र-भाव निकाल डालिए। यदि आप अपने सामने उसे बुद्ध (ज्ञानी) देखेंगे जो सत्य का शिक्षक और सदाचार का प्रचारक है तो आपको निर्वाण की शाति प्राप्त होगी।—राजा पुत्र की यह वाणी सुनकर आह्लादित हुए। वे आसू भरकर कहने लगे—आश्चर्यजनक परिवर्तन है। इस परिवर्तन से हृदय को दु:ख और व्याकुलता नही होती। पहले मै शोकपूर्ण था, मानो मेरा हृदय फट जाएगा। अब मै प्रसन्न हू। तुमने जगत् के लिए राज्य-सुख त्यागा। अच्छा, तुम संसार मे अष्टाग मार्ग का प्रचार करो।

प्रातःकाल भगवान बुद्ध भिक्षा-पात्र लेकर नगर में भिक्षा के लिए चले। नगर मे हाहाकार मच गया। रथ और हाथियो पर सवार होकर जो पुरुष रत्न बिखेरता था, वह नगे पैर घर-घर एक ग्रास अन्न मागता है।

राजा ने कहा—वत्स गौतम ! ऐसा न करो, मै तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर दूगा।

"पर यह हमारी धर्म-परिपाटी है।"

"पर तुम उस राजवंश के हो जिसने कभी भिक्षा नही मागी।"

"मैं उस बुद्ध वश मे हू जो सदा भिक्षावृत्ति पर सन्तोष करता आया है।"

राजा अवाक् हो, उन्हे राजमहल मे ले आए। राजमन्त्रियो और अन्त पुर की स्त्रियो ने बुद्ध की अर्चना की।

बुद्ध ने पूछा—गोपा कहा है ? वह क्यो नही आई ?

एक दासी ने बद्धाजलि होकर कहा—स्वामिन्, वे कहती है भगवान को स्वयं ही उनके पास आना चाहिए।

बुद्ध तत्क्षण उठकर चल दिए। चार प्रमुख शिष्य उनके साथ थे। गोपा—आनन्द और प्रेम की मधुर लतिका गोपा—अपने सप्तवर्षीय पुत्र के साथ, अपनी समस्त कटु स्मृतियों को कसकर छाती में छिपाए, उस महावीतरागी, अतीत प्रिय पति को धरती पर दृष्टि दिए अपने कक्ष मे आते देख रही थी। द्वार के निकट पहुंच बुद्ध ने अपने शिष्य सारिपुत्र मौद्गल्यायन से कहा—मैं तो माया-पाश से मुक्त हुआ, पर यशोधरा अभी बद्ध है। उसने मुझे चिरकाल से नहीं देखा। वह वियोग से व्याकुल है। यदि मिलन-अभिलाषा अब भी पूर्ण न होगी तो उसका हृदय फट जाएगा। इसलिए मैं तुम्हें सावधान किए देता हूं कि यदि वह मुझे छूना चाहे तो

रोकना मत। सारिपुत्र मोद्गल्यायन ने विनम्र होकर कहा—जैसी भगवान् की आज्ञा।

वह मलिनवस्त्रा और धूलि-धूसरितवेशा, केशविहीना यशोधरा, मूर्तिमती, वियोग और विषाद की छाया चुपचाप खड़ी एकटक उन्हे देख रही थी। वह इस बात को भूल गई कि उसका पति अब जगद्गुरु और सत्य का अन्वेषक है। वह सम्मुख आते ही बुद्ध के पैर पकड़, फूट-फूटकर रोने लगी। जब वह प्रकृतिस्थ हुई तब उसने श्वसुर को देखा और हट गई। राजा ने कहा—यह उसका मनोवेग नही है, हृदयस्थ प्रकृत प्रेम के स्रोत का प्रवाह है। जब उसे ज्ञात हुआ कि तुमने केश काट डाले हैं, तब उसने भी इसका अनुसरण किया। जब उसने सुना कि तुमने सभी भोजन त्याग दिए, तब उसने भी सब कुछ छोड़ दिया। यह मृत्पात्रो मे खाती और भूमि पर सोती है। उससे बड़े-बड़े राजकुमारो ने विवाह की प्रार्थना की, तब उसने कहा—मेरे स्वामी का मुझपर पूर्ण अधिकार है, और मैं अब भी उनके चरणो की दासी हू।

बुद्ध ने करुण एव गम्भीर स्वर मे कहा—कल्याण बुद्धे ! तुम धन्य हो। तुम बड़ी पुण्यात्मा हो। तुम्हारी पवित्रता, सुशीलता और भक्ति ने मुझे लाभ पहुंचाया है और मैं सत्य-ज्ञान को उपलब्ध कर चुका हू। तुम्हारा हार्दिक दु ख और शोक अवर्णनीय है। परन्तु तुमने जो आध्यात्मिक सम्पत्ति अपने श्रेष्ठ और शुद्धाचरण से प्राप्त की है, वह तुम्हारे समस्त दु खो को आनन्द मे परिवर्तित कर देगी।

यशोधरा ने धैर्य धारण कर मन के वेग को रोका। अब वह समझ गई कि यह महापुरुष मेरा पति नही, जगत् का महान् धर्मगुरु है। उसने दृढता से कहा—हे स्वामी ! पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता है। यह आपका पुत्र है। आपके पास चार खज़ाने है, उन्हें मैंने नही देखा; पर आप उन्हे अपने पुत्र को प्रदान करे। इतना कहकर उसने सप्तवर्षीय बालक को बुद्ध के चरणो में डाल दिया।

बुद्ध ने कहा—तुम्हारा मातृत्व धन्य है। तुम्हारे पुत्र को मैं ऐसा द्रव्य न दूगा जो नाशवान् हो और जो उसे शोक और चिन्ता में डाले। मै उसे चारो सत्य का भेद समझाऊंगा, यदि उसमे उन्हें धारण करने की योग्यता हुई।

बालक ने कहा—हे पिता ! मैं योग्य बनूगा।

"वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम मेरे साथ आओ।"

बालक को अग्रसर कर बुद्ध लौट गए। गोपा अपने उस एकमात्र हृदयधन को भी गंवाकर ठगी-सी खड़ी रह गई।

एशिया के महासाम्राज्य उस बुद्ध के सत्य-कर्म के सम्मुख झुके और वह महान धर्मात्मा पृथ्वी पर सदा के लिए अमर हो गया।

# भिक्षुराज

आचार्य द्वारा बौद्ध-भूमि पर लिखित सब कहानियोंमें भिक्षुराज सर्वाधिक प्रसिद्ध, और कहानी के टेकनिक की दृष्टि से परिपूर्ण कहानी है। कहानी में सम्राट् अशोक के तपस्वी पुत्र-पुत्रीकी यशोगाथा चित्रित है जो अत्यन्त भावशाली और सशक्त शैली में है।

मसीह के जन्म से ढाई सौ वर्ष प्रथम। ग्रीष्म की ऋतु थी और सन्ध्या का समय, जबकि एक तरणी कांबोज के समुद्र-तट से दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे अनन्त सागर के गर्भ में प्रविष्ट हो रही थी।

इस क्षुद्रा तरणी के द्वारा अनन्त समुद्र को यात्रा करना भयकर दु:साहस था। वह तरणी हल्के, किन्तु दृढ़ काष्ठफलको को चर्म-रज्जु से बांधकर और बीच में बांस का बंध देकर बनाई गई थी, और ऊपर चर्म मढ़ दिया गया था। वह बहुत छोटी और हल्की थी, पानी पर अधर तैर रही थी, और पक्षी की तरह समुद्र की तरंगों पर तीव्र गति से उड़ी चली जा रही थी। तरणी में एक ओर कुछ खाद्य पदार्थ मद्भाण्डो में धरा था, जिनका मुख वस्त्र से बधा हुआ था। निकट ही बड़े-बड़े पिटारों मे भूर्जपत्र पर लिखित ग्रन्थ भर रहे थे।

तरणी के बीचोबीच बारह मनुष्य बैठे थे। प्रत्येक के हाथ मे एक-एक पतवार थी, और वह उसे प्रबल वायु के प्रवाह के विपरीत दृढता से पकड़े हुए था। उनके वस्त्र पीतवर्ण थे, और सिर मुडित—प्रत्येक के आगे एक भिक्षा-पात्र धरा था। उनके पैरो में काष्ठ की पादुकाए थी।

तेरहवां एक और व्यक्ति था। उसका परिच्छद भी साथियों जैसा ही था। किन्तु उसकी मुख-मुद्रा, अन्तस्तेज और उज्ज्वल दृष्टि उसमें उसके साथियों से विशेषता उत्पन्न कर रही थी। उसकी दृष्टि में एक अद्भुत कोमलता थी जो प्राय: पुरुषो में, विशेषकर युवकों में, नही पाई जाती। उसके मुख की गठन साफ और सुन्दर थी। उसके मुख पर दया, उदारता और विचारशीलता टपक रही थी।

वह सबसे ज़रा हटकर, पीछे की तरफ बैठा हुआ था और उसका एक हाथ नाव की एक रस्सी पर था। उसकी दृष्टि सागर की चमकीली, तरंगित जल-राशि पर न थी। वह दृष्टि से परे किसी विशेष गम्भीर और विवेचनीय दृश्य को देख रहा था। उसका मुख समुद्र-तीर की उन हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों की ओर था, और उनके बीच में छिपते सूर्य को वह मानो स्थिर होकर देख रहा था। उसकी ठुड्डी उसके कंधे पर धरी थी। कभी-कभी उसके हृदय से लम्बी श्वास निकलती और उसके होठ फड़क जाते थे।

इसके निकट ही एक और मूर्ति चुपचाप पाषाण-प्रतिमा की भांति बैठी थी, जिसपर एकाएक दृष्टि ही नही पड़ती थी। उसके वस्त्र भी पूर्ववर्णित पुरुषों के समान थे। परन्तु उसका रग नवीन केले के पत्ते के समान था। उसके सिर पर एक पीत वस्त्र बंधा था, पर उसके बीच से उसके घुघराले और चमकीले काले बाल चमक रहे थे। उसके नेत्र शुक्र नक्षत्र की भाति स्वच्छ और चचल थे। उसका अरुण अधर और अनिंद्य सुन्दर मुख-मण्डल सुधावर्ती चन्द्र की स्पर्धा कर रहा था। वास्तव में वह पुरुष नही, बालिका थी। वह पीछे की ओर दृष्टि किए, उन क्षण-क्षण मे दूर होती उपत्यका और पर्वत-श्रेणियो को करुण और डबडबाई आंखो से देख रही थी, मानो वह उन चिरपरिचित स्कूलो को सदैव के लिए त्याग रही थी। मानो उन पर्वतों के निकट उसका घर था, जहां वह बड़ी हुई, खेली। वह वहा से कभी पृथक् न हुई, और आज जा रही थी सुदूर अज्ञात देश को, जहा से लौटने की आशा ही न थी।

यह युवक और युवती ससागरा पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् मगधपति प्रियदर्शी अशोक के पुत्र महाभट्टारकपादीय महाकुमार महेन्द्र और महाराजकुमारी संघमित्रा थे, और उनके साथी बौद्ध भिक्षु। ये दोनो धर्मात्मा, त्यागी, राजसंतति—आचार्य उपगुप्त की इच्छा से सुदूर सागरवर्ती सिंहलद्वीप मे भिक्षुवृत्ति ग्रहण कर बौद्ध-धर्म का प्रचार करने जा रहे थे। महाराजकुमारी के दक्षिण हाथ मे बोधि-वृक्ष की टहनी थी।

आकाश का प्रकाश और रंग धुल गया और धीरे-धीरे अन्धकार ने चारों ओर से पृथ्वी को घेर लिया। बारहो मनुष्य चुपचाप अपना काम मुस्तैदी से कर रहे थे। क्वचित् ही कोई शब्द उनके मुख से निकलता हो, कदाचित् वे भी अपने स्वामी की भाति भविष्य की चिन्ता में मग्न थे। इसके सिवा उस अचल एकनिष्ठ व्यक्ति के

साथ बातचीत करना सरल न था।

अन्तत: पीछे का भू-भाग शीघ्र ही गम्भीर अन्धकार में छिप गया। कुमारी संघमित्रा ने एक लम्बी सांस खीचकर उधर से आंखे फेर ली। एक बार बहन-भाई दोनों की दृष्टि मिली। इसके बाद महाकुमार ने उसकी ओर से दृष्टि फेर ली।

एक व्यक्ति ने विनम्र स्वर में कहा—स्वामिन ! क्या आप बहुत ही शोकातुर हैं ? दूसरा व्यक्ति बीच मे ही बोल उठा .

"क्यों नही, हम अपने पीछे जिन वनस्थली और दृश्यो को छोड़ आए है, अब उन्हे फिर देखने की इस जीवन में क्या आशा है ? और, अब आज जिन मनुष्यो से मिलने को हम जा रहे है उनका हमें कुछ भी परिचय नही है। उनमे कौन हमारा सगा है ? केवल अन्तरात्मा की एक बलवती आवाज़ से प्रेरित होकर हम वहा जा रहे है। आचार्य की आज्ञा के विरुद्ध हममे कौन निषेध कर सकता था।"

एक और व्यक्ति बोल उठा। उसकी आखें चमकीली और चेहरा भरा हुआ एवं सुन्दर था। उसने कहा—जब तुम इस प्रकार खिन्न हो तब वहां चल ही क्यो रहे हो ? अब भी लौटने का समय है। वह मुस्कराया। महाकुमार महेन्द्र ने मुस्क-राकर मधुर स्वर से कहा—भाइयो ! जब मैंने इस यात्रा का सकल्प किया था, तब तुमने क्यों मेरे साथ चलने और भले-बुरे मे साथ देने का इतना हठ किया था ? ऐसी क्या आपत्ति थी ?

एक ने धीमे स्वर मे उत्तर दिया—स्वामिन् ! हम आपको प्यार करते थे।

दूसरे ने मन्द हास्य से कहा—वाह ! यह खूब जवाब दिया ! मैं स्वामी को प्यार करता हूं, इसलिए उसकी जो आज्ञा होगी वह मानूगा, जहा वह लिवा जाएगा, वहा जाऊगा !—फिर गम्भीरतापूर्वक कहा—और मैं समझता हूं कि मैं उन अपरिचित मनुष्यों को भी प्यार करता हूं, जो इस असीम समुद्र के उस पार रहते है।

यह कहकर उसने उस अन्धकारावृत दक्षिण दिशा की ओर उंगली उठाई, जहां शून्य भय के सिवा कुछ दीखता न था। उसने फिर कहा—जो आत्मा के गहन विषयों से अनभिज्ञ है, जो तथागत के सिद्धान्तों को नही जान पाए है, जो दु:ख मे मग्न अबोध संसारी है, उन्हे मैं प्यार करता हूं। तथागत की आज्ञा है कि उनपर अगाध करुणा करनी चाहिए। मेरा हृदय उनके प्रेम से ओतप्रोत है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमे बुला रहे हैं, चिरकाल से बुला रहे हैं। आह ! उन्हे हमारी

अत्यन्त आवश्यकता है। वे भवसागर मे डूब रहे हैं, चूकि तथागत की ज्ञान-गरिमा से वे अज्ञात है। हम उन्हें अक्षय प्रकाश दिखाने जा रहे है। निस्सन्देह हमें कठिनाइयो और आपत्तियो का सामना करना पडेगा। हमारे पास रक्षा की कोई सामग्री नही और शस्त्र भी नही। फिर भी अहिंसा का महामोहास्त्र तो हमारे हाथ है जो अन्त मे सबसे अधिक शक्तिशाली है।

यह धीमी और गम्भीर आवाज़ उस अन्धकार को भेदन करके सब साथियों के कानो मे पड़ी। मानो सुन्दर पर्वत-श्रेणियो से टकराकर हठात् उनके कानों में घुस गई हो। बारहो मनुष्यों मे सन्नाटा छा गया, और सबने सिर झुका लिए। इन शब्दो की चमत्कारिक, मोहिनी शक्ति से सभी मोहित हो गए।

दो घटे व्यतीत हो गए। तरणी जल-तरगो से आन्दोलित होती हुई उड़ी चली जा रही थी। राजनन्दिनी ने मौन भग किया। कहा—भाई, क्या मै अकेली उस द्वीप की समस्त स्त्रियों को श्रेष्ठ धर्म सिखा सकूगी ?

महाराजकुमार ने मृदुल स्वर में कहा—आर्या संघमित्रा ! यहा तुम्हारा भाई कौन है ? क्या तथागत ने नही कहा है कि सभी सद्धर्मी भिक्षुमात्र है ?

"फिर भी महाभट्टारकपादीय महाराजकुमार···।"

"भिक्षु न कही का महाराज है, न महाराजकुमार।"

"अच्छा भिक्षुश्रेष्ठ ! क्या मैं वहा की स्त्रियो के उद्धार में अकेली समर्थ होऊंगी ?"

"क्या तथागत अकेले न थे ? उन्होंने जंबु महाद्वीप मे कैसे क्रान्ति कर दी है !"

"किन्तु भिक्षुवर ! मैं अबला स्त्री···"

"तथागत की ओतप्रोत आत्मा का क्या तुम्हारे हृदय में बल नही ?"

संघमित्रा ध्यान-मग्न हो गई।

एक मनुष्य बीच में ही बोल उठा—क्या हम लोग तीर के निकट आ गए है ? समुद्र की लहरें चट्टानो से टकरा रही है।

महाकुमार ने चिन्तित स्वर में कहा—अवश्य ही हम मार्ग भटक गए हैं, और निकट ही कोई जल-गर्भस्थ चट्टान है। आप लोग सावधानी से तरणी का सचालन करें।—इतना कहकर उसने एक दृष्टि चारों ओर डाली।

क्षण-भर बाद ही तरणी चट्टान से जा टकराई। कुमारी संघमित्रा औधे मुह गिर पड़ी, और समस्त सामग्री अस्त-व्यस्त हो गई। कुमार ने देखा, चट्टान जल से

ऊपर है। वे उसपर कूद पडे। खड़े होकर उन्होने अनन्त जल-राशि के चारों ओर देखा। इसके बाद उन्होने साथियों से सकेत करके, नीचे बुलाकर कहा—हमें यही रात काटनी होगी। प्रातःकाल क्या होता है, यह देखा जाएगा। सबने वही फलाहार किया, और उन ऊबड-खाबड़, उजाड़ और सुनसान, क्षुद्र चट्टानों पर वे चौदह व्यक्ति बिना किसी छाह के अपनी-अपनी बांहो का तकिया लगाकर सो रहे।

प्रात.काल सूर्य की सुनहरी किरणे फैल रही थी। समुद्र की उज्ज्वल फेन-राशि पर उनकी प्रभा एक अनिर्वचनीय सौदर्य की सृष्टि कर रही थी। समुद्र शान्त था, जलचर जन्तु जहा-तहा सिर निकाले, निश्शंक, स्वच्छ वायु में, श्वास ले रहे थे। कुछ दूर पर छोटे-छोटे पक्षी मन्द कलरव करते उड़ रहे थे; वे नेत्र और कर्ण दोनो को ही सुखद थे।

महाकुमारी आर्या सघमित्रा चट्टान पर चढ़कर, सुदूर पूर्व दिशा में आंख गाडकर कुछ देख रही थी। महाराजकुमार ने उसके निकट पहुचकर कहा—आर्या सघमित्रा, क्या देख रही है?

संघमित्रा के होंठ कपित हुए। उसने सयत होकर, विनम्र और मृदु स्वर मे कहा—भिक्षुवर! जिस पृथ्वी को हमने छोडा है, वह यहीं सम्मुख तो है। पर ऐसा प्रतीत होता है मानो युग व्यतीत हो गया और माता पृथ्वी के दूसरे छोर पर हम आ गए। सोचिए, अभी हमें और भी आगे, अज्ञात प्रदेश को जाना है। क्या वहां हम ठहरकर सद्धर्म-प्रचार कर सकेंगे? देखो, प्रियजनो की दृष्टिया हमे बुला रही हैं, यह मै स्पष्ट देख रही हू।—उसने अपना हाथ दूरस्थ पहाडियो की धुधली छाया की तरफ फैला दिया, जहां पृथ्वी और आकाश मिलते दीख रहे थे। इसके बाद उसने महाकुमार की ओर मुड़कर कहा—भाई, नही-नही, भिक्षुराज! चलो लौट चलें। घर लौट चले। सद्धर्म-प्रचार का अभी वहा बहुत क्षेत्र है।

महाकुमार ने कुमारी के और भी निकट आकर उसके सिर पर अपना शुभ हस्त रखा, और मन्द-मन्द, स्वर मे गम्भीरमुद्रा से कहा—शात पापम् आर्या सघमित्रा! शातं पापम्। महाकुमारी वही बैठकर नीचे दृष्टि किए रोने लगी।

महाकुमारी की वाणी गद्गद हो गई थी। उसने कहा—आर्या! हमने जिस महाव्रत की दीक्षा ली है, उसे प्राण रहते पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। सोचो, हम असाधारण व्यक्ति है। हमारे पिता चक्रवर्ती सम्राट् हैं। मै इस महाराज्य का उत्तराधिकारी हूं। मै जहां भिक्षाटन करने जा रहा हूं, कदाचित् उसका राजा

करद होकर मेरे पास भेट लेकर आता। परन्तु मै उस प्रदेश की गली-गली मे एक-एक ग्रास अन्न मांगूगा, और बदले में सद्धर्म का पवित्र रत्न उन्हे दूगा। क्या यह मेरे लिए और तुम्हारे लिए भी आर्या सघमित्रा, अलभ्य कीर्ति और सौभाग्य की बात नही ? क्या तथागत प्रभु को छोड़कर और भी किसी सद्धर्मी ने ऐसा किया था ? प्रभु की स्पर्धा करने का सौभाग्य तो भूत और भविष्य मे आर्या सघमित्रा ! हमी दोनो जीवो को प्राप्त होगा, तुम्हे मुझसे भी अधिक, क्योंकि सम्राट् की कन्या होकर भिक्षुणी होना स्त्री-जाति मे तुम्हारी समता नही रखता। आर्या ! इस सौभाग्य की अपेक्षा क्या राजवैभव अति प्रिय है ? सोचो ! यह अधम शरीर और अनित्य जीवन जगत् के असंख्य प्राणियों का कैसा नष्ट हो रहा है। परन्तु हमें उसकी महाप्रतिष्ठा करने का कैसा सुयोग मिला है, कदाचित् भविष्य-काल मे सहस्रों वर्षो तक, हम लोगो की स्मृति श्रद्धा और सम्मानसहित जीवित रहेगी।

इतना कहकर महाकुमार मौन हुए। कुमारी धीरे-धीरे उनके चरणों मे झुक गई। उसने अपराधिनी शिष्या की भाति प्रथम बार सहोदर भाई से मानो भ्रातृ-सम्बन्ध त्यागकर अपनी मानसिक दुर्बलता के लिए करबद्ध हो क्षमा-याचना की, और महाकुमार ने कर्मठ भिक्षु की भाति उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण !

इसके बाद ही नौका तैयार हुई, और वह फिर लहरो की ताल पर नाचने लगी। बारहों साथी निस्तब्ध-से समुद्र की उत्तुग तरंगो मे मानो उस क्षुद्र तरणी को घुसाए लिए जा रहे थे। एक दिन और रात्रि की अविरल यात्रा के बाद समुद्र-तट दिखाई दिया। उस समय धीरे-धीरे सूर्य डूब रहा था, और उसका रक्त-प्रतिबिंब जल मे आन्दोलित हो रहा था। महाकुमारी ने सूर्य की ओर देखा और मन ही मन कहा—सूर्यदेव ! अभी उस चिर-परिचित प्रभात मे मै एक अविकसित अरविद कली थी। तुम्हारी स्वर्ण-किरण के सुखद स्पर्श से पुलकित होकर खिल पड़ी। मै अपनी समस्त पंखुडियों से खिलकर दिन-भर निर्लज्ज की भाति तुम्हें देखती रही। हाय ! किन्तु तुम कितनी उपेक्षा से जा रहे हो ! जाते हो तो जाओ, मैं अपना समस्त सौरभ तुम्हारे चरणो मे लुटा चुकी हू। अब सूखकर रज-कण मे मिल जाना ही मेरी चरमगति है।

उसने अति अप्रकट भाव से अस्तंगत सूर्य को प्रणाम किया, और टप से एक बूद आंसू गोद में रखे बोधि-वृक्ष पर टपक पड़ा।

अति प्रफुल्लित हो अपने कर्तव्य का पालन कर रहे थे।

भिक्षुराज ध्यानावस्थित बैठे कुछ विचार कर रहे थे। आर्या सघमित्रा बोधि-वृक्ष को सीच रही थी। एक भिक्षु ने बद्धाजलि होकर कहा—स्वामिन्, सिघल द्वीप के स्वामी महाराज तिष्य ने आपको राजधानी अनुराधपुर ले जाने के लिए राजकीय रथ और वाहन तथा कुछ भेट भी भेजी है, स्वामी की क्या आज्ञा है ?

युवक भिक्षुराज ने बाहर आकर देखा, सौ हाथी, सौ रथ और दो सहस्र पदातिक एव बहुत-से भिन्न-भिन्न यान है। साथ मे राजकीय छत्र-चवर भी है। महानायक ने सम्मुख आ, नतजानु हो, प्रणाम कर कहा—प्रभु, प्रसन्न हो। महा-राजा की विनय है कि पवित्र स्वामी अनुचरो-सहित राजभवन को सुशोभित करे। वाहन सेवा में उपस्थित है। कुछ तुच्छ भेट भी है।

यह कहकर महानायक ने सकेत किया—तत्काल सौ दास विविध सामग्री से भरे स्वर्ण-थाल ले, सम्मुख रखकर पीछे हट गए। उनमे बड़े-बड़े मोतियो की मालाए, रत्नाभरण, बहुमूल्य रेशमी वस्त्र, सुन्दर शिल्प की वस्तुए, बहुमूल्य मदिराए और विविध सामग्री थी। महाकुमार ने देखा, एक क्षीण हास्य-रेखा उनके होठो मे आई, और उन्होने महानायक की ओर देखकर गम्भीर वाणी में कहा—महानायक, भिक्षुओ के भिक्षा-पात्र मे कहां यह राजसामग्री समाएगी, मेरे जैसे भिक्षुओ को इसकी आवश्यकता ही क्या ? इन्हें लौटा ले जाओ। महा-राज तिष्य से कहना, हम स्वय राजधानी मे आते है।

भिक्षुराज ने यह कहा, और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही अपने आसन पर आ बैठे। राज्यवर्ग अपनी तमाम सामग्री-सहित वापस लौट गया।

राजधानी वहा से दूर थी, और यात्रा की कोई भी सुविधा न थी, परन्तु उस टापू के राजा तिष्य को सद्धर्म का सदेश सुनाना परमावश्यक था। यदि ऐसा हो जाए, तो टापू-भर मे बौद्ध-सिद्धान्तो की व्याप्ति हो जाए।

महाकुमार ने तैयारी की। कुमार और बारहो साथी तैयार हो गए। और, वह दुर्गम यात्रा प्रारम्भ की गई। प्रत्येक के कन्धे पर उनकी आवश्यक सामग्री और हाथ मे भिक्षा-पात्र था। वे चलते ही चले गए। पर्वतो की चोटियो पर चढ़े। घने, हिंस्र जतुओ से परिपूर्ण बन मे घुसे। वृक्ष और जल से रहित रेगिस्तान में होकर गुजरे। अनेक भयंकर गार और ऊबड़-खाबड़ जगल, पेचीली जगली

नदिया उन्हे पार करनी पड़ी। अन्त में राजधानी निकट आई।

राजा अन्ध-विश्वासो से परिपूर्ण वातावरण मे था। सैकड़ों जादूगर, मूर्ख. पाखण्डी उसे घेरे रहते थे। उन्होने उसे भयभीत कर दिया कि यदि वह उन भिक्षु-यात्रियो से मिलेगा तो उसपर दैवी कोप होगा, और वह तत्काल मर जाएगा। परन्तु उसने सुन रखा था कि आगन्तुक चक्रवर्ती सम्राट् अशोक के पुत्र और पुत्री है। उसमे सम्राट् को अप्रसन्न करने की सामर्थ्य न थी। उसने उनके स्वागत का बहुत अधिक आयोजन किया। उसे खयाल था, महाराजकुमार के साथ बहुत-सी सेना-सामग्री, सवारी आदि होगी। पर जब उसने उन्हें पीत वस्त्र पहने, पृथ्वी पर दृष्टि किए, नगे पैरो धीरे-धीरे पैदल अग्रसर होते और महाराजकुमारी तथा अन्य अनुचरों को उसी भाति अनुगत होते देखा, तो वह आश्चर्यचकित रह गया, और जब उसने सुना कि उसकी समस्त भेट और सवारी उन्होने लौटा दी है, और वे इसी भाति पैदल भयानक यात्रा करके आए है तो वह विमूढ़ हो गया। कुमार पर उसकी भक्ति बढ गई। उसने देखा, राजकुमार के सिर पर मुकुट और कानो मे कुडल न थे, पर मुख काति से देदीप्यमान हो रहा था। उन्होने हाथ उठाकर राजा को 'कल्याण' का आशीर्वाद दिया। राजा हठात् उठकर महाकुमार के चरणो मे गिर गया। समस्त दरबार के सम्भ्रात पुरुष भी भूमि पर लोटने लगे।

महाकुमार ने प्रबोध देना प्रारम्भ किया, और कहा :

"राजन्, क्षमा हमारा शस्त्र और दया हमारो सेना है। हम इसी राजबल से पृथ्वी की शक्तियो को विजय करते है। हम सद्धर्म का प्रकाश जीवो के हृदयों मे प्रज्वलित करते फिरते हैं। हम त्याग, तप, दया और सद्भावना से आत्मा का श्रृगार करते है। हे राजन् ! हम अपनी ये सब विभूतियां आपको देने आए है। आप इन्हे ग्रहण करके कृतकृत्य हूजिए।"

राजा धीरे-धीरे पृथ्वी से उठा। उसने कहा—और केवल यही विभूतिया ही आपके इस प्रशस्त जीवन का कारण है ?

राजकुमार ने स्थिर गम्भीर होकर कहा—हा।

"इन्हीको पाकर आपने साम्राज्य का दुर्लभ अधिकार तुच्छ समझकर त्याग दिया ?"

"हां, राजन् !"

"और इन्हीको पाकर आप भिक्षावृत्ति मे सुखी है, पैदल यात्रा के कष्टो को

सहन करते है, तपस्वी जीवन से शरीर को कष्ट देने पर भी प्रफुल्लित है।"

"हा, इन्हींको पाकर।"

"हे स्वामी ! वे महाविभूतिया मुझे दीजिए, मै आपका शरणागत हूं।"

भिक्षुराज ने एक पद आगे बढकर कहा—राजन्, सावधान होकर बैठो।

राजा घुटनों के बल धरती पर बैठ गया। उसका मस्तक युवक भिक्षुराज के चरणों मे झुक रहा था।

महाकुमार ने कमडलु से पवित्र जल निकालकर राजा के स्वर्ण-खचित राज-मुकुट पर छिड़क दिया, और कहा :

"कहो—

बुद्ध शरणं गच्छामि।

सघं शरण गच्छामि।

सत्य शरण गच्छामि।"

राजा ने अनुकरण किया। तब भिक्षुराज ने अपने शुभ हस्त राजा के मस्तक पर रखकर कहा—राजन् उठो ! तुम्हारा कल्याण हो गया। तुम प्रियदर्शी सम्राट् के प्यारे सद्धर्मी और तथागत के अनुगामी हुए।

इसके बाद राजा की ओर देखे बिना ही भिक्षु-श्रेष्ठ अपने निवास को लौट गए।

उनके लिए राजमहल में एक विशाल भवन निर्माण कराया गया। और उसमे श्वेत चदोवा ताना गया था, जो पुष्पो से सजाया गया था। महाकुमार ने वहा बैठकर अपने साथियों के साथ भोजन किया और तीन बार राजपरिवार को उप-देश दिया। उसी समय तिष्य के लघु भ्राता की पत्नी अनुला ने अपनी पांच सौ सखियों के साथ सद्धर्म ग्रहण किया।

सध्या का समय हुआ, और भिक्षु-मण्डली पर्वत की ओर जाने को उद्यत हुई। महाराज तिष्य ने आकर विनीत भाव से कहा—पर्वत बहुत दूर है, और अति बिलम्ब हो गया हैं, सूर्य छिप रहा है, अत कृपा कर नन्दन उपवन मे ही विश्राम करे।

महाकुमार ने उत्तर दिया—राजन्, नगर में और उसके निकट वास करना भिक्षु का धर्म नही।

'तब प्रभु महामेघ-उपवन मे विश्राम करें; वह राजधानी से न बहुत दूर है,

न निकट ही ।"

महाकुमार सहमत हुए, और महामेघ-उपवन मे उनका आसन जमा ।

दूसरे दिन तिष्य पुष्प-भेंट लेकर सेवा में उपस्थित हुआ । महाकुमार ने स्थान के प्रति संतोष प्रकट किया । तिष्य ने प्रार्थना की कि वह उपवन भिक्षु-सघ की भेंट समझा जाए, और वहां विहार की स्थापना की जाए ।

भिक्षुराज ने महाराज तिष्य की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली । महामेघ-अनुष्ठान के तेरहवें दिन, आषाढ़-शुक्ल त्रयोदशी को महाकुमार महेन्द्र, राजा का फिर आतिथ्य ग्रहण करके, अनुराधपुर के पूर्वी द्वार से मिस्सक पर्वत को लौट चले । महाराज ने यह सुना तो वह अनुला और सिंहालियों को साथ लेकर, रथ पर बैठकर दौड़ा ।

महेन्द्र और भिक्षु तालाब मे स्नान करके पर्वत पर चढ़ने को उद्यत खडे थे । राजवर्ग को देखकर महाकुमार ने कहा—राजन्, इस असह्य ग्रीष्म मे तुमने क्यो कष्ट किया ?

"स्वामिन्, आपका वियोग हमे सह्य नही ।"

"अधीर होने का काम नही । हम लोग वर्षा-ऋतु में वर्षा-अनुष्ठान के लिए यहा पर्वत पर आए है, और वर्षा-ऋतु यही पर व्यतीत करेगे ।"

महाराज तिष्य ने तत्काल कर्मचारियो को लगाकर ६८ गुफाए वहा निर्माण करा दी, और भिक्षुगण वहा चतुर्मास व्यतीत करने को ठहर गए । एक दिन तिष्य ने कहा :

"स्वामिन्, यह बड़े खेद का विषय है कि लंका में भगवान् बुद्ध का ऐसा कोई स्मारक नही जहा उसकी भेंट-पूजा चढ़ाकर विधिवत् अर्चना की जाए । यदि प्रभु स्मारक के योग्य कोई वस्तु प्राप्त कर सकें तो उसकी प्रतिष्ठा करके उसपर स्तूप बनवा दिया जाए ।"

महाकुमार महेन्द्र ने विचारकर सुमन भिक्षु को लका-नरेश का यह सदेश लेकर सम्राट् प्रियदर्शी अशोक की सेवा में भारतवर्ष भेज दिया ।

उसने सम्राट् से महाकुमार और महाकुमारी के पवित्र जीवन का उल्लेख करके कहा—चक्रवर्ती की जय हो ! महाकुमार और लंका-नरेश की इच्छा है कि लंका में तथागत के शरीर का कुछ अंश प्रतिष्ठित किया जाए, और उसकी पूजा होती रहे ।

अशोक ने महाबुद्ध के गले की एक अस्थि का टुकड़ा उसे देकर विदा किया।

महाकुमार उस अस्थि-खण्ड को लेकर फिर महामेघ-उपवन मे आए। वहा राजा अपने राजकीय हाथी पर छत्र लगाए स्वागत के लिए उपस्थित था।

उसने अस्थि-खण्ड को सिर पर धारण किया, और बड़ी धूम-धाम से उसकी स्थापना की। उस अवसर पर तीस सहस्र सिहालियो ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया।

द्वीप-भर में बौद्ध-धर्म का साम्राज्य था। सम्राट् ने अपने पवित्र पुत्र और पुत्री को तीन सौ पिटारे भरकर धर्म-ग्रथ उपहार भेजे थे। उन्हे वहाके निवासियो को उन्होने अध्ययन कराया। एक बच्चा भी अब बौद्धो की विभूति से वचित न था।

भिक्षुराज महाकुमार महेन्द्र कठिन परिश्रम और तपश्चर्या करने से बहुत दुर्बल हो गए थे। वृद्धावस्था ने उनके शरीर को जीर्ण कर दिया था। महाराज-कुमारी ने द्वीप की स्त्रियों को पवित्र धर्म मे रग दिया था। दोनो पवित्र आत्माएं अपने जीवनो को धैर्य से गला चुके थे। उन्हे वहा रहते युग बीत गया था। एक दिन भिक्षुराज महेन्द्र ने कुमारी संघमित्रा से कहा :

"आर्या सघमित्रा ! मेरा शरीर अब बहुत जर्जर हो गया है। अब इस शरीर का अन्त होगा। यह तो शरीर का धर्म है। तुम प्राण रहते अपना कर्तव्य पूर्ण किए जाना।"

उसके मुख पर सन्तोष के हास्य की रेखा थी।

उसी रात्रि को एक अनुचर ने, जो कुमार के निकट ही सोता था, देखा कि उनका आसन खाली है। वह तत्काल उठकर चिल्लाने लगा—हे प्रभु ! हे प्रभु ! समुद्र की लहरें किनारों पर टकराकर उस पार के मित्रों की आनन्द-ध्वनि ला रही थी। अनुचर ने देखा, महाकुमार भिक्षुराज बोधि-वृक्ष को आलिगन किए पड़े है। उनके नेत्र निमीलित है। अनुचर लपककर चरणों में लोट गया। लोग जाग गए थे और वही को आ रहे थे। इस भीड़ को देखकर कुमार मुस्कराए, सबको आशीर्वाद देने को उन्होने हाथ उठाया, पर वह दुर्बलता के कारण गिर गया। धीरे-धीरे उनका शरीर भी गिर गया। अनुचर ने उठाकर देखा तो वह शरीर निर्जीव था। उस स्निग्ध चन्द्रमा की चांदनी में, उस पवित्र बोधि-वृक्ष के नीचे वह त्यागी राज-पुत्र, ससागरा पृथ्वी का एकमात्र उत्तराधिकारी धरती पर निश्चिन्त होकर अटूट

सुख-नीद सो रहा था, और भक्तों में जो-जो सुनते थे, एकत्र होते जाते थे, और चार आंसू बहाते थे।

वह आश्विन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी थी, जब भिक्षुराज महेन्द्र ने जीवन समाप्त किया। उस समय यह महापुरुष अपने भिक्षुजीवन का साठवा वर्ष मना रहा था, उसकी आयु अस्सी वर्ष की थी। उसने अड़तालीस वर्ष तक लंका मे बौद्ध-धर्म का प्रचार किया।

उस समय महाराज तिष्य को मरे आठ वर्ष बीत चुके थे। उसके छोटे भाई उत्तिष्य ने, जो अब राजा था, जब इस महापुरुष की मृत्यु का सवाद सुना तो वह बालक की तरह रोता और बिलखता हुआ उस पवित्र पुरुष के गुण-गान करता दौड़ा।

राजा की आज्ञा से भिक्षुराज का शव सुगन्धित तैल में रखकर एक सुनहरे बक्स में बन्द कर और अनेक सुगन्धित मसालो से भर दिया गया। फिर वह एक सुनहरे शकट पर, बड़े जुलूस के साथ, अनुराधपुर लाया गया। समस्त द्वीप के अधिवासियो और सैनिको ने एकत्र होकर इस महाभिक्षुराज के प्रति अपनी श्रद्धाजलि भेंट की।

राजधानी की गलियो से होता हुआ जुलूस अन्त मे पनहंबमाल के विहार में जाकर रुका, जहां वह शव सात दिन रखा रहा। राजा की आज्ञा से विहार से पचीस मील तक चारों ओर का प्रदेश तोरण, ध्वजा, पताका और फूल-पत्तो से सजाया गया।

इसके बाद शव चन्दन की चिता पर रखा गया और राजा ने अपने हाथ से उसमें आग लगाई।

जब चिता जल चुकी तो राजा ने राख का आधा भाग चैत्य-पर्वत पर, महि-तेल में ले जाकर गाड़ दिया, और शेष आधा समस्त विहारो और प्रमुख स्थानों में गाड़ने को भेज दिया।

इस प्रकार अब से बाईस सौ वर्ष पूर्व वह महापुरुष असाधारण रीति से जन्मा, जिया और मरा। लका द्वीप को इस महापुरुष ने जो लाभ प्रदान किया, वह असाधारण था। उसने यहा की भाषा, साहित्य और जीवन मे एक नवीन सभ्यता

की स्फूर्ति पैदा कर दी थी, और कला-कौशल मे उन्नति मचा दी थी। यह सब इस द्वीप के लिए एक चिरस्थायी वरदान था।

आज भी वर्ष के प्रत्येक दिन और विशेषकर पौष की पूर्णिमा को, अनेको तीर्थ-यात्री महितेल पर चढते दिखाई देते है, और प्राचीन कथाओ के आधार पर इस महापुरुष से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक स्थान की यात्रा करके श्रद्धाजलि भेट करते है।

जिस स्थान पर महाकुमार का शव-दाह हुआ था, वह स्थान अब भी 'इसी भूमागन' अर्थात् 'पवित्र भूमि' कहाता है, और तब से अब तक उस स्थान के इर्द-गिर्द पचीस मील के घेरे मे जो पुरुष मरता है, यही अन्तिम सस्कार के लिए लाया जाता है।

इस राजभिक्षु ने जिन-जिन गुफाओ मे निवास किया था, वे सभी महेन्द्र गुफा कहाती है। अब भी चट्टान मे कटी हुई एक छोटी गुफा को 'महेन्द्र की शय्या' के नाम से पुकारते हैं। पहाडी के दूसरी ओर 'महेन्द्र-कुण्ड' का भग्नावशेष है, जिसे देखकर कहा जा सकता है कि उसपर न जाने कितना बुद्धि-बल और धन खर्च किया गया होगा।

क्या भारत के यात्री इस महान् राजभिक्षु की लीला-भूमि को देखने की कभी इच्छा करते है ?

# आचार्य उपगुप्त

यह कहानी सन् १९२८ में लिखी गई थी। इसमें सम्राट् अशोक का कलिंग-विजय के पश्चात् भाव-परिवर्तन का अंतरंग रेखाचित्र है। कहानी में भाव-व्यंजना, तथ्य और ध्वनि सभी कुछ कल्पना और सत्य के मिश्रण से व्यक्त की गई है। यह कहना कठिन है कि कहानी में तथ्य-वैशिष्ट्य है या भाव-वैशिष्ट्य। परन्तु यह कहानी-कला की दृष्टि से लेखक की तत्कालीन रचना का उत्तम नमूना है। यह कहानी आठ मास में पूरी हुई थी।

सन्ध्या हो चुकी थी, सूर्य अस्त हो गया था, पर पश्चिम दिशा मे अभी लाल आभा शेष थी। पूर्व-दक्षिण कोण से जो प्रधान राजमार्ग मथुरा को जाता है, उसपर तीन यात्री धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। यात्री बहुत दूर से आ रहे थे और वे अत्यन्त क्लान्त और थकित थे। उनमे एक वृद्ध था, दो युवक। उन दोनों मे भी एक अति-किशोर वयस्क सुकुमार बालक था, जिसकी आयु कठिनता से चौदह की होगी। मध्यवर्ती युवक ने वृद्ध को सम्बोधित करके पूछा—लल्ल ! मथुरा तो आ गई, आशा है, अब विश्राम मिलेगा। परन्तु लल्ल ! क्या तुम्हे आशा है कि श्रेष्ठिवर हमे आश्रय देंगे ? वे हमे पहचान सकेंगे, और हमारा भेद गुप्त रख सकेंगे ?

"अवश्य ही ऐसा होगा, श्रेष्ठि धनगुप्त महाराज के परम मित्र, अनुगृहीत और सेवक है।"

किशोर वयस्क बालक ने अतिशय क्लान्त होकर कहा—महानायक ! अब और कितना चलना पड़ेगा ? मुझसे तो एक पग भी और चलना कठिन है। देखो, मेरे पैर क्षत-विक्षत हो गए है।

लल्ल ने क्षणभर रुककर, पीछे फिर एक बालक को देखा, उसके ओष्ठ कम्पित हुए और नेत्रों मे एक कण अश्रु-बिन्दु आकर गिर गया। पर उसने किंचित् हंसकर कहा—अब तो आ गए, थोड़ा धैर्य और !

"अब और नही"—कहकर बालक वही सड़क पर बैठ गया। दूसरे युवक ने

प्यार से उसका हाथ पकड़कर कहा—यहा मार्ग में देर करने से लाभ ? सूर्य छिप गया है, कहीं द्वार बन्द हो गए तो बाहर ही रात काटनी होगी और वन्य पशु फिर लल्ल को सोने न देंगे।

बालक फिर चला। लल्ल आगे बढ़ा। नगर के दक्षिण द्वार पर नगर-रक्षक रात्रि के लिए नवीन प्रहरियों की गिनती कर रहा था। तीनो यात्रियो ने चुपचाप द्वार में प्रवेश किया। किसीने इन दीन यात्रियों की ओर ध्यान नही दिया। लल्ल ने विनीत भाव से युवक से कहा—यदि आज्ञा हो तो रात किसी अतिथिशाला मे काट ली जाए, फिर प्रात काल श्रेष्ठिवर का घर ढूढ लिया जाएगा। अब इस समय कहां भटका जाएगा!—इतना कह उसने एक दृष्टि किशोर बालक पर फेकी और युवक की आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। युवक ने कहा—यही उचित है लल्ल ! चलो अतिथिशाला में ही रात्रि व्यतीत करें।

तीनों यात्री नगर के जन-पथ पर आगे बढे।

"श्रेष्ठिवर धनगुप्त का घर क्या यही है?"

"यही है श्रीमान् ! आपका कहां से पधारना हुआ है ? आइए, भीतर आइए, घर को पवित्र कीजिए।"

लल्ल से जब एक परम सुन्दर युवक ने अति नम्रतापूर्वक ये शब्द कहे, तब लल्ल आंखें फाड़-फाड़कर उस युवक और सामने के एक साधारण घर को देखने लगे।

"अवश्य ही भ्रम हुआ है महोदय ! क्या आप महाश्रेष्ठि धनगुप्त को जानते हैं?"

"श्रीमान्, यह दास उनका पुत्र है।"

"आप ! श्रेष्ठि धनगुप्त के पुत्र ! और यह उनका घर ! आपका शुभ नाम ?"

"सेवक का नाम उपगुप्त है।"

"उपगुप्त, उपगुप्त ! ओह ! सचमुच आप······परन्तु श्रेष्ठिवर कहां है ?"

"पूज्य पिताजी का स्वर्गवास हुए आठ वर्ष हो गए।"

"स्वर्गवास !"—लल्ल ने मुह फैला दिया।

"श्रीमान् अवश्य ही पितृ-चरणो के बन्धु है। मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए।"

"उपगुप्त श्रेष्ठिवर !"—इतना कहकर लल्ल ने युवक को दौड़कर भुज-पाश

मे बांध लिया। कुछ ठहरकर लल्ल बोले—समझा ! पिता के बाद लक्ष्मी ने भी उसके पुत्र को त्याग दिया ! वाह रे कराल काल ! जिसके नव-व्यापार से समुद्र पटा रहता था और यवन, चीन तक जिसकी हुण्डी चलती थी, उसका यह पुत्र नंगे पांव खड़ा राज-मार्ग पर अतिथि का सत्कार कर रहा है, और जहा द्वार पर सेना और हाथियो की पक्ति रहती थी, वहां यह घर है !"—यह कहकर लल्ल रोने लगे। एक बार उन्होने फिर युवक को छाती से लगा लिया।

उपगुप्त ने धैर्य से पूछा—आर्य ! परिचय देकर कृतार्थ करे। यह तो मैं समझ गया, आर्य पितृ-तुल्य पूज्य है,आज मेरा जन्म इन चरणो की सेवा से कृतार्थ होगा।

"श्रेष्ठिवर उपगुप्त ! ईश्वर को धन्यवाद है कि श्रेष्ठिवर धनगुप्त का विनय, सौजन्य और अतिथि-सत्कार आपमे अवशिष्ट है, जो श्रेष्ठिवर की सब सम्पत्तियो में अमूल्य थी, परन्तु अब परिचय की आवश्यकता नही, ईश्वर आपका कल्याण करे !"

इतना कहकर लल्ल चलने को तैयार हुए। उपगुप्त ने कातर स्वर से कहा—आर्य क्या दरिद्रता के कारण दास को आप त्याग रहे हैं ? यह न होगा। श्रीमान् यदि मेरा आतिथ्य न स्वीकार करेंगे, तो मैं प्राण त्याग दूगा ! आर्य ! मैं कभी झूठ नही बोलता।

लल्ल क्षण-भर स्तब्ध खड़े रहे। फिर उन्होंने कहा—श्रेष्ठिवर, मेरे साथ और भी दो व्यक्ति हैं, देखो वे सम्मुख खड़े हैं.......

"आह, आपने कहा नही......" यह कहकर उपगुप्त उधर दौड़े।

लल्ल ने रोककर कहा—श्रेष्ठिवर, ठहरिए, निस्सन्देह हम लोग आपके पिता का आश्रय प्राप्त करने यहां आए थे। पर अब नही। श्रेष्ठिराज, हम लोग आपको विपत्ति और चिन्ता में नही डालेंगे। ईश्वर आपका कल्याण करे !

"तब आर्य ! मैं निश्चय प्राण-त्याग करूंगा।"

"नही महोदय ! आपका इस अवस्था मे आतिथ्य स्वीकार न करने के कारण हैं। आप हमारे कारण विपत्ति में पड़ सकते हैं।"

"परन्तु महोदय ! मैं प्राण देकर भी हर्षित हूंगा। आर्य ! आज तक मैं अपने दारिद्रय के लिए लज्जित नही हुआ। क्या अब श्रीमान् मुझे लज्जित करेंगे ?"

"नहीं, नही, श्रेष्ठिराज, बात कुछ और ही है। अच्छा तब मैं स्वामी से आज्ञा ले लू !"

"मैं स्वयं ही उनके चरणो में प्रार्थना करूगा।"—इतना कहकर उपगुप्त ने दूर खड़े दोनो युवको के निकट जा, उनकी चरण-रज मस्तक पर लगाई।

लल्ल ने संक्षेप मे सब कुछ कहकर घर मे चलने का अनुरोध दिया।

आसन देकर, सबके बैठने पर उपगुप्त ने कहा—आर्य ! अब अपना और इन पूज्यों का परिचय देकर कृतार्थ करें !

"श्रेष्ठिराज, ये कलिगराज-महिषीपट्ट महारानी चन्द्रलेखा और ये महाराज-कुमारी शैला हैं। मगध के प्रतापी सम्राट् चण्डाशोक ने कलिंग का महाराज्य नष्ट कर डाला, एक लाख कलिंग-योद्धा रण-भूमि मे काम आए हैं। महाराज युद्ध-भूमि से लौटे नही, न उनका शरीर प्राप्त हुआ है। महाराजकुमार हरिद्वार मे स्वामी चिदानन्द के आश्रम मे गुप्त वास कर रहे है। मैं महानायक भट्टारकपादीय लल्ल हू। राजपरिवार घोर विपत्ति मे पड़ गया, तब इन महिलाओं को लेकर मैं आपके पिता के आश्रय की इच्छा से चल पड़ा। धनगुप्त श्रेष्ठिराज को छोड़ और कौन इन राजअतिथियो को आश्रय दे सकता है ? चण्डाशोक ने सर्वत्र चर छोड़े है। जो कोई राजपरिवार और कुमार जितेन्द्र को पकड़ा देगा, उसे दस सहस्र सुवर्ण-मुद्राए दी जाएगी। और जो कोई उस परिवार को आश्रय देगा उसे प्राण-दण्ड होगा। श्रेष्ठिराज, इसीलिए हम आपकी इस दुरवस्था मे आपको विपत्ति में नही डालना चाहते थे।"

उपगुप्त ने सब सुनकर कहा—"राजमाता और राजपुत्री तथा आपके चरणो से यह घर पवित्र हुआ, अब आपकी सेवा से शरीर को धन्य करूगा।

"परन्तु," लल्ल ने कहा, "आप अपनी पत्नी तक से यह परिचय गुप्त रखेगे और इनका पुरुष-परिचय ही देंगे।"

श्रेष्ठिवर ने स्वीकार किया।

अतिथियो के विश्राम की व्यवस्था करके उपगुप्त ने अपनी पत्नी से जाकर कहा—कुन्द ! मेरे स्वर्गीय पिता के मित्र हमारे अतिथि हुए हैं, उनका आतिथ्य हमें जैसे बने करना होगा।

कुन्द ने कुण्ठित होकर कहा—परन्तु स्वामिन् ! घर में तो कुछ भी सामग्री नहीं है, अतिथि खाएंगे क्या ?

उपगुप्त चुपचाप पत्नी के मुह की ओर देखने लगे। उन्होंने कहा—कुन्द !

क्या किसी भी तरह तुम व्यवस्था नही कर सकती ? क्या और कोई आभूषण नहीं है ?

"नही।"

"तब कोई अनावश्यक पात्र बन्धक रख दिया जाए।"

"यही होगा और उपाय क्या है ?"

उपगुप्त ने विकल होकर कहा—परन्तु कुन्द! तुम्ही इसकी व्यवस्था कर देना जिसमे हमारा नाम न प्रकट हो।

कुन्द ने कुछ कहने को मुख खोला ही था कि द्वार से कुछ मनुष्यो ने श्रेष्ठि को पुकारा। श्रेष्ठि ने बाहर आकर देखा, आठ-दस राज-कर्मचारी है और साथ मे है ऋणदाता महाजन।

उसने कर्कश स्वर मे कहा—श्रेष्ठि उपगुप्त ! हमारा चुकता पावना अभी चुकाओ अथवा बन्दीगृह में जाओ।

श्रेष्ठिवर ने घबराकर विनयपूर्वक कहा—मित्र ! आप तो जानते ही है, मैं इस समय कितने कष्ट में हू; फिर आज अभी मेरे घर मे पूज्य अतिथि आए है। श्रेष्ठिवर, कुछ और धैर्य धारण कीजिए, वरना बड़ा अनर्थ होगा।

ऋणदाता ने अवज्ञा से हसकर कहा—मै ऐसा मूर्ख नही। रकम भी छोटी नही। अब और धैर्य किस आशा पर ? दस सहस्र अभी दो, अन्यथा ये कर्मचारी, तुम्हें बन्दी कर लेगे।

उपगुप्त ने विवश होकर कहा—तब मुझे कुछ क्षण का तो अवकाश दीजिए, मैं अपने अतिथियो और पत्नी की कुछ व्यवस्था कर दू।

प्रधान राज-कर्मचारी ने कुछ आगे बढकर कहा—महोदय ! इसके लिए हम लोग बाध्य नही। क्या आप कृपापूर्वक अभी वह देते है ?

"नही, धन अभी नही !"

"तब सैनिको, इन्हे बाध लो।"

क्षणभर मे सैनिकों ने श्रेष्ठि को बाध लिया। विवाद सुनकर लल्ल और राजकुमारी बाहर आ गए थे। कुन्द भी सब व्यापार देख रही थी। सभी विमूढ-वत खड़े रहे। वे लोग श्रेष्ठिवर को बांध ले चले। कुन्द पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी।

"राजकुमारी शैला ने लल्ल को बुलाकर धीरे से कहा—महानायक ! इस

विपन्नावस्था में हमे श्रेष्ठि और उनकी पत्नी की पूर्ण शुश्रूषा करनी होगी।—राज-कुमारी लल्ल से कुछ परामर्श करने लगी। कुमारी की बात सुनकर लल्ल ने चौक-कर कहा—यह तो अत्यन्त भयानक है !

"चाहे जो कुछ भी हो।"

"नही, कुमारी ! ऐसा न होने पाएगा।"

"यही होगा भयानक।"

"कुमारी, सोच लो, राजमाता इसे कदापि न स्वीकार करेंगी।"

"हम लोगो का कर्तव्य है कि उन्हे सहमत करें।"

"पर यह भारी दुस्साहस है।"

"मैंने उसे करने का निश्चय कर लिया है। श्रेष्ठिवर को छुड़ाने का और उपाय नही। जब वे उन्हे बांध रहे थे, उसी समय मेरे मन में यह विचार आया था।"

महानायक गम्भीर दु.ख और विचार मे मग्न हो गए।

घटना का विवरण सुनकर महारानी ने कहा—श्रेष्ठिवर को इस कष्ट से प्राण देकर भी मुक्त करना होगा महानायक !

राजकुमारी ने उतावली से कहा—माता, वह मैं करूंगी !

"तू क्या करेगी ?"

महारानी ने बालिका को दृष्टि गाड़कर देखा।

"भैया से मेरी आकृति बिलकुल मिलती है, क्यों महानायक ?"

"तब ?"

"और पुरुष-वेश में मैं, भैया ही मालूम होती हूं—यह तुम बारम्बार कह चुकी हो।"

"हां, पर इससे क्या ?"

"भैया को जीवित या मृत पकड़वानेवाले का पुरस्कार दस सहस्र है, इतना ही तो श्रेष्ठिवर को चाहिए ? मैं अपने को भैया की जगह पकड़वाए देती हूं—उन रुपयों से श्रेष्ठिवर मुक्त हो जाएगे।"

इतना कहकर शैला खिलखिलाकर हंस पड़ी।

रानी पर वज्र गिर पड़ा, वह घबराकर बोली—वाह, यह कैसी बात ?

"क्यों ?" कुमारी ने गम्भीर होकर कहा।

"यह तेरा पागलपन है।"

"नही मा, मैंने सब बातें विचार ली हैं।"

"क्या विचार ली है ?"

"इस काम से दो बाते होगी—एक तो श्रेष्ठि मुक्त होगे, दूसरे भैया की खोज-जांच बन्द हो जाएगी और वे सुरक्षित रह सकेंगे।"

"परन्तु ये बर्बर सैनिक तेरा कैसी निर्दयता से घात करेंगे ? चक्रवर्ती तक जीवित भी पहुच गई, तो वह शत्रु क्या तुझे छोड़ेगा ?"

न जाने क्यो चक्रवर्ती का नाम सुनकर शैला का मुख लाल हो आया। उसने कहा—माता ! चक्रवर्ती की आज्ञा जीवित पकड़ने ही की है। जीवित पकड़कर वे वध नही करेंगे, चक्रवर्ती के सम्मुख ले जाएगे। वहा पहुंचकर मैं चक्रवर्ती से समझ लूगी।

"न शैला, मै तुझे इतना साहस न करने दूगी। चलो, हम लोग अन्यत्र चलें।"

शैला ने आंखों में आंसू भरकर कहा—तब कलिग राजपट्ट महिषी इतनी स्वार्थी हो गईं कि जिसकी उदारता और आश्रय प्राप्त किया, उसे इस विपन्नावस्था में छोड़ जाएगी ?

लल्ल अब तक चुप थे। वे बोले—माता ! शैला ही की बात रहे। विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट पुरुष अपना प्रताप और त्याग प्रकट करते है। शैला का त्याग इसके वश के उपयुक्त है। जो हो, श्रेष्ठिवर को छुड़ाना ही उचित है।

"तब क्या और कोई उपाय उपयुक्त नही ?"

"नही।"

राजमाता गम्भीर चिन्ता में मग्न हुई। शैला ने कहा—माता ! मैं कलिग की राजकुमारी हूं, शस्त्र-विद्या और अश्वारोहण में कुशल हू। पिताजी ने मुझे कुछ शिक्षा भी दी है ! इस प्रकार मैं एक सम्राट् के सम्मुख जाकर स्वयं उसके इस पातक और अत्याचार के सम्बन्ध में पूछना चाहती हूं। इससे अवश्य हमारा कुछ कल्याण होगा।

अन्त में रानी ने सिर हिलाया। शैला ने कहा—तब महानायक ! तुम कुन्द से कह दो कि तुम्हारे घर में कलिग का राजकुमार छिपा हुआ है, उसे पकड़ाकर श्रेष्ठि को छुड़ा दो।

लल्ल ने कहा—यह कर्तव्य मुझे पालन करना होगा ! राजकुमारी ! तुम स्वयं ही यह साहस करो।

राजकुमारी ने कहा—नही, तुम्ही उससे कहो, जिससे उसपर भेद प्रकट न होने पाए।

लल्ल का प्रस्ताव सुनकर कुन्द भय, आश्चर्य और दु.ख से विमूढ हो गई। उसने कहा—क्या कलिग का राजकुमार !

"जी हा, वह युवक वही कलिग-राजकुमार है, जिसके सिर का मूल्य दस सहस्र है। इतने मे ही तो श्रेष्ठिवर छूट जाएगे।"

"और मैं उन्हे पकडा दू—अतिथि को जो मेरे पति के पूज्य नही, उनके स्वर्गीय पिता के पूज्य है ? वृद्ध महोदय, आपसे ऐसे नीच प्रस्ताव की आशा न थी। आप कदाचित् अपने ही स्वामी से विश्वासघात कर रहे है !"

"नही श्रेष्ठिवधु ! राजकुमार स्वय यह इच्छा कर रहे है।"

"राजकुमार स्वय इच्छा कर रहे है ?" कुन्द ने विमूढ होकर पूछा।

"जी हा, उन्हीका प्रस्ताव तो मै लाया हू।"

"तो कुमार की उदारता और त्याग धन्य है। उनके चरणो में मेरा प्रणाम कहिए। परन्तु यह अधर्म मुझसे न होगा। हे ईश्वर ! पवित्र अतिथि से विश्वास-घात करने की आप सम्मति दे रहे हैं !"

"विश्वासघात कैसे ?"

"नही-नही, कदापि नही।"

शैला ने निकट आकर कहा—देवी ! मेरी यह तुच्छ भेंट आपको स्वीकार करनी ही पडेगी। आप पतिप्राणा, साध्वी और धर्मात्मा है, आपका सौभाग्य अचल रहे। श्रेष्ठिवर महान् पुरुष है, मुझे प्रसन्नता होगी कि मेरा शरीर मेरे मित्र के काम आया।

कुन्द ने रोते-रोते कहा—राजकुमार ! ऐसी अधर्म की बात मुख से न निकालिए।

"अधर्म नही देवि ! मुझे तो स्वयं सम्राट् के निकट जाना ही है।"

"परन्तु मैं यह कुकृत्य न करूगी।"

"तब श्रेष्ठिवर मुक्त कैसे होगे ?"

"जैसी प्रभु की इच्छा होगी, वही होगा।"

"नही-नही, कदापि नही। तब मुझे स्वय यह कार्य करना होगा।"

"नही, राजकुमार मुझे अधम न बनाइए !"

"देवि ! और कोई उपाय नही है, फिर यो मुक्त होने पर श्रेष्ठिवर कुछ न कुछ उपाय मुझे मुक्त करने का कर ही लेगे। और यह तो मै स्वय कर रहा हू। सोचिए तो, श्रेष्ठिवर को वहा कितना कष्ट और वेदना होगी !"

कुन्द व्यथित और खिन्न-सी कुमार की ओर देखती रही।

कुमारी ने कहा—लल्ल ! तब तुम यह सन्देश राजद्वार पर ले जाओ और नगराध्यक्ष को बुला लाओ।

लल्ल ने प्रस्थान किया। कुन्द ने बहुत बाधा दी। कुछ ही क्षण मे सैनिको-सहित नगराध्यक्ष ने आकर कुमारी को बाध लिया और दस तोड़े वहीं गिनकर उसे ले चले। कुन्द और महारानी दोनो पछाड खाकर गिर पडी।

"किस महोदय ने इतनी कृपा की कुन्द ? धन्य है वह प्रभु ! परन्तु हा, अतिथियों का ठीक सत्कार तो हुआ ? ओह ! तुम्हारा मुह इतना सफेद क्यो हो रहा है ? कुन्द ! तुम इतनी दु खी क्यो ? अरे ! रोने लगी !"

कुन्द बिना बोले पति के चरणो मे गिरकर जोर-ज़ोर से रोने लगी। उपगुप्त ने कहा—कुन्द !अब इतना दु ख क्यो ? तुम उस कृपालु मित्र का नाम तो बताओ। मै तनिक उसे धन्यवाद तो दे आऊ।—कुन्द ने रोते-रोते सब घटना बयान कर दी।

मानो सहस्र बिच्छुओ ने दश किया। उन्होने तडपकर कहा—क्या कहा ? कुमार को पकड़ाकर यह धन प्राप्त किया ? कुन्द निरुत्तर रही।

"कुन्द ! कुन्द ! यह पातक तुमने किया ? मेरा जन्म, जीवन, यश, धर्म—सभी नष्ट किया। कुन्द ! तुम ऐसी थी ? यह तो आशा न थी। हाय ! बडा अधर्म हुआ !" इतना कहकर श्रेष्ठिवर विकल हो, इधर से उधर टहलने लगे।

लल्ल ने धीरे-धीरे कक्ष मे प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर ! कुमार ने स्वेच्छा से यह कार्य किया है, कुन्द का इसमे तनिक भी अपराध नही। ये तो अन्त तक सहमत न हुई थी।

उपगुप्त ने रोते-रोते कहा—महानायक ! अब क्या होगा ? मै कैसे इस पातक

से उऋण होऊंगा ? कैसे मै अब प्राण देकर कुमार को लाऊ ? और आप जैसे विवेकी वृद्ध के रहते कैसे यह कुकर्म होने पाया ? कुन्द ! स्त्रियो से इसीलिए ज्ञानी पुरुष घृणा करते है, स्त्रिया इतनी तुच्छ है, इतनी स्वार्थी है ! हा-हा ! कुन्द ! तुम सब स्त्रियो में अधम रही—तुमने अपने स्वार्थ के— पति के स्नेह के लिए पवित्र अतिथि को···कहते-कहते श्रेष्ठिवर धरती पर गिर गए।

धीरे-धीरे रानी ने घर मे प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर ! क्या आपको यह विश्वास नही होता कि हम तीनो मे से किसीको इस घटना का दु.ख नही ? फिर कुमार की तो यह इच्छा ही थी। वह वैसे भी सम्राट् की सेवा मे जाता। इसके सिवा कुन्द किसी तरह अपमान की पात्री नही। जैसे आप धर्मात्मा, विनयी और महान् है, वैसे ही आपकी धर्मपत्नी भी है। श्रेष्ठिवर ! शोक त्यागकर अब यह उपाय सोचना चाहिए कि हमारा कर्तव्य क्या है।

उपगुप्त उठ बैठे। उन्होने कहा—सोचिए। मै किस प्रकार कुमार को ला सकता हूं ?

तीनों व्यक्तियो मे सलाह हुई। अन्त मे यही निर्णय हुआ कि उन सैनिको के साथ, जो कुमार को ले जा रहे है, हम लोग भी राजधानी को चलें। वहां जैसा कुछ होगा, देखा जाएगा। यह निर्णय करके उपगुप्त ने कुन्द की ओर देखकर स्निग्ध स्वर में कहा—कुन्द ! आओ ! इन पूज्य अतिथियो के सम्मुख हम-तुम भी कुछ परामर्श कर ले ! यह तो तुमनें देखा ही कि यह धन कितने अपमान और अधर्म की जड़ है। आओ ! हम मन, वचन, कर्म से इस धन का त्याग करें। मैंने श्रेष्ठि-पद त्यागा, मै दरिद्रराज हुआ। आज से धनमात्र मेरे लिए लोष्ठवत् और तुम्हारे लिए भी कुन्द !

कुन्द ने चुपचाप स्वीकृति दे दी।

"अच्छा, अब आज से हम लोग न धन छुएगे न धन से हमारा सम्बन्ध रहेगा। अब दूसरी बात सुनो ! यह घनिष्ठ सम्बन्ध भी—जैसा कि हमारे-तुम्हारे बीच है—दुःख और पाप का मूल। देखो, इसी घटना ने कितने दुःख और पाप का प्रदर्शन कराया ! आओ, हम लोग इस सम्बन्ध का भी विच्छेद करें। कुन्द ! आज से हम लोगं पति-पत्नी नही। तुम्हारा कल्याण हो, तुम जगत् मे विचरण करो, जगत् की सेवा करो। मैं कुमार को छुड़ाकर तब यह करूगा !" इतना कहकर उपगुप्त उठे। कुन्द वज्राहत की तरह धरती पर गिर गई। उपगुप्त ने उधर देखा

भी नही। वे अति गम्भीर मुद्रा में घर से बाहर हुए।

ग्रीष्म की ज्वलन्त लू और उत्ताप की तनिक भी परवाह न करके सैनिक ने पर्वत की उपत्यका मे घोड़ा छोड दिया था। आगे-आगे एक हरिण प्राण लेकर भाग रहा था। युवक सैनिक के धनुष पर बाण चढ़ा था। उसे उसने कान तक खीचकर मारा। बाण हरिण के पैरो में लगा। पर वह प्राण-सकट को समझकर गर्म-गर्म रुधिर-बिन्दु टपकाता आहत होकर उपत्यका के एक पार्श्व मे भागकर छिप गया। हरिण को सम्मुख न देखकर सैनिक घोड़े से उतर पड़ा। वह रक्तबिन्दु के चिह्न देखता-देखता आगे बढ़ा।

सम्मुख एक घने अश्वत्थ के वृक्ष के नीचे शीतल छाया मे एक वृद्ध भिक्षु बैठा था। उसकी गोद में वही हरिण था। वह यत्न से उसके पैर से तीर निकालकर उसके घाव पर पट्टी बाध रहा था।

युवक ने वहां पहुंचकर क्रोध से कहा—तू कौन है, पाखण्डी ?

"तुम्हारा कल्याण हो !" वृद्ध भिक्षु ने सिर उठाकर कहा।

"पर तू कौन है ?"

"मैं भिक्षु हूं।"

"भिक्षु, तेरा यह साहस कि मेरे आखेट को हाथ लगा सके ? इसे अभी छोड़ दे !"

"क्यो ?"

"यह मेरा आखेट है।"

"यह तेरा किसलिए है ?"

"मैंने इसे मारा है।"

"मारनेवाला किसीका स्वामी नहीं हुआ करता, शत्रु होता है; और शत्रु का कोई अधिकार नही होता। स्वामी होता है बनानेवाला। उसीका अधिकार भी होता है।"

"तू बड़ा धृष्ट प्रतीत होता है !"

"साधु के लिए विनय और धृष्टता क्या है ?"

"तब इसे छोड़ दे—यह मेरा शिकार है।"

"नही, यह मेरा आश्रित दीन पशु है।"

"इसे मैंने मारा है।"

"इसकी मैंने रक्षा की है।"

सैनिक का क्रोध और तेज मानो व्यर्थ जा रहा था। ऐसे धृष्ट प्रश्नोत्तर का उसे अभ्यास न था। परन्तु वृद्ध साधु का प्रभाव उसपर पड रहा था। उसने कहा—तू इसका क्या करेगा ?

"मै इसे नीरोग करके छोड़ दूगा, यह फिर आनन्द से विचरण करेगा।"

"तू अवश्य इसका मांस खाएगा। तू धूर्त है, मेरा आखेट हड़पना चाहता है।"

"युवक सैनिक ! शान्त हो, हिसक से रक्षक बड़ा है। जो व्यक्ति एक कीडा भी नही बना सकता, वह इतने बडे पशु को कैसे मारता है ? इसका उसे अधिकार क्या है ? हम लोग भक्षक नही रक्षक है। निकट ही हमारा विहार है, वहा बहुत-से बौद्ध भिक्षुक है, जो प्राणियों की सेवा सुश्रूषा करते है। वहां रोगी जीव-जन्तु की चिकित्सा की जाती है और प्रेम और दया हमारा धर्म है।"

युवक चुपचाप खडा रहा। उसने कहा—मैं तेरा वह विहार देखूगा।

वृद्ध ने चलने का आयोजन करके कहा—मेरे साथ आओ।—उसके पास और भी कई रोगी और घायल पशु थे। उन सबको उसने उठाया। सैनिक ने कहा—इतना भार तुम नही उठा सकते, लाओ यह हरिण मै ले चलू।

युवक का स्पर्श पाते ही हरिण छटपटाने लगा।

भिक्षु ने कहा—उसे मत छुओ। उसे तुमसे घृणा है।—भिक्षु ने उसे गोद मे ले लिया। वह शिशु की तरह उसकी गोद मे सो गया।

दोनो चले। युवक का गर्व भग हुआ। वह सोचता जा रहा था, मै समझता था पृथ्वी-भर के राजमुकुट मेरे चरणो मे गिरते है, और सभी मेरी प्रतिष्ठा करते और मुझसे भय खाते है। पर यह तुच्छ पशु भी मुझसे घृणा करता है ! इस वृद्ध भिक्षु मे ऐसा क्या गुण है, जो यह मूक प्राणी भी इसपर विश्वास करता, प्रेम करता और आत्मसमर्पण करता है ? हाय ! मै इतना अधम हूं ! एक बार उसने रक्त और धूल से भरे अपने वस्त्रो को देखा। एक गम्भीर श्वास ली और नीचा सिर किए साधु के पीछे-पीछे चला।

वन-प्रदेश के एक घने कुज में वह विहार था। वहां पूर्ण शान्ति और आनन्द का राज्य था। उत्तप्त सूर्य की किरणें उस दुर्भेद्य वृक्ष-राशि को पार नहीं कर सकती

थी। उस सघन छाया मे बहुत-सी पर्ण-कुटियां बनी थी, जहा भिन्न-भिन्न आयु के वीतराग बौद्ध साधु ज्ञान-चर्चा मे मग्न थे। रोगी और घायल पशु और मनुष्यों की चिकित्सा हो रही थी। सहस्रों पशु-पक्षी निर्भय कलोलें कर रहे थे। वृद्ध के पहुचते ही दो साधुओ ने दौड़कर वृद्ध का बोझ ले लिया और वे उसके उपचार में लगे। युवक सैनिक विमूढ-सा खड़ा यह देख रहा था। ऐसी शान्ति और आनन्द उसने अपने जीवन मे नही देखा था। एक नई भावना उसके हृदय मे उदय हो रही थी; वह कुछ सोच रहा था। एक नवीन तेज उसके नेत्रो में दीपित हो रहा था।

एक प्रचण्ड जय-घोष हुआ—महामोगली-पुत्र तिष्य की जय ! युवक ने दृष्टि उठाकर देखा—सम्मुख एक तेज-मूर्ति चली आ रही है। प्रशान्त मुख-मण्डल, गम्भीर गति, महान् व्यक्तित्व। युवक ने सोचा, यह क्या ! यही महाप्राण भगवान् मोगली-पुत्र तिष्य है, जिनके विषय मे सुना गया है कि उनके दर्शन होना दुर्लभ है, और जिसे एक बार उनके दर्शन हो जाते है, वह धन्य समझा जाता है ? युवक एकटक उस महान् शरीर को देखता रहा।

भगवान् तिष्य ने युवक के निकट आकर कहा—चक्रवर्ती सम्राट् की जय हो। —एक अतर्क्य शक्ति के प्रभाव से सम्राट् ने साधुवर के चरणो मे सिर झुका दिया। भिक्षु-मण्डल अवाक् रह गया। भगवान् तिष्य ने कहा—सम्राट्, इस वृद्ध भिक्षु ने अज्ञान से यदि कुछ अनाचार किया हो तो क्षमा करे। चक्रवर्ती से इसका परिचय नही।

सम्राट् ने कहा—प्रभो ! आज मैं कृतकृत्य हुआ। सम्राट् के प्रचण्ड सम्मान और परिच्छद मे मुझे ऐसी शान्ति नही मिली, जो आज मै इस तपोवन में प्राप्त कर रहा हू। भगवान् के दुर्लभ दर्शन पाकर मै और कृतार्थ हुआ। प्रभो ! कलिंग के युद्ध मे मैने एक लक्ष प्राणियो का वध किया है। अब देखता हूं, वध करने से रक्षा करना श्रेष्ठ है। मैं समझता था कि पृथ्वी के महाराज भी मेरा सम्मान करते हैं। परन्तु आज अधम प्राणी को घृणा करते देखकर मेरे मन में प्रबल आत्मग्लानि उदय हुई है। प्रभो, रक्षा करें। यह किंकर आपकी शरण है।

"सम्राट् !" भगवान् तिष्य ने कहा—आपकी धर्म मे अभिरुचि हुई, यह बहुत शुभ हुआ। भगवान् बुद्ध ने भी इसी प्रकार अकस्मात् ज्ञान प्राप्त किया था। शक्ति-अधिकार द्वारा अधीनो को वश करने की अपेक्षा प्रेम और दया से प्राणिमात्र को जीतना श्रेयस्कर है। शरीर को अधीन करने की अपेक्षा आत्मा को वशीभूत कर

लेना सच्ची विजय है। आप पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् हैं; परन्तु जब आप पृथ्वी की आत्माओ को वशीभूत कर लेंगे तो आपकी अक्षय विजय होगी। आप अमर होगे।

सम्राट् ने नतमस्तक होकर कहा—भगवन्! मुझे सत् ज्ञान प्रदान कीजिए। मैं प्रेम और दया द्वारा प्राणियो की आत्मा को विजय करूगा। क्षमा मेरा शस्त्र, दया मेरी नीति, और त्याग मेरा शासन होगा।

"तथास्तु, तब सम्राट्, आपका नाम 'चण्डाशोक' के स्थान पर 'देवाना प्रिय' प्रसिद्ध होगा। आपका कल्याण हो, आप आज से देवताओं के प्रिय हुए। कहें :

बुद्ध शरण गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।"

सम्राट् ने पृथ्वी पर घुटने टेककर उपर्युक्त पंक्तियों को दुहराया। मोगलीपुत्र तिष्य ने पवित्र अभिसिचन करके कहा—सम्राट् देवानां प्रिय अशोक की जय हो! आइए सम्राट्, अब मैं आपको आपके आचार्य का परिचय कराऊंगा, जिनसे आपको गुरुवत् व्यवहार करना होगा, जो परम वीतराग, महान् धर्मात्मा और एकनिष्ठ महापुरुष हैं, जिनकी आत्मा मे महान् बुद्ध का निवास है। वे सदैव आपके साथ रहकर आपको कल्याण का मार्ग बताएंगे और आपको सुमति की दीक्षा देंगे। उनके वचन का अनुसरण करके आप पृथ्वी पर और स्वर्ग में अक्षय कीर्ति प्राप्त करेंगे।

आचार्य तिष्य इतना कहकर पीछे को मुड़े। एक घने कुंज में छोटी-सी कुटिया के द्वार पर जाकर पुकारा—आचार्य उपगुप्त! सम्राट् आपकी सेवा में उपस्थित हैं।

आचार्य उपगुप्त—वही श्रेष्ठिराज उपगुप्त—पीत परिधान किए, मुण्डित-शिर, विनम्रमुख कुटी से बाहर आए। सम्राट् अशोक ने पृथ्वी पर गिरकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—आचार्य! मुझे सन्मार्ग बताइए।

आचार्य उपगुप्त की मुद्रा भंग न हुई, न उन्होंने दृष्टि उठाई। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हुई। आचार्य तिष्य ने कहा—आचार्य! सम्राट् आपके तत्त्वावधान मे पृथ्वी पर धर्म-विस्तार करेंगे। आप ही सम्राट् को धर्म बताने के योग्य हैं, आप सम्राट् का प्रणाम ग्रहण कीजिए।

आचार्य उपगुप्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—देवानां प्रिय सम्राट् की जय हो! परन्तु आचार्य ! सम्राट् का भार मुझपर न डालें ! आचार्य तिष्य के रहते और कौन सम्राट् को सन्मार्ग बताएगा ?

भगवान् तिष्य ने कहा—आचार्य ! आत्मा पर सदैव अज्ञान का आवरण रहता है और इस आवरण का भेदन करने के लिए एक रहस्यविद् की आवश्यकता है। आप ही वह रहस्यविद् हैं। आचार्य ! अपने शिष्य का कल्याण-चिन्तन कीजिए—मेरा कार्य समाप्त हुआ।—यह कहकर मोगली-पुत्र तिष्य अन्तर्धान हुए। सम्राट् और उपगुप्त क्षणभर विमूढ़ रहे। अब आचार्य उपगुप्त ने नेत्र उठाकर कहा—चक्रवर्ती, भीतर कुटी में पधारकर कृतार्थ करे।

दोनो महान् आत्माएं कुटी में प्रविष्ट हुईं।

सध्या का समय था। सम्राट् वाटिका में धीरे-धीरे गम्भीर मुख-मुद्रा किए टहल रहे थे। समस्त भारत के चक्रवर्ती सम्राट् के सम्मुख ऐसी गहन समस्या न आई थी। उनका चिन्तनीय विषय था कलिंगराज का दुर्धर्ष अपघात। वे सोच रहे थे, मैंने एक हरे-भरे सुखी राज्य का अकारण विध्वस किया। कलिंगराज न जाने कहां कैसे मारे गए। उनके युवराज बन्दी होकर आ रहे हैं। उनका परिवार न जाने किस दुर्दशा मे है। कैसे मै इस पातक से उऋण होऊंगा।

सम्राट् के ज्ञान-चक्षु खुल गए थे और उन्हे महान् दया-धर्म का तत्त्व प्रकट हो गया था। वे सोच रहे थे कि किस प्रकार इस दुष्कर्म का प्रतिशोध किया जाए।

हठात् एक दण्डधर ने निकट आकर अभिनन्दन करके कहा—देव, कलिंग-राजकुमार को लेकर महानायक आए है।

अशोक ने उत्फुल्ल होकर कहा—उन्हे अभी यहां ले आओ।—क्षणभर ही मे कलिंग राजकुमार को लेकर महानायक ने सम्राट् का अभिवादन करके राजकुमार से कहा—कुमार ! सम्राट् का अभिवादन करो।

कुमार ने हसकर कहा—महानायक, आपकी आज्ञा की आवश्यकता नहीं। आपके सौजन्य के लिए, जो आपने मार्ग-भर मे मुझपर किया, मैं आभारी हूं। अब मैं, सम्राट् के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, स्वयं सोच-समझ लूगा। आप सम्राट् की आज्ञा लेकर जा सकते हैं।

महानायक ने विमूढ होकर राजकुमार के इस प्रगल्भ भाषण को सुना। वह खडा रह गया। सम्राट् भी चकित हुए। उन्होने दृष्टि गाड़कर राजकुमार की मुख-मुद्रा देखी।

कुमार ने एक कटाक्षपात करके मुख नीचा कर लिया और कहा—सम्राट्, महानायक को आज्ञा प्रदान करे तो मैं सम्राट् का अभिवादन करू।

सम्राट् ने महानायक को जाने का सकेत किया और कुमार के निकट आकर कहा—कलिंग-राजकुमार! अभिनन्दन की आवश्यकता नही। मैने तुम्हारे राज्य और परिवार के साथ बडा अन्याय और अत्याचार किया है। मैंने तुम्हे इसलिए बुलाया है कि अब तुम्हारे पूज्य पिता का पता लगाना कठिन है। राजकुमार, तुम चाहो तो मुझे उस अपराध का दण्ड दो। परन्तु मै चाहता हू कि तुम मुझे अपना शत्रु न समझो। प्रिय राजकुमार! क्या मेरा अनुरोध रखोगे?—छद्मवेशी राज-कुमार कण्टकित होकर दो कदम पीछे हट गए। उन्होने धरती पर घुटने टेककर सम्राट् का अभिवादन किया और कहा—चक्रवर्ती की जय हो। राजा राजाओं से युद्ध करते है, जय-विजय एक पक्ष की होती है। सम्राट् को विजित राज्य के बन्दी राजपुत्र के प्रति इतने शिष्टाचार की आवश्यकता नही।

"नही राजकुमार! अकारण ही मैने उस समृद्धिशाली राज्य को भ्रष्ट किया और अब अकारण ही कुमार! तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में अपूर्व प्रेम उमड रहा है—यह क्या बात है? अच्छा अपना हाथ तो मुझे दो प्रिय।" परमप्रिय कुमार ने पीछे हटकर कहा—नही श्रीमान्! यह सेवक इस सम्मान के योग्य नहीं। श्रीमान् को भी शत्रु-पुत्र का इतना सत्कार करना उचित नहीं।

"शत्रु-पुत्र नही, कुमार! मैने निश्चय किया है कि मैं तुम्हारे पिता का राज्य तुम्हे युद्ध-क्षति सहित लौटा दूगा, इसके सिवा और भी जो मांगोगे, मैं दूगा।"

"सम्राट् क्या सत्य ही प्रतिज्ञाबद्ध होते है?"

"हां-हा प्रिय कुमार! मै वचन देता हू।"

"सम्राट्, मुझे मेरी मागी वस्तु देगे?"

"अवश्य! चाहे वह सिंहासन ही क्यो न हो!"

"सिंहासन तक ही, बस?" छद्मी कुमार ने कटाक्षपात किया।

"प्राण भी, शरीर भी। प्यारे कुमार! तुम्हारी चितवन कितनी प्यारी है! लाओ, अपना हाथ तो दो।"

"तब आपके प्राण और शरीर मेरे हुए ? श्रीमान्, फिर विचार लें। यह तुच्छ हाथ उपस्थित है।"

सम्राट् उसे पकड़ने के लिए लपके। आचार्य उपगुप्त ने उच्च स्वर से पुकार-कर कहा, "चक्रवर्ती ! तनिक धैर्य !" चक्रवर्ती ने देखा : आचार्य दो व्यक्तियो के साथ आ रहे है। दोनों व्यक्ति दूर खड़े रह गए। आचार्य आगे बढे। सम्राट् ने आगे बढकर आचार्य के चरणो में प्रणाम करके कहा—आचार्य ! कलिंग-राज-कुमार जितेन्द्र उपस्थित है। मैने इन्हे उनका राज्य और युद्ध-क्षति दे दी है, अपना शरीर और प्राण भी दिया। ये इनके स्वामी है। कुमार ! आचार्य को प्रणाम करो !

छद्मवेशी कुमार आगे बढ़कर आखे फाड़-फाडकर आचार्य उपगुप्त की ओर देखने लगे। आचार्य ने आगे बढ़कर कुमार के मस्तक पर हाथ धरकर कहा—कल्याण ! कल्याण !

छद्मवेशी राजकुमार के होठ फडककर रह गए। उसके मुख से अस्पष्ट स्वर में निकला—श्रेष्ठि···व···र !—आचार्य ने सम्राट् के निकट पहुचकर मधुर मुस्कान के साथ कहा—चक्रवर्ती ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता से अपना प्राण और शरीर सुपात्र को दिया। हा, अब आप उस पवित्र हाथ का ग्रहण करिए !—इतना कहकर आचार्य ने सम्राट् का हाथ पकड लिया।

सम्राट् चकित हुए। कुमार का मुख लाल हो गया। वे दो कदम पीछे हट गए। आचार्य ने कहा—कलिग-महाराजकुमारी शैला ! तुमने स्वय ही यह क्रय-विक्रय किया है, अब संकोच क्यो ?

सम्राट् के मुख से निकल गया—क्या कहा ? कलिंग-महाराजकुमारी शैला देवी ! आचार्य, आप क्या कहते है।

आचार्य ने उधर ध्यान न देकर कहा—महाराजकुमारी, अब अपना छलवेश त्याग दीजिए और तनिक निकट आइए !—इतना कहकर उन्होने कुमारी का हाथ सम्राट् के हाथों में पकड़ा दिया।

दोनो का हृदय-स्पन्दन क्षणभर को रुक गया। कुछ शान्त होने पर सम्राट् ने कहा—आचार्य ! कुकर्म का यह सुफल क्यो ?

आचार्य ने कहा—सम्राट् ! यह सुकर्म का फल है। देखिए, वह कलिंगराज और महाराजकुमार खड़े हैं, उनका स्वागत कीजिए।

सम्राट् दौडकर कलिगराज के पैरो मे झुके। कलिक महाराज महेन्द्र ने उठाकर उन्हे छाती से लगा लिया। दोनों महानृपति तन-मन से एक हो गए। इसके बाद आचार्य ने कुमारी के त्याग और साहस का सारा विवरण कह सुनाया। पिता ने पुत्री को छाती से लगाया और अपने हाथ से उसे सम्राट् के हाथो सौपकर कहा—सम्राट् ! यद्यपि आप इसे भी मेरे देने से पूर्व ही ले चुके, परन्तु फिर भी मेरे हाथ से एक बार ग्रहण कीजिए।

सम्राट् ने नतमस्तक होकर कुमारी का पाणिग्रहण किया। साम्राज्य भर में आनन्दोत्सव की धूम हो गई। कलिगराज वनवासी हुए और महाराजकुमार जितेन्द्र कलिग की गद्दी पर विराजित हुए।

# बर्मा रोड

द्वितीय महायुद्ध में अद्‌भुत कारनामे किए गए। उसीमें बर्मा रोड का निर्माण भी एक अदम्य साहस और लगन की कहानी है। लेखक ने उसीकी एक झांकी इसमें प्रकट की है।

सिंगापुर का पतन हो चुका था और बर्मा पर जापानी फौजें छा गई थी। अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी सेना को जापानियो के मुह में डाल बर्मा से भाग खड़े हुए थे। जापानियों ने हिन्दुस्तानी सिपाहियो को कैद न कर कूटनीति का परिचय दिया था। उन्होने उनकी प्रथम आज़ाद सेना जनरल मोहनसिंह की कमान में खड़ी कर दी थी। उसकी योजना यह थी कि अब भारत के मुख पर जो विकट युद्ध होनेवाला था, उसमे इन हिन्दुस्तानियो को देशभक्ति का जुनून चढ़ाकर झोक दिया जाए— और पीछे से मारकर भारत पर जापान का सूर्यमुखी झण्डा फहरा दिया जाए। इम्फाल के विकट वन, दुर्गम घाटिया और दुर्दम्य नद युद्धस्थलियां बने हुए थे— इसी स्थान पर यूरोप और एशिया के भाग्यो के फैसले होने वाले थे। अंग्रेज़ और अमेरिकन सेनाओ के दल-बादल आसाम पर छाए हुए थे। अनगिनत युद्ध-सामग्री मनीपुर के नाको पर एकत्रित थी। तोपो की गड़गड़ाहट, बमों की धुआधार और मशीनगनो की मार से वन-पर्वत कम्पायमान हो रहे थे।

भारत-बर्मा राजपथ बनना अत्यन्त आवश्यक था। बिना ऐसा हुए बर्मा का उद्धार तथा भारत का बचाव सम्भव न था। अंग्रेज़ो की जो सेनाएं इन जगलो में छिपी थी, वे बेसरो-सामान जापानियो का शिकार हो रही थी। यह एंग्लो-अमेरिकन सैनिक-समूह के जीवन-मरण का प्रश्न था। विश्व की राजनीति केवल भारत-बर्मा रोड पर आ अटकी थी।

फील्डमार्शल जनरल···ने लेफ्टिनेंट जनरल वुड को इस फ्रण्ट पर तैनात करते हुए हुक्म दिया था कि प्रत्येक मूल्य पर भारत-बर्मा रोड तैयार होनी ही चाहिएं। लेफ्टिनेंट जनरल वुड ने इस कठिन अभियान को स्वीकार किया था। पर यहा

आकर विकट परिस्थिति देख उनके भी छक्के छूट गए। जापानी बमबाज़ो ने सड़क के धुर्रे उडा दिए थे। वे चील की भाति सड़क पर मंडराते और फडाफड़ बम गिराते रहते थे। इन बमों से जो गढे सड़क में हो गए थे—वे गढ़े न थे, कुए थे। बड़े से बड़ा साहसिक सैनिक भी उधर कदम रखना मौत के मुह में जाना समझता था। कोई भी ठेकेदार इस काम मे सहायता करने को तैयार न था। पहाड़ी असभ्य नागा लोगो की मार शत्रुओं से भी विकट थी। वे अवसर पाते ही मानो धरती फोड़कर निकल आते और खाने-पीने का तथा अन्य सब सामान लूटपाट जैसे धरती ही मे समा जाते थे।

जनरल वुड बड़े जीवट के आदमी थे। मिस्र और एलेग्ज़ेण्ड्रिया के मोर्चो पर इन्होने बड़ी-बड़ी विजयें प्राप्त की थी। कठिन से कठिन परिस्थिति मे भी वे घबराने वाले न थे। बर्मा फ्रण्ट पर आते ही उन्होने परिस्थिति का ठीक-ठीक अध्ययन किया। एक दिन वे घूमते हुए सन्ध्या समय आसाम के पुलिस कमिश्नर सर वाल्टर के बगले पर जा धमके। प्रधान सेनापति को इस प्रकार एकाएक अपने घर आया देख पुलिस कमिश्नर अवाक् रह गए। उन्होने साधारण शिष्टाचार के बाद उनसे कहा—कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हू ?

जनरल वुड ने कहा—आपको तकलीफ देने ही मैं आया हू। मैंने सुना है, इस इलाके के डाकू बड़े ज़बर्दस्त हैं; उनसे बड़े-बड़े अफसर थर्राते है—वे बड़े जीवट के पुरुष होते हैं।

"ओह, उनका क्या ! वे पहाड के चूहे है, न जाने कहां से धरती फोड़कर निकल आते है और फिर एकाएक वहीं समा जाते हैं। जितनी पुलिस-सेना उन्हे पकड़ने भेजी गई, लौटकर नही आई।"

"क्या आप बता सकते है कि इन डाकुओ का सरगना कौन है ?"

"क्यो नहीं ? उसका नाम जंगबहादुर है। वह चालीस साल का अधेड़ आदमी है। पर उसकी एक-एक नस लोहे की बनी है। उसके सिर का मोल चालीस हज़ार रुपया है।"

"क्या उसके खिलाफ कोई संगीन जुर्म है ?"

"एक जुर्म है ? खून, डाके, कत्ल के दर्जनों मुकदमे उसके विरुद्ध हैं। उसके हज़ारों साथी सारे पार्वत्य प्रदेश मे फैले हुए हैं। कोई सरकारी रसद, खज़ाना

तो वह कोई हकीकत ही नहीं समझता।"

"लेकिन क्या आप यह जानते है कि वह रहता कहां है ?"

"यह तो कोई नही जानता। वह सब जगह है और कही भी नही है।"

जनरल वुड हस पडे। उन्होने कहा—गोया वह खुदावन्द करीम है।

सर वाल्टर भी हस पडे, बोले—ऐसा भी कहा जाए तो अत्युक्ति नही।

"पर मुझे उससे काम है। मै उससे मिलना चाहता हूं।"

"यह तो एक प्रकार से असम्भव है।"

"उसे तो आप किसी तरह सम्भव बनाइए।"

बहुत सोचने के बाद सर वाल्टर ने कहा—एक रास्ता है।

"कहिए।"

"उसके दल के एक आदमी को हाल ही में फांसी की सज़ा हुई है। व एक भारी डाकू था और बड़ी खून-खराबी के बाद पकड़ा गया था। उसके खि भी बहुत मुकदमे थे। यदि अभी तक उसे फासी न हुई हो और आप उससे उगलवा सके तो यह आपके बूते की बात है। हमे तो उसने एक शब्द भी बताया।"

"उसे कब फासी होनेवाली थी ?"

"यह मुझे याद नही है। परन्तु आप जेल से इसका पता पा सकते है।"

"धन्यवाद सर वाल्टर, मैने आपका काफी समय लिया।"

जनरल वुड हाथ मिलाकर वहा से चल दिए। जेल को फोन करने पर हुआ कि उसे कल प्रात.काल फांसी पर लटकाया जानेवाला है। पर जन व्याघात करके उसकी फांसी अनिश्चित काल के लिए मुल्तवी करा दी। फिर उ फोन पर गवर्नर से बात करके उसका माफीनामा तुरन्त मगवा लिया। माफी जेब मे डालकर वे जेल मे उस डाकू के पास मिलने गए। जेलर को माफी दिखाया और कहा—उसे मैं अपने साथ ले जाऊगा। पर आप उससे कुछ कहिए। मुझे उसके सेल मे भेज दीजिए।

सेल मे जाकर देखा—एक तरुण गठीले शरीर का गौरवर्ण पुरुष कम्बल चुपचाप पड़ा है। जेलर से उसका नाम उन्होने जान लिया था। नाम था स

वह आसाम का मुसलमान था। जनरल ने सेल का द्वार खुलवाकर भीतर प्रवेश करते हुए कहा—गुड मार्निंग मिस्टर सफदर। कैसे हो?—मिलाने को हाथ बढ़ाया।

"खूब अच्छा हूं।" सफदर ने हाथ मिलाते हुए हसकर कहा, "आजकल चाय, टोस्ट, गोश्त सब मिलता है। ये साले जेलवाले समझते है फांसी का पछी कै घड़ी का। खूब खिलाते-पिलाते है मेरे बेटे, शायद इसलिए कि उसकी गर्दन खूब मोटी हो जाए जिससे फांसी का फन्दा ढीला न पड़ जाए।" इतना कहकर सफदर खूब हसा। जनरल भी ज़ोर से हस पड़े। वे उसके कम्बल पर बैठ गए।

एक उच्चकोटि के अग्रेज़ अफसर की ऐसी आत्मीयता देखकर सफदर आश्चर्य-चकित रह गया। उसने कहा—आप कौन है, यह मैं नही जानता, मगर आपका खुश अखलाक देखकर मैं हैरान हू। आपके तमगे और फीतो से आप कोई फौजी अफसर मालूम होते हैं। मगर जो हों, कहिए मैं आपकी क्या खिदमत बजा ला सकता हूं?

"यह बात तो फुर्सत मे होगी मिस्टर सफदर, अभी तुम मेरे साथ चलो।"

"कहा?"

"मेरे बगले पर।"

"यह कैसे हो सकता है? मैं तो फांसी पाया हुआ कैदी हूं।"

"तुम्हारे जैसे बहादुर आदमी को मैं फासी पर लटकते नही देख सकता। मैं जनरल वुड बर्मा मोर्चे का मार्शल हू। मैंने गवर्नर से सिफारिश करके तुम्हे माफी दिलवाई है। तुम आज़ाद हो।"

सफदर के मुंह से बात नही निकली। वह टुकुर-टुकुर साहब के मुख की ओर देखने लगा।

साहब ने माफी का परवाना निकालकर उसके हाथ में दे दिया। इसे देखकर उसने कहा—साहब, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। यदि मैं सपना नहीं देख रहा, तो कहिए इस अहसान का बदला मैं कैसे चुका सकता हूं?

"एक चीज़ देकर।"

"वह क्या?"

"दोस्ती। तुम आज से हमको अपना दोस्त, जिगरी दोस्त स्वीकार करो।"

सदा के लापरवाह, उद्दण्ड और दुर्दान्त खूनी डाकू की आखों में पानी भर

आया। उसने चुपचाप अपना हाथ साहब की ओर बढ़ा दिया। उसने कहा—साहब, आपका मतलब चाहे जो कुछ हो, पर आज से यह सफदर तब तक फर्माबरदार गुलाम रहेगा, जब तक इसके जिस्म मे एक बूद खून भी गर्म रहेगा।—उसने साहब का हाथ झुककर चूम लिया।

दोनो उठे और कालकोठरी से बाहर आए। लोग देख रहे थे कि इतना बड़ा जनरल एक खूनी डाकू के साथ अकारण ऐसा उपकार करके भी बराबरी के मित्र की भाति हंसता-बोलता चला जा रहा है।

यह अग्रेज चरित्र का एक नमूना था जिसे समझने की सामर्थ्य किसी हिन्दुस्तानी मे नही है।

बगले पर आकर जनरल ने सफदर को स्नान-क्षौर करा पोशाक पहनाई। फिर अपने हाथ से उन्होने उसको कर्नल का फीता और तमगा लगाया और हाथ मिलाकर कहा—कर्नल सफदर, मैं तुम्हे एक हफ्ते की छुट्टी देता हूं। तुम घर के लोगो से मिलकर ठीक वक्त पर अपनी ड्यूटी पर हाजिर हो। तुम एक बहादुर आदमी हो। अपनी जिन्दगी मे तुमने अपनी बहादुरी ऐसे कामो में सर्फ की है कि जिससे नेकनामी नही मिली। खुदा का शुक्र मनाओ कि तुम फांसी के तख्ते से उतर आए और अब एक इज्जतदार फौजी अफसर हो। वचन दो कि तुम इस तमगे की बेइज्जती न करोगे और तुम्हारे लिए मुझे कभी शर्मिन्दा न होना पड़ेगा।

सफदर ने फौजी सलाम किया और कहा—सर, जिस दिन सफदर अपने फर्ज से गिरेगा, उसी दिन उसकी मौत हो जाएगी। लेकिन आप क्या मुझसे इन छुट्टियो मे कोई खिदमत नही लेना चाहते?

"नही कर्नल, मैं चाहता हू कि तुम ये दिन अपने बाल-बच्चो में खुशी से बिताओ। वे इस वक्त परेशान होगे। फिर भी तुम एक काम कर सकते हो···"

"हुक्म दीजिए।"

"मै तुम्हारे पुराने सरदार जगबहादुर से एक बार मिलना चाहता हूं। क्या तुम उसे मेरे पास ला सकते हो?" सफदर चौका। उसने कहा, "यह शायद मुश्किल होगा, मगर मैं कोशिश करूंगा।"

"जरूर करो, और इस काम को निहायत जरूरी समझो। इस बात के कहने की जरूरत नही है कि उसे मेरे पास आने में कोई डर नही है।"

"यह मैं समझ गया सर।"

सफदर चला गया। और ठीक आठवें दिन बहुत-से फल-फूल लाकर उसने जनरल के पैरो मे रख दिए। फिर उसने फौजी सलाम किया और अदब से खड़ा हो गया।

साहब ने कहा—कर्नल, तुम्हारा सब बाल-बच्चा खुश है?

"हुजूर की बदौलत, सर।"

"अच्छा, तो मेरा काम याद रहा?"

"सरदार हाजिर है सर।"

"कहा? उन्हे अभी लाओ।"

सफदर ने डाकू सरदार जगबहादुर को उपस्थित किया। ठिगना कद, छोटी-छोटी तेज आंखें, मोटी गर्दन, खिचड़ी बाल, कठोर रेखाओं से भरपूर चेहरा, सशकित दृष्टि, सावधान चाल।

चुपचाप जगबहादुर साहब के सामने आ खडा हुआ। साहब ने खडे होकर हाथ मिलाया और कुर्सी की ओर बैठने का सकेत किया।

"आपने सफदर की जान बख्श दी है साहब, कहिए मै आपकी क्या खिदमत बजा लाऊ?"

"मगर मैने तो आपको एक खुशखबरी देने बुलाया है सरदार।"

"साहब, आपने मेरे सफदर को फासी के तख्ते से उतारकर मेरी गोद मे डाल दिया। यह मेरा बहादुर बेटा है। इतना ही नही, उसे एक इज्जतदार बना दिया, यह खुशखबरी क्या कम है?"

"उस बात को छोडिए सरदार। गवर्नमेंट ने आपके खिलाफ जितने मुकदमात थे, सब उठा लिए है, आपको राजा बहादुर का खिताब दिया है, और आपको यह सब पहाड़ी इलाका जागीर मे बख्श दिया है। यह आपकी सनद है, राजा बहादुर।"

डाकू सरदार पागल की भाति जनरल का मुह ताकने लगा। उसने कहा—आप कौन हैं साहब, और ये इतने बड़े-बड़े अहसान बिना जाने-बूझे किसलिए कर रहे हैं?

"मैं एक सिपाही हूं राजा बहादुर, और बहादुरी का कद्रदान हू। जिस देश के बहादुरो को अपने खून की गर्मी दिखाने के मौके नहीं मिलते, वे इसी तरह डाकू बनकर जंगलों मे मुंह छिपाते फिरते हैं या फांसी पाते है। मगर मै एक ऐसा

उदाहरण पेश करना चाहता हूं कि आपके और सफदर जैसे जबर्दस्त जीवट के बहादुरो को बाइज्जत अपनी बहादुरी काम मे लाते और दुनिया की नजरो मे नेकनाम होते देखू ।"

"तो साहेब, राजा बहादुर तो हमने देखे है, वे बडे पोच, दब्बू और मुर्दार होते है । उनका तो हमारी फटकार से ही दम निकल जाता है, गोली खर्च करने की तो ज़रूरत ही नही पडती ।"

जनरल ने हसकर कहा—अब राजा बहादुरो के रजिस्टर मे यह नया रेकार्ड दर्ज होता है कि इस इलाके में सबसे बड़ा बहादुर इस रुतबे को सरफराज़ कर रहा है ।

सरदार ने कहा—साहेब, आप जानते है कि हम लोगो की आदते गन्दी हो गई है, आम तौर पर हम जंगली, असभ्य और दया-मायाहीन जानवर है । हमारे संगी-साथी सब ऐसे ही है । न तो हमसे घर बैठकर चुपचाप हराम की कमाई खाई जा सकती है, न हाथ ही ऐसे है कि हल-फावडा चलाए ।

"तब आप चाहे तो सरकार आपको ऐसा काम दे सकती है कि जिसमे आपके सब आदमी लगे रह सकते है और आप लाखो-करोडो रुपये कमा सकते है । मगर वह बहुत कडी मेहनत और हिम्मत का काम है ।"

"यदि ऐसा है, तो मै उसे जरूर करूगा ।"

"तब ये कागजात है । इनपर दस्तखत कीजिए ।"

"ये कैसे कागजात है ?"

"आप जानते है, सरकार 'भारत-बर्मा रोड' बना रही है । जापानियों से बर्मा को और वहा घिरे हुए लाखो आदमियो के जान-माल को बचाने का सवाल है । पर यह काम मामूली ठेकेदारो के बूते का नही है । सरकार आपको उस सडक के बनाने का ठेका देती है । अब यह देखना है कि आप कितने रुपयो का ढेर कमा सकते हैं ।"

"यह आप देख लेना । आप कब तक यह सड़क तैयार चाहते है ?"

"ज्यादा से ज्यादा छह माह मे ।"

"अजी चार माह मे सडक तैयार हो जाएगी । इसे बनाने मे जो सबसे बडी रुकावट थी, वह तो आज आपके सामने है ।" सरदार ने हसकर कहा ।

कागजात पर दस्तखत हो गए, और वह दुर्दान्त, खूनी, इश्तहारी डाकू ठेकेदार

और राजा बहादुर होकर प्रतिदिन जनरल के बंगले से निकलता।

चार माह बाद। युद्ध-सामग्री, रसद और सैनिको से भरी हजारो लारियां, सैकडो टैंक और दस्ते के दस्ते सफ बाधे रात-दिन बर्मा की ओर अग्रसर हो रहे थे। लेफ्टिनेण्ट जनरल वुड ने सरकार की सबसे बडी कठिनाई हल कर दी थी और भारत सरकार ने इसके लिए जनरल वुड को धन्यवाद का पत्र लिखकर आभार माना था।

# लाल पानी

यह कहानी १५वीं शताब्दी के काठियावाड़ के सामन्ती युग के राजाओं के परस्पर घृणा, द्वेष विश्वासघात और एक पेशेवर डाकू के परम उत्सर्ग की ऐतिहासिक कहानी है—जो हड्डियों को ठण्डा कर देती है।

यह घटना अब से कोई पाच सौ बरस पूर्व घटित हुई थी। ठीक-ठीक तारीख बताना तो सम्भव नही है, परन्तु ई० सन् १४७० और १५०० के बीच यह घटना घटित हुई। उन दिनों काठियावाड़ के कच्छ प्रान्त मे अनेक छोटे-बड़े राजा, भायात और गिरासिए ठाकुर थे। एक गाव का ठाकुर भी बहुत हद तक स्वतन्त्र राजा की भाति रहता था। उसकी इच्छा और वचन ही कायदा-कानून होता। प्रत्येक बात का फैसला तलवार से होता था। वे दिन ही ऐसे थे।

कच्छ के अनेक राजाओ, भायातो और ठाकुरो मे दो राजा प्रमुख थे। एक लखियार वियरा के जाम भीमजी और दूसरे पत्थरगढ़ के जाम रावणसिंह। दोनो राजा रिश्ते में भाईबन्द थे। पर दोनो राज्यो की सीमाए मिली होने के कारण बात-बात में दोनो राज्यो में तलवार खिची रहा करती थी। रावणसिंह के पिता का नाम जाम लाखा था। बागड़ मे उनकी ससुराल थी। एक बार जब वे अपनी ससुराल से वापस लौट रहे थे तब राह में कुछ ठाकुरो ने पुराने बैर के कारण उन्हे घेरकर मार डाला। पिता के परलोकवासी होने पर रावणसिंह सिंहासनारूढ हुआ। उसने पिता की उत्तरक्रिया बड़ी धूमधाम से की। उस अवसर पर रावण-सिंह ने भारी यज्ञ किया। यज्ञ में आसपास से सब राजा, ठाकुर, भायात, गिरासिए आए। परन्तु वियरा के जाम भीमजी अपने बड़प्पन और बैर-भाव के विचार से नहीं आए। रावणसिंह के मन में यह काटा चुभ गया। पर वह कूटनीतिज्ञ, कुटिल और धूर्त युवक था। अपमान के घूट को पी गया। थोड़े दिन बाद जाम भीमजी का स्वर्गवास हो गया। तब रावणसिंह बड़ी ममता से उनकी उठावनी के अवसर

पर आया। और नये तरुण जाम हम्मीर से, जो भीमजी का पुत्र था, बड़े प्रेम और अधीनता से मिला। बहुत प्रेम और आदर प्रकट किया। अन्त मे जब विदाई का समय हुआ तब स्नेहसिक्त भाषा मे उसने कहा, "हमारे और आपके पूर्वजो ने राज्य के सीमा सम्बन्धी झगड़े-टटो मे फसकर और लडकर उभय पक्ष की बहुत हानि की है, इसलिए अब मै झगड़े वाले सब स्थान स्वेच्छा से छोड़कर आपके अर्पण करता हूं। और आपसे भी विनती करता हू कि आप आनन्द से लखियार वियरा में राज्य करें। और मुझे अपना चिर किंकर समझे। इसीमें उभय पक्ष की शोभा है।" रावणसिह के ये वचन सुनकर तरुण हम्मीर बहुत प्रसन्न हुआ और रावणसिह को सम्मान-मान देकर विदा किया। इसके बाद भी रावणसिह ने समय-समय पर बहुमूल्य भेट-सौगात भेजकर और विनय-पत्र लिखकर जाम हम्मीर के मन मे घर कर लिया और अच्छी मैत्री स्थापित कर ली।

लखियार वियरा आज भी कच्छ मे एक छोटा-सा गाव है, पर उन दिनो वह कच्छ की राजधानी थी। जाम हम्मीर ही तब कच्छ के धनी कहाते थे। और वियरा राजनगर के नाम से प्रसिद्ध था। वह एक समृद्ध नगर था।

जाम हम्मीर के पाच सन्तान थी। बडा पुत्र अलैयाजी था, परन्तु उसकी माता एक खवास रबायत थी, इससे हम्मीर ने दूसरे पुत्र खगारजी को युवराज बनाया था। खगारजी रानी के पेट से पैदा थे। अलैयाजी की सगी बहन कमाबाई थी। कच्छ में उसके रूप-यौवन की बड़ी चर्चा थी। खगारजी के दो सगे भाई और थे, सायबजी और नायबजी। इस प्रकार हम्मीर के एक पुत्र और एक पुत्री रबायत से, और तीन पुत्र रानी से थे।

खंगारजी को युवराज-पद दिया गया, इसका भारी उत्सव वियरा मे मनाया गया। सारा नगर और राजाप्रसाद सजाया गया। लच्छ के सभी राजा, भायात, ठाकुर, गिरासिए इस अवसर वियरा मे आए। राजधानी मे बहुत धूमधाम और चहल-पहल मच गई। इस अवसर पर जाम रावणसिंह भी बहुत-सी भेट-भलाई लेकर मुबारकबादी देने आया था। परन्तु गुप्त रूप से उसने एक षड्यत्र किया कि इसी अवसर पर गुजरात के सुलतान मुहम्मद बेगड़ा को वियरा पर चढा लाया। अभी हम्मीर जाम मेहमानों की आवभगत ही मे लगा था कि उसे सूचना मिली कि गुजराज का सुलतान मुहम्मद बेगड़ा बड़ी भारी सेना लेकर

वियरा पर आ धमका है। यह समाचार वज्रपात की भांति राजधानी मे फैल गया। जाम रावण ने बहुत चिन्ता और क्रोध प्रकट किया तथा हम्मीर को युद्ध में भिड जाने के लिए उकसाया। सुलतान मुहम्मद शाह वेगडा बडा विकराल पुरुष था। वह नित्य एक मन भोजन करता था। सौ केले, आध सेर शहद और बहुत-सी सटर-मटर चीज़े तो वह कलेवे मे ही खा जाता था। एक बडे बैल के सीग के समान उसकी मूछें थी। उसने अनेक युद्ध जीते थे। चापानेर और जूनागढ के दुर्जय दुर्ग जीतकर उसने बेगडा की उपाधि पाई थी। उसीने सिंध के सब सूमरा और सोढ़ा राजपूतों को मुसलमान बनाया था।

हम्मीर जाम ने अपने वृद्ध दीवान भूधरशाह से परामर्श कियाऔर उसीको बहुत-सी भेंट लेकर सुलतान के पास भेजा। भूधरशाह ने अपनी वचन-चातुरी से सुलतान को प्रसन्न कर लिया। और यह तय पाया कि यदि जाम हम्मीर अपनी पुत्री कमाबाई से सुलतान का विवाह कर दे तो वह बिना युद्ध किए लौट जाएगा और उसे और भी इलाके देगा। जाम हम्मीर ने निरुपाय यह शर्त स्वीकार की। धूम-धाम से राजपुत्री का सुलतान से विवाह हो गया और वह नई बेगम कमा-बाई, उसके भाई राजपुत्र अलैयाजी तथा बहुत-सा दान-दहेज, दास-दासी लेकर वापस गुजरात लौट गया।

इस मामले मे भी रावणसिह ने बहुत दौड-धूप और आत्मीयता प्रकट की। और जब इस विपत्ति से पार पाकर जान हम्मीर ने सब मेहमानो को विदा किया तथा जब जाम रावणसिह विदा होने लगा, तब उसने बहुत-बहुत प्रेम और अधी-नता प्रकट करके कहा कि आप एक बार राज-परिवार सहित मेरे गाव मे पधार-कर मेरे घर को पवित्र कीजिए और मुझे कृतकृत्य कीजिए। जाम हम्मीर ने कृत-ज्ञतापूर्वक रावण का यह निमन्त्रण स्वीकार किया।

छच्छरबूटा जाम हम्मीर का पुराना विश्वासी था। वह हम्मीर के पिता के समय का नौकर था। उसने हम्मीर को भी गोद खिलाया था और हम्मीर के पुत्रो को भी। यह वृद्ध सेवक भारी राजभक्त, बुद्धिमान और धर्मात्मा था। जाम रावण की दुरभिसन्धि को वह खूब जानता था। हम्मीर को उसने बहुत समझाया कि वह इस धूर्त रावण का निमत्रण स्वीकार न करे और बीमारी का बहाना करके इसे टाल दे। उसने स्पष्ट कहा कि जाम रावण के गांव में जाकर हममें से कोई

भी जीता न लौटेगा। परन्तु जाम हम्मीर ने उसकी बात हसी मे उडा दी। और जब उसने देखा कि राजा राजपुत्रो सहित दुश्मन के घर जाने को तैयार है, तब उसने भी उनके साथ ही जाने का निश्चय कर लिया। खतरे का पूरा सामना करने और काल के मुह मे जाने की उसने पूरी तैयारी की। उसने बेटो, पोतो और परिवार के बूढे-बडो को इकट्ठा करके गुप्त रूप से कहा कि मैं अपने धर्म के लिए राजा के साथ बैरी के घर जा रहा हू, जहा से हमारे जीता लौटने की बहुत कम सभावना है। सो तुम होशियार रहना और भीर पडने पर अपने धर्म को न छोडना और कदाचित् मै या राजा बैरी के घरसे जीते वापस न लौटे, तो तुम मौका पाकर बैरी से हमारे प्राणों का बदला लेना। इतना कहकर उसने भली भांति अपने को हथियारो से सज्जित किया, दो-दो तलवारें बांधी और साड़नी पर सवार हो राजा के साथ शत्रुपुरी को चला। जाम रावणसिह ने राजा हम्मीर की बडी भारी खातिर और सेवा की। सारे नगर को सजाया। बडे-बड़े नाच-रग, खेल-तमाशे और गाजे-बाजे का जुगाड़ किया। शाम को नाच-रग की महफिल जुड़ी। अवसर पाकर रावण ने हाथ जोडकर हम्मीर से कहा, "आप हमारे राजा हैं, और हम आपके सेवक। सेवा और राजनिष्ठा ही हमारा धर्म है। उसीका मैंने पालन किया है। सिहासन, राज्य, राजा, राज-परिवार और राज्याधिकारियों की एकनिष्ठा से सेवा करना मुझ अधीन का धर्म है। और हमारी सेवा प्रेम से स्वीकार करना आपका कर्तव्य है। आपके पधारने से हमारा कुल उज्ज्वल हुआ और हमारा घर पवित्र हुआ। अब रसोई रूखी-सूखी जैसी बन पडी है, तैयार है। कृपा कर आप महाराज और सब सरदार भोजनालय मे पधारिए।"

जाम रावणसिह ने हाथ जोड़कर इस प्रकार नम्रता से विनती की कि जिसे सुनकर जाम हम्मीर और सब सरदार हसते हुए और रावण की प्रशसा करते हुए उठकर भोजन के लिए अटाले की ओर चल दिए। रावणसिह ने गाव के बाहर एक विशाल मैदान मे डेरे-तम्बू और कनाते लगाकर काफी धूमधाम से हम्मीरजी का उतारा किया था। खाने-पीने और दूसरे मौज-मज़ा के प्रबन्ध भी वही थे। जाम हम्मीर को रावण और उसके सरदारों ने एक सुसज्जित तम्बू मे ले जाकर उत्तम आसन पर बैठाया। रावण भी एक आसन पर बैठा। दूसरे तम्बुओ में और सरदार बैठे। सेवकों ने सोने के थालों में विविध पकवान और भोज्य पदार्थ हम्मीर और

सेवक ने इस कठिन समय मे भी अपने मस्तिष्क का सतुलन नही खोया। वह वही धरती मे चुपचाप लेट गया और देखता रहा। झपाक से रावणसिह वहां आ पहुचा। जल्लादो के सरदार का नाम था चामुण्डराय। वह रावण का सेनापति था। रावण ने मोतियो की कीमती माला उसके गले मे डाल दी और कहा, "शाबाश बहादुर, तूने बड़ा काम किया। अब चढ़ी सवारी दौड़ जा, साप मर गया, पर साप के बच्चे अभी ज़िन्दा है। हम्मीर के दोनो राजकुमार पिजोड़ मे अजाजी के घर पर है, अभी मारते घोड़े जा और दोनो कुमारो को अपने बाप की सेवा करने के लिए यमलोक में भेज आ और समझ कि यह काम कर चुकने के साथ हीतेरे भाग्य का उदय हुआ।" चामुण्डराय ने यह सुनते ही अपने जल्लादो को हाक लगाई। वे सब चढी सवारी, खून से भरी हुई तलवारें हवा मे हिलाते हुए पिजोड़ गाव की तरफ दौड़ चले।

छच्छरबूटा ने सब सुना। सब देखा। उस अन्धकार मे वे स्वार्थान्ध खूनी उसे नही देख पाए। वह कीडे की भाति रेंगकर द्रुत गति से एक ओर को चल दिया तथा एकान्त होने पर उठकर उस स्थान की ओर दौड चला जहा उसने अपनी साड़नी जगल मे छुपाई हुई थी। वह साड़नी अत्यन्त द्रुतगामिनी थी। वह एक घड़ी मे चार गाव का रास्ता पार करती थी। बूटा साड़नी पर सवार हुआ और सांड़नी हवा मे तैरने लगी। उसे उन जल्लादो की नजर से भी अपने को बचाना था और पिंजोंड़ भी उनसे पहले पहुचना था। वह खेतों और नालो मे से रास्ता काटकर हत्यारो से पहले सही-सलामत पिजोड़ जा पहुचा। अब तक तीन पहर रात बीत चुकी थी। वह गाव की सूनी गलियों को पार कर सीधा अजाजी के महल के द्वार पर जा पहुचा। सूचना पाते ही अजाजी की रानी घबराकर जाग उठी। उसने तत्काल छच्छर को बुलाकर कुशल पूछी। छच्छर ने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा, "रानी मा, कुशल कैसी! महाराज तो उस पापी रावण के हाथ मारे गए, अब कुमारो का घात करने कुछ पल में हत्यारे यहा पहुच रहे हैं। आप अभी कुमारों को मेरे हवालें कीजिए। मेरी सांड़नी दमदार है। आपसे रोका जाए तो हत्यारों को रोकना, तब तक मै कुमारों को लेकर जितनी दूर सम्भव होगा, निकल जाऊंगा।" अजाजी भी जागकर आ गए। सब सुनकर उन्होने रानी से कहा, "रानी, समय कम और काम बहुत है जाओ, कुमारों को अभी ले आओ। फिर छच्छर

की ओर रुख करके बोले, "भाया, तेरे ही हाथ कच्छ के धनी की रक्षा का भार है, पर तू अब वियरा न जाना। सीधे अहमदाबाद सुलतान के पास जैसे बने दोनों कुमारो को ले जा।"

रानी दोनो कुमारो को ले आई। सुकुमार बालकों की आखें नीद से भरी थी। छच्छर ने कहा, "बापू, जब तक दम मे दम है, चूक न होगी।" उसने कमर से फेंट खोलकर राजकुमारो को अपनी पीठ पर कसा। साड़नी पर आसन जमाया और साडनी को अहमदाबाद की राह पर छोड़ दिया।

अजाजी और उनकी रानी आखो मे आसू भरे एकटक उस जाते हुए को देखते रहे। जब साडनी आखो से ओझल हो गई तब अजाजी ने सब सिपाहियों और पहरेदारो को ड्योढी से हटा दिया और बूढे सेवक हीरजी को ऊंच-नीच समझा, पौर पर बैठा, आप महल मे जा बैठे।

यह सब होते न होते जल्लाद भी घोडा दौड़ाते आ पहुचे। सब मिलाकर पच्चीस नरघाती थे। सबके आगे नगी तलवार हाथ मे लिए चामुण्डराय था। इन्हे देखकर हीरजी तलवार गोद में रख पैर फैलाकर पौर मे सो गया।

चामुण्डराय ने घोड़े से उतरकर हीरजी को ठोकर मारकर कहा, "उठ रे बूढ़े, अभी अजाजी को हमारी अवाई की खबर कर।" परन्तु ठोकर खाकर भी हीरजी नही उठा। करवट फेरकर बड़बडाता हुआ फिर सो गया।

चामुण्डराय ने उसे पकड़कर झंझोड़ डाला। गुस्से मे भरकर कहा, "उठ हरामखोर, अभी अजाजी को खबर कर।" अब बूढे हीरजी ने आखें खोली और देखकर कहा, "क्या तुम लोग डाकू हो? ठहरो, मैं अभी सिपाहियों को हाक लगाता हू।" उसने ज़ोर से सिपाहियों को हाक लगाई। चामुण्डराय ने अपना मुह उसके निकट ले जाकर कहा, "अरे बूढ़े, पहचानता नही? मैं जाम साहब का सेना-पति चामुण्डराय हूं।" बूढे हीरजी ने आखे फाड़कर चामुण्डराय की ओर देखा, फिर हसकर कहा, "पधारो, पधारो माई-बाप! मै तो डर गया कि धाड़ पड़ी। मज़े में तो हो? बैठो-बैठो।

"तू अजाजी को हमारी अवाई की खबर कर, राजकाज के लिए उनसे अभी मिलना ज़रूरी है।"

"तो आप विराजो तो सही अन्नदाता! घड़ी एक में मालिक जागते हैं, तब

तक अमल-पानी करो, मैं अभी बन्दोबस्त करता हूं।"

"अमल-पानी नहीं रे ! महाराज का हुक्म है, तू अभी खबर कर।"

बूढे हीरजी ने सिर पर पाग बाधते हुए कहा, "तो अभी इत्तला करता हूं।" वह पौर मे चला गया, और चामुण्डराय अधीर होकर पौर पर टहलता रहा।

कुछ काल और बीता। तब अजाजी बाहर आए। चामुण्डराय से भुजभर भेट की और नम्रता से कहा, "इस असमय मे सेनापति का पधारना किस मतलब से हुआ ?"

"मैं जाम साहब के हुक्म से आया हू।"

"मै जाम साहब का आज्ञाकारी दास हू। मेरे लिए महाराज का क्या हुक्म है ?"

"हमारे महाराज के यहा वियरा के जाम हम्मीर अतिथि रूप मे उपस्थित हैं। उनके दोनो राजकुमार आपके यहा है, उन्हे महाराज ने बुलाया है। आप उन्हे अभी हमारे हवाले कीजिए।"

"बड़े आनन्द की बात है। दोनो कुमार सो रहे है। आप रातोंरात चलकर आ रहे हैं। घोड़े भी थक गए है। कमर खोलिए। अमल-पानी कीजिए, रूखा-सूखा जो कुछ है स्वीकार कीजिए, तब तक कुमार भी जग जाएगे।" अजाजी ने अधीनता दिखाते हुए कहा।

चामुण्डराय यह जानकर कि शिकार कब्जे मे है, कुछ आश्वस्त हुआ। पर उसने कहा, "ठहर नही सकता अजाजी, महाराजाधिराज का हुक्म है कि कुवर साहबान को लेकर तुरन्त पीछे आओ। सो आप अभी दोनों कुमारो को ले आइए।"

"तो जैसी राजाज्ञा, मैं अभी राजकुमारो को भेजता हू।" यह कहकर अजाजी महलों में चले गए।

परन्तु बहुत समय बीत जाने पर भी राजकुमार नही आए। न कोई दास-दासी ही पौर पर आया। पूर्व मे सफेदी फैली, सूर्योदय हुआ। चामुण्डराय ने ज़ोर से चिल्लाना और पुकारना आरम्भ किया।

हीरजी ने आकर हसते हुए कहा, "अन्नदाता से हमारे स्वामी की भेंट हुई न ?"

"पर अजाजी कहां है ?"

"दांतुन-कुल्ला कर रहे हैं, माई-बाप।"

"अरे, उन्हे अभी यहां बुला ला।" चामुण्डराय ने अधीर होकर क्रोधित स्वर मे कहा।

"अभी लाया माई-बाप," कहकर हीरजी फिर पौर मे घुस गया। थोड़ी देर में दातुन हाथ मे लिए अजाजी बाहर आए। उन्होने आश्चर्य की मुद्रा में कहा, "अरे, राजकुवर अभी नही आए ? बड़ी खराब बात है। मैं तो राजकुमारों को जगाकर और बाहर भेजने को कहकर कुल्लादांतुन मे लग गया।" फिर उन्होने हीरजी की ओर मुख करके कहा, "जा, जा, रानी-महल में जाकर दोनो कुवारों को ले आ।" हीरजी भीतर चला गया। अजाजी वहीं बैठकर चामुण्डराय से गप्पें लड़ाने लगे। सूरज ऊपर उठ आया, धूप फैल गई। चामुण्डराय ने कहा, "बड़ी देर हो रही है, अजाजी !"

इसी समय हीरजी ने आकर कहा, "राजकुमार तो बहुत देर हुई, रानी-महल से आ गए !"

"अरे, तो वे है कहा ? तुम सब हरामखोर हो। रानीजी से पूछ कि राजकुमार कहां हैं, यहा तो अभी आए नही।"

हीरजी फिर भीतर चला गया। और कुछ देर बाद आकर उसने कहा, "सरकार, रानीजी पूजा में हैं।"

अब अजाजी गुस्से मे बकते-झकते और यह कहते कि मैं देखता हूं, फिर महल मे घुस गए।

आधा घंटा बीत गया। चामुण्डराय का रूप उग्र होने लगा। वह ज़ोर-ज़ोर से बकने लगा। इसी समय अजाजी ने आकर कहा, "बड़ी विचित्र बात है। राजकुमार महलो में नहीं हैं। उनके साथ वह दासी भी गायब है, जो उन्हे ला रही थी। पर वे गए कहां ?"

चामुण्डराय ने अब अपना असली रूप प्रकट किया। उसने ललकारकर कहा, "सिपाहियो, महल को घेर लो।" और अजाजी से कहा, "अजाजी, मैं महलों की तलाशी लूगा। आप राज-विद्रोह कर रहे हैं। सीधी तरह राजकुमारों को मेरे हवाले कर दीजिए, नही तो अच्छा न होगा। महाराज रावणसिंह महल को ढहाकर उसपर गधो से हल जुतवा देंगे।"

अजाजी ने कहा, "सेनापति, तुम सेनापति होने पर भी राज्य के चाकर हो, और हम भायात है। ऐसी बात करके तुम हमारा अपमान करते हो, इसका नतीजा

पीछे देखना। अभी तुम अच्छी तरह महल की तलाशी लो और देखो कि राज-विद्रोही कौन है !"

महल की राई-रत्ती तलाशी ली गई। राजकुमारो को न मिलना था, न मिले।

चामुण्डराय भूखे बाघ की तरह बफरने लगा। उसने अजाजी से कहा, "राजकुमारो को आपने जान-बूझकर भगा दिया है। निस्सदेह वे राजमहल मे नही है, परन्तु कोई चिन्ता नही, मैं उन्हे सात पाताल से पकड़ लाऊगा।" उसने सिपाहियों से कहा, "जाओ, देखो, इस गांव मे कोई पगी-खोजी है, यदि हो तो उसे पकड़ लाओ।"

गाव मे कोई खोजी न था, पर वहा से दो गावों के अन्तर पर एक प्रसिद्ध खोजी रहता था। चामुण्डराय ने उसे मगाया। खोजी ने आकर पैरो के चिह्न देख-जाचकर कहा, "अन्नदाता, चोर साड़नी पर सवार होकर भागा है।"

इस खोज-जाच में दो प्रहर काल बीत गया। और जब खोजी को आगे करके चामुण्डराय की खूनी टोली साड़नी के पग-चिह्न देखती आगे बढ़ रही थी, तब सूर्य ढलने लगा था।

जब चामुण्डराय की हत्यारी टोली पिजोड गाव की सीमा से चली गई तब अजाजी ने रानी से कहा, "यह विपत्ति तो टली, परन्तु बात गम्भीर है और कच्छ के धनी की रक्षा का प्रश्न है। यद्यपि छच्छरबूटा को भाग निकलने का यथेष्ट समय मिल गया है तथापि हमे राजकुमारो की ओर से निश्चिन्त न रहना चाहिए। यदि उनका कुछ अशुभ हो गया तो हमारे कुल को भी दाग लग जाएगा। चामुण्डराय खोजी को साथ लेकर गया है। आश्चर्य नही कि छच्छर को पकड़ ले। अकेला छच्छर क्या कर लेगा ! चामुण्डराय के साथ पच्चीस सिपाही है। वे और उनके घोड़े भी थके हुए हैं। इसलिए मैं अपने हथियारबन्द आदमियो को लेकर उनके पीछे जाता हू। व्यर्थ झगड़ा मै नही करूगा। पर कदाचित् राजकुमार इन हत्यारों के हाथ मे पड़ ही गए, तो मैं भी दो-दो हाथ दिखाकर या तो उनका उद्धार करूगा या वही खेत रहूगा।" इतना कह, रानी को समझा-बुझा, उसे बिलखती छोड़, पचास हथियारबन्द राजपूत सग ले अजाजी ने भी चामुण्डराय का अनुसरण किया।

छच्छरबूटा राजकुमारों को पीठ पर फेंट से कसे साड़नी पर सवार झपाझप

अहमदाबाद की राह पर दौडा जा रहा था। न उसे भूख-प्यास थी, न थकान। उसकी साडनी भी जैसे पर लगाकर उड रही थी। वह दिनभर भागा-भागा चलता चला गया। सन्ध्या होते-होते वह सापर गाव मे जा पहुचा। सापर मियानाओ का गाव था। मियाना लोग वास्तव मे कच्छ के मुसलमान और प्रसिद्ध चोर-डाकू थे। वे प्रकट मे खेती-बाड़ी करते और अवसर-कुअवसर मार-धाड का काम भी करते थे। उनका सगठन ऐसा प्रबल था कि राजा भी उनसे डरते थे। गाव के पटेल का नाम भिया था। गाव के बाहर कच्ची दीवारो पर छप्पर डालकर उसने अपनी मढैया बनाई थी मढ़ैया मे वह अपने परिवार और कुटुम्ब के साथ रहता था। मढैया के सामने उसके हरे-भरे खेत थे और मैदान मे घास की विशाल सात गजिया लगी थी।

छच्छर ने भिया की मढी के सामने आकर साड़नी रोकी: और भिया पटेल से सारी हकीकत कह सुनाई तथा राजकुमारो की शरण मांगी। भिया पटेल का शरीर स्थूल, मूछें सफेद और बडी-बड़ी थी। आयु उसकी साठ को पार कर गई थी। सब बात सुनकर भिया क्षणभर स्तब्ध खड़ा रहा और फिर उसने अपना कर्तव्य निर्णय किया। घास की एक गजी मे उसने जगह करके दोनो राजकुमारो को उसमे छिपा दिया। फिर वह एक घडे मे पानी और कुछ खाने का सामान लेकर छच्छरबूटा को निकट की पहाडी मे ले गया। वहा एक गुप्त गुफा मे छच्छर को छिपाकर, जल और आहार उसके निकट रख यह समझा दिया कि यहा तुझे कुछ भी भय नही है. तू यहा बैठ, समय पर और सूचना मैं तुझे दूगा। किन्तु साड़नी के अठारह अग बेडौल होते है, यह छिपाए छुपने वाली नही, इसलिए उसे उसके भाग्य पर जंगल मे छोड़। इसके लिए जगल मे चारा बहुत है। बात की उपयुक्तता को समझ छच्छरबूटा ने सांड़नी को तो पर्वत की घाटियो मे चरने को हाक दिया और आप गुफा मे छिपकर बैठ गया। छच्छर का सारा प्रबन्ध कर भिया अपनी मढैया मे आया। सब भाई-बन्दों को बुलाकर विचार-परामर्श कर, मन मे निश्चय ठान आनेवाली विपत्ति का सामना करने मुस्तैदी से आ बैठा।

रात-भर पग-चिह्न लेता हुआ चामुण्डराय भोर होते-होते मियानाओ के सापर गांव में आ पहुंचा। खोजी ने कहा, "बस, यही सांड़नी रुकी है।" चामुण्डराय ने भिया के झोपड़े के सामने आकर चारपाई पर सोते भिया मियाना को देख लल-

कारकर कहा, "अरे, उठ खडा हो। तेरी झोंपड़ी मे हमारे दो चोर है, उन्हें अभी हमारे हवाले कर, नही तो जान रख कि तेरे प्राण की खैर नही।"

भिया ने उठकर हाथ जोड़कर कहा, "अन्नदाता, कैसा चोर ! भला मै राजा के चोर को अपने घर मे छिपाकर मुफ्त में विपत्ति मोल लूगा। ऐसा नादान मैं नही हू। गरीबपरवर, मैं आपके चोर के सम्बन्ध में कुछ नही जानता।"

अभी भिया मियाना से चामुण्डराय की ये बातें हो ही रही थी कि खोजी साड़नी के पग-चिह्न लेता पर्वत की घाटी मे जा पहुचा और एक स्थान पर चरती साड़नी को पकड लाया। चामुण्डराय ने दरबारी वाहन तरीके की साड़नी को पहचानकर कहा, "इसी साड़नी पर हमारा चोर आया है। जब सांडनी यहा है तब चोर भी यही है।" उसने सब सिपाहियों को पर्वत पर राई-रत्ती खोज करने की आज्ञा दी। पर राजकुमारों का पता नही लगा। वे थक-थकाकर फिर भिया मियाना की मढी मे आ धमके। सब बातें सुनकर चामुण्डराय ने भिया से कहा, "पटेल, तेरे घर तक साड़नी आई है। यहां से उसे डूगर की तलहटी मे चरने तूने हांक दिया है। राजकुमार पर्वत पर नही हैं तो अवश्य तेरे घर में या गाव मे है। तू उन्हें जानता है। बहानेबाज़ी छोड और राजकुमारों को हमारे हवाले कर, नही तो तेरा सारा परिवार बुरी तरह मारा जाएगा। चोर को हमारे सुपुर्द करने से राजा तुझे इनाम में दस गाव देगा।"

भिया ने कहा, "गरीबनिवाज़, आप इस सारे गाव में आग लगाकर यहां के सब निवासियो को मरवा डालें, तो भी हमारा क्या बस है। पर मै अपराधी नही। साड़नी हमारे गांव में आई भी नही और मैंने राजकुमारों को देखा भी नही। आपको मेरा विश्वास नहीं है तो आप भले ही मेरे परिवार का वध कर डालिए। आप हमारे मालिक है।"

परन्तु चामुण्डराय इन बातों मे भूलने वाला न था। उसका पक्का विश्वास हो गया था कि राजकुमार यहीं हैं। उसने कहा, "ठीक है, पर राजकुमार यहीं हैं। तेरे घर मे नही है तो गांव मे कही तूने छुपाए है। इसलिए सारे गांव को आग लगाकर खाक करना होगा। इतना कहकर उसने सिपाहियो को आज्ञा दी कि गाव को चारो ओर से घेरकर उसमें आग लगा दो। बूढ़ा-बच्चा जो भी भाग जाने की चेष्टा करे उसे वही काट डालो, जिससे यह बूढ़ा पटेल देख ले कि राज-विद्रोह की सजा क्या है।" देखते ही देखते गाव आग से झुलस उठा। आग की प्रचण्ड लपटों ने

आकाश को लाल कर दिया। जलते-झुलसते-तड़पते स्त्री, बालक, वृद्ध और बेचारे जानवरों की आर्त पुकार से प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। गांव के सारे स्त्री, पुरुष, पशु आर्तनाद करते-करते जल मरे।

परन्तु भिया के मुखमंडल पर किसी प्रकार का शोक, उद्वेग या मलिनता न थी। उसके नेत्रो में एक दिव्य चमक आ रही थी। वह अचल पर्वत की भाति खड़ा था। देखते ही देखते उसके सगे-सम्बन्धी जलकर खाक हो गए।

पटेल की यह दृढ मुद्रा देखकर चामुण्डराय भी विचलित हो गया। उसने सोचा, गाव मे राजकुमार नही थे, परन्तु अब उन्हें कहां ढूंढ़ा जाए। इसी समय चामुण्डराय ने धूल का बादल उड़ता देखा। और कुछ ही क्षण मे एक घुड़सवार सेना साथ लिए स्वयं जाम रावणसिह वहा आ उपस्थित हुआ। सेना के सिपाहियों ने चारो ओर से पटेल की मढ़ैया को घेर लिया। घोड़ों ने खेत रोद डाले, सिपाहियो ने पशु खोल दिए, चीज़े नष्ट-भ्रष्ट कर दी। परन्तु भिया पटेल उसी भाति अटल-अचल खड़ा रहा। वैसी ही उसकी मुख-मुद्रा, वैसी ही आखो की चमक। भय-शंका से पाक-साफ।

चामुण्डराय ने सब हकीकत रावण को समझा दी। सब बात सुन-समझकर रावण की गृद्ध दृष्टि उन घास की गजियो पर पड़ी। उसने आज्ञा दी, "जैसे यह राज-विद्रोही गाव आग की भेंट हुआ है, उसी प्रकार एक-एक करके घास की इन गजियो मे भी आग लगा दो और इस कुएं और बावली को पत्थरो से पाट दो।"

सैनिक राजाज्ञा पालन करने आगे बढे। परन्तु इसी क्षण पटेल ने ललकारकर कहा, "ठहरो!" और वह आगे बढकर जाम रावण के सम्मुख आया और राजा को प्रणाम कर कहा, "महाराजाधिराज, राजाज्ञा हुई सो ठीक, पर राजाज्ञा पालन करने से प्रथम मेरी प्रार्थना सुन ली जाए। आप श्री हाल ही में कच्छ के स्वामी बने हैं, अत: आपको आरम्भ में ही रैयत की हाय लेना शुभ नही होगा। आगे जैसी महाराज की मरज़ी। आपके अधिकारी ने बिना अपराध हमारा गाव जलाकर खाक कर डाला। बूढ़ो और बच्चों पर भी दया नही की। अब यहां मेरा इतना-सा परिवार बच रहा है। सो आप कुआ-बावली पत्थर से पाटकर हमारा पीने का पानी नष्ट करना चाहते हैं। हमारी घास की गजियो में आग लगाकर हमारे पशुओं को भूखों मारना चाहते है। सो आप खुशी से कीजिए। परन्तु इससे पहले

इस दास का सिर काट लीजिए और मेरे सब बाल-बच्चों को भी तलवार के घाट उतार दीजिए, जिससे हमे भूखो न मरना पड़े। परन्तु इससे पहले आप सब भियानाओ को कच्छ से बाहर निकाल दीजिए। इसीमे आपका भला है, क्योकि आज का यह जुल्म दुनिया की आखो से छिपा न रहेगा। और जब मेरे जात-भाई यह सुनेगे तब वे बलवा करेंगे, और आप जानते है कि उस बलवे को दबाने की ताकत आपकी सेना मे नही है। यह विचार लीजिए। यह मेरी प्रार्थना है।"

पटेल की अभय मुद्रा और शान्त वाणी सुनकर रावणसिह विचार मे पड़ गया। उसने कहा, "बुड्ढे, तेरी कोई सन्तान है ?"

बूढे पटेल ने कहा, "अन्नदाता, मेरे आठ पुत्र है।"

"तो उन सबको यहा बुला।" रावण ने आज्ञा दी। पटेल के आठों पुत्र हाथ बांधे राजा के सामने आ खड़े हुए। राजा ने खटाक से म्यान से तलवार निकालकर पटेल के सबसे बडे पुत्र की गरदन पर भरपूर वार किया। लडके का सिर धड से जुदा होकर धूल मे लोटने लगा। पुत्र का इस प्रकार अकल्पित रूप से घात होता देख पटेल की आखो के आसू सूख गए और उसकी आंखो मे वही चमक आ गई। वह पर्वत की भाति अचल खडा रहा।

राजा ने उसे लक्ष्य करके कहा, "यह है राजद्रोह का दण्ड। अभी समय है। तूने अवश्य घास की इन गजियो में राजकुमारों को छिपा रखा है। भलाई इसीमे है कि उन्हे निकालकर मुझे सौप दे और अपने परिवार को विनाश से बचा ले।"

पटेल ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा, "महाराज, यदि मेरे परिवार के भाग्य में इसी रीति से नष्ट होना बदा है तो मैं आपको दोष नही दूगा। राजपुत्र मेरे पास नहीं हैं।"

क्रोध में उबलकर रावणसिह ने भिया के दूसरे पुत्र का सिर धड़ से उडा दिया। पटेल की पुत्र-वधुए हाहाकार कर उठी और खूनी हत्यारे सिपाही भी भय से थर्रा उठे। पर राज्य-लोभान्ध रावणसिंह का कठोर हृदय न पसीजा। उसने पटेल को लक्ष्य कर कहा, "अब भी राजकुमारों को देगा कि नही ?"

पटेल ने आंखों से आग बरसाते हुए करारा जवाब दिया, "अरे राजा, जो तू मुझे अपना अपराधी मानता है तो मुझे मार डाल। निरपराध बालकों की हत्या से क्यो अपने कुल को कलंकित करता है।"

पटेल की बात पूरी भी न हुई थी कि जाम रावण ने पटेल के तीसरे पुत्र की छाती मे भाले की अणी भोंक उसे भाले पर अधर उठा लिया। बालक की छाती मे से खून की धारा बह चली और वह अधर मे तड़पने लगा। रावण ने लाश धरती पर पटक दी और बालक के गरम लहू की अजली भरकर पटेल के मुह पर दे मारी। पटेल की धौली मूछें लाल हो गईं। भिया की आखों मे अधेरा छा गया और उसका शरीर पीपल के पत्ते की भाति कापने लगा। यह देख पटेल की स्त्री घबराई। उसे शका हुई कि कही दु.ख से घबराकर पटेल राजकुमारो का भेद न बता दे जिससे हमारी सारी कमाई धूल मे मिल जाए और दुनिया मे हमारा मुह काला हो। वह झोपड़ी से निकलकर पटेल के पास आई। उसने उसके कान के पास मुंह लगाकर धीरे से कहा, "हिम्मत न हारना। हमारा जन्म तो कुत्ते का-सा है। मैं ज़िन्दा रही तो और पुत्र जनूगी। पर तुम इस समय मोह मे पडकर राजवश का नाश न करा बैठना। छाती को मजबूत रखना।"

पत्नी के वचन सुन पटेल ने आंसू पोछ डाले। वह तनकर राजा के सामने खड़ा हो गया। राजा ने एक-एक कर उसके चार और पुत्रो को भी तलवार के घाट उतार दिया। पटेल और उसकी स्त्री उसी भांति अचल-अटल खड़े रहे। उनकी मुख-मुद्रा से अथवा अग-चेष्टा से दु.ख का चिह्न नही प्रकट हो रहा था।

सारी धरती लहू से लाल हो गई थी। सात लाशे भूमि पर खण्ड-खण्ड पडी थी, जिनसे रह-रहकर गरम रक्त रिस रहा था। पटेल और उसकी पत्नी अचल पर्वत की भांति सामने खड़े थे। यह सब हृदय-विदारक दृश्य देख रावण के भायात शिवजी लुहाणा, जो उस समय रावणसिह के साथ था, का हृदय द्रवित हो उठा। उसने कहा, "महाराज, जिसकी आखो के आगे सात पुत्रो को बकरे के समान हलाल कर दिया गया, तो भी कुमारो के सम्बन्ध मे कोई सूचना नही दी, अब आप उससे और क्या आशा रखते है! मेरी तो विनती है कि अब इस पटेल और इसकी स्त्री को तथा एक पुत्र को प्राण-दान दीजिए। यदि इस समाचार को जानकर ये सब मियाना लोग बिगड बैठे तो आपको और चामुण्डराय को इस राज्य मे रहना दूभर हो जाएगा।"

पर रावण ने इस ठाकुर की बात सुनी-अनसुनी करके पटेल को लक्ष्य करके कहा, "जो अब भी तुझे जीवित रहने की इच्छा है, तो कुमारो का पता बता दे,

मैं तुझे भारी जागीरदार बना दूगा।"

परन्तु पटेल ने स्थिर शान्त कंठ से कहा, "मै कुछ नहीं कह सकता और जीवन का मुझे कुछ भी मोह नहीं है।"

पटेल का यह उत्तर सुनकर जाम रावण ने सिंह के समान गर्जना की। और शिवजी को सम्बोधन करके कहा, "शिवजी भाई, तुम हमारे अत्यन्त विश्वासपात्र शुभचिन्तक हो। मैं तुम्हीको इन गजियों में से राजकुमारो को ढूढ़ निकालने का काम सौपता हू। सहायता के लिए आदमी ले लो और यत्न से तलाश करो। तुम यदि राजकुमारो को खोज निकालने मे सफल हुए तो तुम्हारा मान-वैभव राज्य में अब से चौगुना हो जाएगा।"

"जैसी महाराज की आज्ञा।" शिवजी ने नम्रता से कहा।

शिवजी लुहाणा एक वीर राजपूत था और उसके मन मे रावणसिंह के इस क्रूर कर्म से उसके प्रति तिरस्कार का भाव उग आया था। उसने कुछ सिपाहियो को आज्ञा दी कि वे घास की गजियो को चूथ-चूथकर राजकुमारों की खोज करें।

परन्तु एक बूढे सिपाही ने कहा, "महाराज, इस प्रकार तो खोज-जांच में कई दिन लग जाएगे। गजियो को चारो ओर से भालों से छेदा जाए। यदि गंजी में राजकुमार छिपे होगे तो भाले की अणी उनके अगो में छिद जाएगी और जब लहू से भरी अणी बाहर निकलेगी तो उन्हे कैद कर लिया जाएगा।"

शिवजी ने कहा, "अच्छा, तो ऐसा ही करो।" यद्यपि उसने सिपाही के इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर लिया था, परन्तु उसका धर्मभीरु मन यह चाह रहा था कि राजकुमारो का पता न चले तो ही अच्छा है। उसके मन में यह भी भावना दृढ़ हो रही थी कि कदाचित् राजकुमार मिल भी गए तो उन्हें बचाने के लिए आवश्यकता होगी तो वह रावण का सामना करेगा।

ज्योंही सिपाहियों ने गजी में भाले भोकने आरम्भ किए, भिया मियाना की आंखो का तेज बुझ गया और उसकी आंखो से गगा-जमुना की धार बह चली। उसकी स्त्री भी आचल में मुंह छिपाकर रोने लगी। पर अब तो और कोई उपाय ही न था।

सब मिलाकर सत्रह गंजियां थी। सिपाही उनमें चारो ओर से भाले छेद-छेदकर देखने लगे। सोलह गजियां देख ली गईं, तब वे बीच की गंजी के निकट

आए। इस समय शिवजी भी इन सिपाहियो के साथ थे। सिपाही अब थक गए थे और उनके हाथ ढीले पड रहे थे। भिया मियाना मुह फाड़कर शिवजी की ओर ताकने लगा। शिवजी को सत्य बात समझने मे देर न लगी। उन्होने आगे बढकर सिपाहियो से कहा, "तुम सब हट जाओ और एक भाला हमे दो।" एक सिपाही ने भाला उन्हे थमा दिया और सलाम करके पीछे हट गया। शिवजी ने भाला गजी मे भोका। उसकी अणी युवराज खगार की जाघ मे घुसी और वह लहू से भरी निकली। शिवजी को अब निश्चय हो गया कि कुमार यही है। उसने तुरन्त निराशा का भाव प्रकट करते हुए भाले की अणी धरती मे भोक दी। लहू लगी अणी मिट्टी मे धस गई। शिवजी ने भिया पटेल से आखे मिलाई, आखो ही मे कुछ सकेत किया और रावण के सम्मुख जाकर कहा, "महाराज, इन गजियो मे राजकुमार नही है।"

यह सुनकर जाम रावण अत्यन्त निराश और क्षुब्ध हुआ। उसने कुए और बावली मे भी तलाश कराई। परन्तु कुमार नही मिले। कुछ लज्जा और पश्चात्ताप से उसने भिया पटेल को लक्ष्य करके कहा, "पटेल, राजाज्ञा के कारण तुझे आज भारी सकट झेलना पड़ा। पर जो होना था, वह हो गया। आज से सीमासहित यह गाव तुझे बख्शीश देता हू। और गाव में आग लगाई, लोगो की जान-माल की हानि हुई, उसका हरजाना राज्य से मिलेगा। हमारी आज्ञा है, तुम लोग फिर से घर-गाव बसाकर खुशी से रहो।"

भिया पटेल ने कहा, "महाराज, आपकी राज्य-प्राप्ति के शुभ क्षण मे मुझ सेवक को ऐसी बख्शीश मिल गई है कि जिसे पीढियो तक मेरे वश मे कोई नही भूल सकेगा। अब कृपा करके पटेल की यह पाग लीजिए और किसी दूसरे भाग्यवान के मस्तक पर सुशोभित कीजिए जिससे इस दीन दास को और उसके वश मे किसीको भविष्य मे ऐसी बख्शीश मिलने की सम्भावना न रहे।"

पटेल के इस भाषण से अप्रसन्न होकर रावण ने वह पाग पटेल से लेकर एक दूसरे मियाना के सिर पर रख दी और फिर बिना एक शब्द कहे अपने लश्कर-सहित वहां से चला गया।

जाम को दल-बल सहित वहां से जाता देख भिया मियाना ने खुदा का शुक्रिया

अदा किया। उसकी स्त्री ने कहा, "हमारे बच्चों का बलिदान सफल तो हुआ। बड़ी बात हुई।" फिर सभी बचे हुए मियाने एकत्र हुए और सलाह करने लगे। इस जुल्म का बदला कैसे लिया जाए। तब वृद्ध भिया ने कहा, "भाइयो, राजा से वैर का बदला राजा ही ले सकता है। हम तो रैयत है। बड़ी बात हुई कि हमारी आन रह गई। अब जैसे बने कुमारो को सही-सलामत यहा से रवाना करो।"

सध्या का अन्धकार बढने पर भिया ने राजकुमारों को बाहर निकाला। दोनों राजकुमार अभी बालक ही थे, पर वे बहुत-कुछ अपनी विपत्ति और अपने जीवन-दाता के त्याग को समझ गए। उन्होने वृद्ध पटेल को अपना धर्म-पिता कहकर प्रणाम किया। पटेल और उसकी पत्नी ने दोनों राजकुमारो को छाती से लगाकर बहुत-बहुत आसू बहाए। छच्छरबूटा को टेकरी की गुफा से बुलाया गया। भिया मियाना पर जो बीती थी, उसे सुनकर उसने सिर धुन लिया। पर पटेल ने आसू पोछकर कहा, "सरदार, यह तो ससार का चक्र है। जो होना था, हुआ। चलो, अब राजकुमारो को सुरक्षित स्थान पर पहुचा दो।"

सवारी का कोई प्रबन्ध नही हो सकता था। परन्तु विलम्ब करना भी घातक था। छच्छरबूटा ने युवराज खगारजी को कधे पर उठा लिया और पटेल ने दूसरे राजकुमार को। और दोनो धीर-वीर वृद्ध लाठी टेकते अन्धकार मे खो गए।

# रूठी रानी

रूप और यौवन मे अपूर्व उस सुन्दर राजकुमारी का मान भी अडिग था। पिता के दुश्मन की अर्धांगिनी बनकर भी २७ वर्ष तक पति-प्रेम को ठुकराते हुए एक दिन सती हो गई ‥ ‥

अब से पौने चार सौ वर्ष पहले जैसलमेर के रावल लूनकरण को एक पुत्री का जन्म हुआ। उसके जन्म लेने से राजपूताने मे हलचल मच गई। जैसलमेर की सुन्दरियां उन दिनो जगद्विख्यात थी, पर लूनकरण की यह बेटी उन सबमे अलौकिक थी। ज्यो-ज्यो वह शशिकला बढती गई, उसके सौदर्य की धूम मचती ही गई। देखते-देखते राजपूताने भर के राजाओ ने उसकी याचना की। सखियां सोचती थी—देखे, किस भाग्यवान् को यह अछूता पुष्प-लाभ होता है। कुमारी का नाम उमा था। सखिया बड़े-बडे राजकुमारो के रूप-गुण का बखान कर उसके मन की थाह लेती थी, पर वह अपने रूप के नशे मे किसीको कुछ गिनती ही न थी। उसकी हठ निराली थी, तथा साहस और आत्मसम्मान का भाव बेढब था। ससार से निराला उसका स्वभाव था। वह छुई-मुई थी। उगली दिखाई और वह मुर्झाई। जब वह सयानी हुई तो माता-पिता को उसके ब्याह की चिंता हुई।

"महाराज, आप बेसुध बैठे है, उमा सयानी हो गई। उसके हाथ पीले करने की चिंता कीजिए। बेटी बाप के घर नही खपती।"

"मुझे भी ध्यान है, पर चिंता क्या है ? राजा लोगों मे चर्चा हो रही है, साझ-सबेरे कही न कही से सन्देश भी आ जाएगा। उमा को मागते तो सब है पर उसके स्वभाव से डरता हू—पराये घर कैसे निभेगी ?"

"आप भी तो अपनी ओर से किसीको लिखिए।"

"मै जिसे लिखूगा उसका मिज़ाज आकाश पर चढ़ जाएगा। मै भी तो राजपूत हू, किसीका घमण्ड नही देख सकता।"

"सो तो ठीक है, पर जब बेटी जनमी है, तो किसीको दामाद तो बनाना ही पड़ेगा।"

"पड़ेगा तो, सोच रहा हू। हा, मारवाड़ के राव मालदेव ने भी पत्र भेजा है।"

"मालदेव ने क्या लिखा है?"

"लिखा है, आपका-हमारा सम्बन्ध ठेठ से चला आता है, कुछ नई बात नही है।"

"तो हानि क्या है! घर-वर दोनो अच्छे हैं।"

"खाक अच्छे है, मेरा सारा देश लूट-पाट कर उजाड़ दिया, अब बेटी मांगता है।"

"बेटी तो देनी ही है, मालदेव ही को दो, जिससे दुश्मनी तो मिटे।"

(स्वगत) 'बात तो सच है, घर बैठे शिकार फसाने का अवसर है, चूकना न चाहिए।'

"क्या सोचने लगे?"

"कुछ नही, मैं सोचता हू कि तुम्हारी बात ठीक है, राव मालदेव से कह देना चाहिए।"

"तो आज ही सोने-चांदी के नारियल का टीका भेज दीजिए।"

"मैं अभी पुरोहित को बुलाता हूं, सब प्रबंध हो जाएगा।"

"क्या बारात द्वार पर आ गई? तोरण बधाने की तैयारी करिए महाराज।"

"करता हू रानी, तनिक झरोखे से दूल्हे को तो देखो, यही है वह जिसके डर से मुझे रात को नीद नही आती। अब यह मेरे द्वार पर तोरण बाधेगा। अहा हा! मेरे उसी द्वार परतोरण बाधेगा जो बहुधा उसीके भय से बन्द रहता है, पर देखती रहो, मैं भी क्या करता हू। जो चौरी मे से जीता निकल गया, तो मैं रावल नही। बेटी तो विधवा होगी, पर दिल का काटा निकल जाएगा, राजपूताने भर को चैन से सोना मिलेगा।"

"हाय-हाय! यह क्या सोच रहे हो! क्या जमाई से दगा करनी विचारी है?"

"चुप रहो रानी, रोओ-चीखो मत। रोओगी तो बात फूट जाएगी, फिर यह भेड़िया हम सबको खा जाएगा। देखती नही हो, ब्याहने आया है पर कितनी फौज साथ लाया है। यह तो एक दिन मे ही घड़सीसर का सब पानी पी जाएगी, हम

और नगर के आदमी प्यासे ही मर जाएगे।"

"हाय रे क्षत्रिय जाति ! क्या करू ! फूल-सी बेटी को कैसे विधवा होने दू !"

"रानी, चुप रहने ही मे भलाई है।"

"मैं चुप हू महाराज, जो जचे सो करो।"

"मां, रोती क्यो हो !"

"बेटी, क्या करू !"

"मै चली जाऊगी इसलिए..."

"हाय बेटी, कहने की बात नही।"

"कहो मा।"

"अरी बेटी, बेटी तो बिना सींग की गाय है, जब मा-बाप ही उसपर अत्याचार करें तो किससे कहे ?"

"बात क्या है मा ?"

"तेरे भाग फूटे दीखते हैं।"

"समझ गई, तो पिताजी ने दगा विचारी है, आज ही रात को मुझे सुहाग और रंडापा मिलने वाला है, क्यो ?"

"हाय, चुप रहो बेटी, बात फूटते ही अनर्थ हो जाएगा।"

"वाह मा, बात फूटने की एक ही कही !"

"बेटी, वह बड़ा जालिम है।"

"देखा जाएगा मा, तुम अपना काम करो।"

"बस करो सखियो।"

"ठहरिए, यह मोतियों की माग तो भरने दीजिए राजकुमारी।"

"हाय, पैर हिला दिया, मेहदी गिर गई, अभी उसी तरह बैठी रहो।"

"मुझे यह सब नही सुहाता।"

"क्यों सुहाएगा, कुमारी जी ? अब सुहावना दूल्हा ही सुहाएगा, पर यह फूलो की चोटी तो गूथने दो।"

"तुम सबब ड़ी दुष्ट हो, छोड दो मुझे।"

"छोड़ना तो पड़ेगा ही, पर थोड़ी देर और।"

"बस अब नही, जाओ तुम सब।"

"चलो री सखियो, यहा से चले।"

"चलो फिर, कुमारी जी, किसको भेज दें ?"

"भारेली को भेज दो।"

"ठीक है—सदेश ले जाने में वही चतुर है।"

"जाओ, बकवाद न करो।"

"भारेली !"

"बाईजी राज।"

"कुछ सुना ?"

"नही तो।"

"अम्मा को देखा ?"

"भरे हुए बादल-सी फिर रही है। आसू रुकते ही नही।"

"कारण समझा ?"

"कारण तो समझा हुआ है—प्यारी बेटी की बिदा।"

"अरी बावली, मेरा तो सुहाग और रडापा सब आज ही हो जाएगा।"

"है !"

"कहती हू न।"

"क्या बात है ?"

"कान मे सुन।"

"अब क्या करना चाहिए ?"

"तू भेस बदलकर चुपचाप राघोजी जोशी के यहा जा और सब हाल कह आ।"

"अभी चली।"

"पर देख किसीको कानोकान खबर न हो।"

"क्या आपने आज किसी कन्या के ब्याह का मुहूर्त शोधा है ?"

"केवल रावलजी की कन्या उमादे का ब्याह शोधा है।"

"आप नगर मे और भी कही मुहूर्त शोधते हैं ?"

"सारे नगर में इस काम के लिए मैं ही बुलाया जाता हूं।"
"आप जिस कन्या का लग्न-मुहूर्त शोधते हैं, वह कै घडी सुहागन रहती है ?"
"तू क्या मुझसे दिल्लगी करती है ?"
"नही।"
"फिर ?"
"मैंने एक गड़बड़ी की बात सुनी है।"
"कौन-सी बात ?"
"आप एक बार फिर मुहूर्त शोधकर देख लीजिए।"
"मुहूर्त मे खोट नही है।"
"तो भाग्य मे खोट होगा।"
"नही, मैने जन्म-पत्र देख लिया है।"
"अजी कर्मपत्र तो नही देखा, आज बाईजी का कर्म फूटेगा।"
"क्या रावलजी ने कुछ दगा विचारी है ?"
"हां।"
"राम-राम, राजाओ को धिक्कार है।"
"महाराज, कुछ उपाय कीजिए, धिक्कार देने से क्या होगा ?"
"मैं गरीब ब्राह्मण क्या कर सकता हूं ?"
"सब कुछ कर सकते हैं।"
"तू ही बता क्या करूं ?"
"अच्छे जोशी हुए ! राजदरबार जाते हैं—और अब मुझसे उपाय पूछते हैं !"
"तू बुद्धिमती प्रतीत होती है—बता क्या करू ?"
"तुरन्त राव मालदेव के यहां जाकर उन्हे सावधान कर दीजिए !"
"बात तो ठीक है।"
"तो मैं बाईजी से कह दू ?"
"क्या तू भारेली है ?"
"जी हा।"
"अच्छा कह दे, मैं अभी जाता हूं।"

"रावलजी की जय हो, महाराज बरौठी का मुहूर्त आ गया है, सवारी की

आज्ञा दीजिए।"

"अच्छा, बरातवालो को भी कहला भेजो।"

"हा, एक बात मुझे मारवाड़ के ज्योतिषियो से पूछनी है।"

"कौन-सी बात ?"

"जन्म-पत्र से तो नही, पर बोलते नाम से आज राव मालदेवजी को चौथा चन्द्रमा और आठवा सूर्य है। दोनो ग्रह घातक है, कोई ग्रह बारहवा नही है, नही तो..."

"जाने दीजिए, वहा ज्योतिषियो ने देख-भाल लिया होगा। आपके कहने से व्यर्थ आशका बढेगी।"

"नही, मेरा धर्म है कि उनसे कहकर समाधान करा दू।"

"कैसा समाधान ?"

"यही दान-दक्षिणा आदि।"

"यह काम यही हमारी तरफ से करा दीजिए।"

"जी नही, यह उन्हीकी तरफ से होना चाहिए, मै सामग्री बता आऊंगा।"

"खैर, तो आप झटपट आ जाइए।"

"बस, गया और आया।"

"महाराज, राघोजी जोशी आए है।"

"आने दो, वे बड़े भारी ज्योतिषी है, उन्हे आदर से ले आओ।"

"पधारिए महाराज, आपका आना कैसे हुआ ?"

"कुछ मुहूर्त बताना था।"

"कहिए।"

"केवल आप ही को सुनना चाहिए।"

यह सुन सब लोग वहा से हट गए।

"सावधान, रावलजी ने दगा विचारी है, आप चौरी से लौटने न पाएगे।"

"ऐसी बात है ?"

"आप धीर-वीर, बुद्धिमान है, अधिक कहने का अवसर नही है, अब मै जाता हूं।"

"आप चिन्ता न करे, मैं सब ठीक कर लूगा।"

धौसे बजने लगे। रावलजी अगवानी लेकर आगे बढे, राव मालदेव मौर बाध, सेहरा लगा घोडे की पूजा कर सवार हुए। अगल-बगल जीता और कूपा सूरमा थे, कमर मे दुहरी तलवार थी।

आगे जाजम बिछी थी, गद्दी-तकिए लगे थे। रावलजी ने आगे बढकर स्वागत किया, दोनों गले लगकर मिले, अब निशान का हाथी आगे बढा। दोनो साथ-साथ किले में पहुचे। रावजी ने तोरण बाधा, दोनो राजा मसनद पर बैठ गए। भीतर आगन मे ब्याह की तैयारियां हो रही थी। नाज़र रावजी को बुलाने आया, रावल भी साथ उठे। जीता और कूपा ने दोनो ओर से हाथ पकड़कर उन्हे बैठाते हुए कहा, "हमे छोड़कर कहा चले रावलजी, जब तक रावजी लौट न आए यही विराजिए।"

रावलजी जान जोखिम मे देख बौखलाए-से बैठे रहे। महल मे ब्याह हो रहा था, ब्राह्मण वेद-मन्त्र पढ रहे थे। हथलेवा और गठजोडा हो रहा था, फेरे फिर गए, ब्याह हो गया, मालदेव और उमादे पति-पत्नी हो गए। उमादे अपने महल को चली गई। सहेलियां रावजी को उमादे के महलो मे ले चली।

महल मे एक जगह भरेली आदि कुछ सुन्दरिया गा रही थी; रावजी चलते-चलते ठिठक गए। खवासे दौडी, एक ने चादनी, दूसरी ने सोजनी, तीसरी ने मसनद लगाई, चौथी ने तकिए लगा दिए, दो-दो खवासे मोरछल ले दाये-बायें खडी हो गईं, पाच-सात ने शामियाना खड़ा कर दिया, दो चंवर और पखा झलने लगी। चैत की सुहावनी रात थी, चादनी फैली हुई थी, ठण्डी हवा के झोके चलने लगे, भीनी-भीनी फूलो की सुगन्ध वायु-मण्डल मे फैल गई।

भारेली ने आगे बढ़कर मुजरा किया और सोजनी से कुछ हटकर बैठ गई। उसने गानेवालियो से संकेत किया।

**दारूड़ा दाखांरो···**

तबला खड़का और सारंगी ने सिसकारी ली। गानेवालियो ने आरम्भ किया :

**भर ला, ए सुघड़ कलाल दारूड़ा दाखांरो···**

**जीवन वारां लाखांरो**

एक खवास ने पन्ने के हरे प्याले में लाल अंगूरी शराब भरकर रावजी के आगे बढाई। उन्होने हंसकर पी और प्याला मुहरो से भरकर लौटा दिया। खवास ने उठकर मजरा किया और गले के मोतियों को रावजी पर वार-वारकर गाने-

वालियो पर फेंक दिया। गानेवालियो ने फिर गाया :

**दारू पीवो रण चढ़ो राता राखो नैन।**
**बैरी थारा जल मरे, सुख पावेला सैन ।।दारू।।**

कलाली ने फिर प्याला भरकर दिया। गानेवालियों ने गाया :

**सोरठ रो दोहौ भलो, कपड़ो भलो सपेत।**
**नारी तो निबली भली, घोड़ा भलो कुमेत ।। दारू ।।**

प्याले पर प्याले बढ़ चले, रावजी मस्त हो सुरा, सुन्दरी और सगीत मे डूब गए।

उमा के यहां महफिल सजी थी, मद्य के रत्न-जटित पात्र में गजक तैयार थी, रावजी को बुलाने दासी भेजी गई थी, उनके आने की आशा मे गीत गाए जा रहे थे :

**महलां पधारो महाराज हो,**
**दारूरा मारू, महलां पधारो महाराज हो,**
**कदरी जोऊंछी सोजा वाट हो ।। महलां पधारो ।।**

उमा हसकर लजा गई। गानेवालियो ने फिर गाया :

**गैला-गैला भूलियां, महलां पड़ी पुकार।**
**आवण री वेला नहीं, अलबेला राजकुमार ।। महलां पधारो ।।**

"दासी !"

"बाईजी राज !"

"रावजी कहा हैं ?"

"वे भारेली के यहा सहेलियो के बीच बैठे है, वहा 'दारूडो दाखांरो' गाया जा रहा है।"

**बिजलियां मांडेलियां, ऊपर ले रलियां।**
**परदेसी री साजना पतीजे मिलिजां ।।**

उमा ने क्रोध से कहा :

"खामोश !"

क्षणभर में सन्नाटा छा गया।

"सब बाहर चली जाओ। आरती के थाल के दीपक बुझा दो, उसें औंधा

कर दो।

"मै नही जाऊगी जोशीजी।"

"बाईजी, यह कैसे हो सकता है?"

"मैंने सोच लिया।"

"बाईजी, कल तक तुम्हे रावजी की जान प्यारी थी, क्या आज नही है, अब भी तो उनकी जान जोखिम मे है।"

"खैर, मै जाऊगी, परन्तु रावजी मेरे पास न आ सकेगे।"

"आप जैसा कहेगी, वे वैसा ही करेगे।"

"मैं भी आपके साथ चलूगा बाईजी, यहा अब मेरा ठिकाना नही है।"

"आप भी चलिए।"

"सुखपाल सेवा मे उपस्थित है।"

"चलिए फिर।"

बरात जोधपुर पहुची, दीवान ने धूमधाम से स्वागत किया। कोसो तक सेना और दर्शको का ताता बध गया, उमा एक नये महल मे उतारी गई। रावजी के अनेक रानिया थी, नई सौत को देखने की सबको हौस थी। उनमे स्वरूपदे झाली सबसे सुन्दरी थी। रावजी उसके महल मे गए तब उसने दौडकर गले की मोतियों की माला तोडकर उनपर न्यौछावर की।

"नई रानी के दर्शन हमे भी होने चाहिए।"

"अब इसमे बाधा क्या है?"

"सुना है महाराज, भट्टानीजी बडी मानवती है?"

"भट्टानीजी क्या है, भाटा (पत्थर) है।"

(हसकर) "वाह, आपने बड़ा आदर किया, भला भाटा क्यो है?"

"है तो भट्टानी, पर भाटे की बनी है। बड़ा घमण्ड है।'

"वाह! आपसे उसका मान भी न सहा गया?"

"मान की भी एक सीमा है, प्रिये।"

"महाराज, बडे घर की बेटी, रूप-कुल में श्रेष्ठ, फिर मान न करे! भला मैं गरीब घर की लड़की क्या मान करूगी!"

"ठीक है, पर है बड़ी कड़ी।"

"चलिए, हम साथ चलें, देखें तो।"

"देखा जाएगा, अभी उसका मान थोड़ा ठण्डा पड़ने दो।"

"देखा उसका घमण्ड ?"

"बड़ी रानी को तो उसने मान दिया, बोली भी उसीसे, हमे तो पूछा भी नही।"

"इसे घमण्ड की पूरी सज़ा मिलनी चाहिए।"

"वह तो रावजी से रूठी ही है, रावजी को भी उससे रुठा देना चाहिए।"

"सच कहती हो बहिन ! जो उसने एक बार भी हसकर रावजी की ओर देख लिया तो फिर हम कही की न रही।"

"चुप—रावजी आ रहे है।"

"कहो, देख ली भट्टानी; कैसी है ?"

"बहुत अच्छी, पर अल्हड़ बछेडी है।"

"तब दुलत्तिया भी झाड़ती होगी।"

"महाराज, हमें क्या, जो पास जाए वह लात खाए।"

"जिसे लात खाना होगा वह पास जाएगा।"

"बस, बात तो यही है।"

"महाराज, हमे क्या ! वह अपने बराबर तो महारानी जी को भी नही समझती।"

"मैं तो जाकर पछताई, अजब अनघड़ है ! न आखो में लाज, न बातो में लोच।"

"अजी वह मिज़ाज मे मरी जाती है, न आए का आदर, न गए का मान।"

"महाराज, रूपवती बहुत देखी है, पर उसका तो दिमाग ही निराला है।"

"गोरी चिट्टी है तो क्या—लक्षण तो दो कौड़ी के भी नही। बड़े घर आ गई है, नही तो सब मान ठिकाने लग जाता।"

"अभी जवानी का नशा है, कल जवानी ढल जाएगी तो सब निकल जाएगा।"

"देखा जाएगा—मैं मालदेव हूं।"

आकाश पर बदली छाई थी, रावजी उमा के रूठने से और सौतों के बहकाने

से गुस्से मे भरे थे। झट जनाने से बाहर निकल आए। आंखो मे नशा, दिल में क्रोध और हाथ मे खाड़ा था।

"ड्योढियो पर कौन हाजिर है ?"

"घणी खम्मा अन्नदाता, पृथ्वीनाथ पधारो, शुभचिन्तक हाज़िर है।"

"अच्छा, आप हैं ईश्वरदासजी ! अभी आप जगते हैं ! अच्छा, कोई कहानी तो कहिए।"

"जो आज्ञा, विराजिए। सुनिए पृथ्वीनाथ :

**मारवाड़ नर नीपजे, नारी जैसलमेर।**
**तुमरी तों सिन्ध सांतरां, करहल बीकानेर ॥**

"बस, वारहटजी, आपका यह दोहा तो बिल्कुल ही गलत है।"

"कैसे पृथ्वीनाथ ?"

"जैसलमेर की नारी की प्रशसा आप करते है, पर हमे तो वहां की स्त्रियो से कुछ कहना नही है।"

"क्यो अन्नदाता, यह क्या आज्ञा करते है ? जैसलमेर की अच्छी से अच्छी स्त्री उमादे……"

"अजी वह तो फेरो की रात से ही रूठी बैठी है।"

"धन्य महाराज, चलिए अभी मेल करा दू।"

"वारहटजी, आप चलते तो हैं, पर वह बोलेगी भी नही।"

"महाराज, मैं चारण हू, चारण मरे को बुला सकता है, वह तो जीती है।"

"देखें फिर आपकी करामात।"

"मैं ईश्वरदास वारहट, बाईजी राज से कुछ कहने रावजी के पास से आया हूं।"

"बाईजी परदे के पास बैठी हैं, आप कहिए क्या कहते है ?"

"बाईजी मुजरा, घणी खम्मां।"

"…………"

"बाईजी राज से मेरा मुजरा।"

रावजी ने धीरे से कहा—मैं कहता न था कि यह न बोलेगी, मुरदा बोले, पर यह न बोले।

"बाईजी, मैं भी आप ही के घराने का हूं। इसीसे बाईजी-बाईजी करता हूं। ऐसा न होता तो देखती कि आपको और आपके घराने को कैसा लजाता। यह क्या बात है कि मैं तो मुजरा करता हू और आप जवाब ही नही देती ?"

रानी चुप रही।

"बाईजी, आपने अपने पूर्वज रावल दूदाजी का नाम सुना होगा। जब वे मुसलमानो से लड़कर काम आए, तब उनकी रानी ने चारण हुपाजी से कहा कि राजा का सिर ला दो, मै सती होऊंगी। पर जब हुपाजी रणक्षेत्र गए तो वहां कटे सिरों मे रावलजी का सिर मिलना मुश्किल हो गया। तब हुंपाजी ने उनकी प्रशसा करनी प्रारम्भ की, जिसे सुन सिर हंस पड़ा। सो तुम भी उसी वश की हो: वह मरकर भी बोला और तुम जीती भी नही बोलती। क्या तुम्हारे बडो का रक्त तुम्हारे शरीर मे नही है ?"

"बाबाजी, मैं देखना चाहती थी कि आपकी वाणी में कैसा प्रभाव है। कहिए क्या कहते है ? क्यो आए है ?"

"धन्य बाई, तुम्हारा जन्म चन्द्रवश मे हुआ है, तुम्हारी सौते कहती है, कि तुम चाद को चीरकर निकाली गई हो, पर कुछ कलक है। वह क्या है, यही पूछने आया हू।"

"उन्हीसे पूछिए।"

"वे तो स्पष्ट कुछ भी नही कहती, पर सुना है तुम रावजी से रूठी हो, इसीको वे कलक कहती है।"

"यह तो उनके लिए सुख की बात है।"

"तुम भी खूब हो बाईराज, सौतो को सुखी और पति को दुखी करती हो !"

"रावजी को रानी-बांदी की पहचान नहीं।"

"रानी रानी है, बांदी बांदी।"

"इसके लिए आप वचन दे सकते हैं ?'

"हां।"

"अच्छा हाथ बढ़ाइए।"

ईश्वरदास ने रावजी का हाथ पर्दे में बढ़ा दिया।

"आह !" यह तो वही कठोर हाथ है।"

"तो और हाथ कहां से आए ?"

उमा उठकर चली गई, रावजी भी चले गए। पर वारहटजी बैठे रहे।

"वारहटजी, भोजन कीजिए।"

"मैं भोजन नही करूगा।"

"किसलिए ?"

"मुझे बाईजी का बडा भरोसा था, पर उन्होने मेरा तनिक भी लिहाज नही किया। मैं तो इसीसे रावजी को साथ लाया था। अब तो मुझे यही मरना है। क्या कभी बाईजी ने चारणो की चादी करने की बात नही सुनी ?" (रानी आती है।)

"आप भोजन क्यो नही करते ?"

"चारण यदि किसी झगड़े मे पड़ते हैं और राजपूत उनकी बात नही मानते तो चारण को चादी करके प्राण त्यागना पडता है।"

"तो आप क्या मुझपर चांदी करेंगे ?"

"अवश्य करूगा, नही तो रावजी को क्या मुह दिखाऊंगा ?"

"तो आपने मुझे वचन क्यो नही दिया ?"

"राजा-रानी के बीच वचन कौन दे ? बीच वाले का काम मेल करा देना है. सो मै रावजी को ले ही आया था।"

"उन्हे लाने से क्या हुआ ?"

"मेरे प्राणों पर बन आई।"

"आप भोजन तो करें।"

"दूसरे जन्म मे करूगा।"

भारेली ने आगे बढकर कहा :

"वारहटजी, बाईजी ने भी अभी भोजन नही किया है।"

"वे भोजन करे, उन्हे कौन रोकता है ?"

"भला ऐसा कहीं हुआ है, चारण ड्योढ़ी पर भूखा बैठा हो, और राजपूत-जाई भोजन करे ?"

"तो बाईजी चारणों का जब इतना आदर करती हैं, तो उनकी बात क्यों नही मानती ?"

"आप क्या कहते हैं ?"

"यही कि रावजी से मेल कर ले।"

"रावजी भी कुछ करेंगे या नही ?"

"आप जो कहेगी वही करेंगे, कहिए हाथ जोडें, कहिए पाव पडे !"

"बाबाजी, यह आप क्या कहते है ? वे मेरे स्वामी और मै उनकी दासी हू। मैं तो रूठने मे भी उनसे सब भाति प्रसन्न हूं, वे भी मेरा पूरा मान करते है, इसीसे जीती हू।"

"धन्य बाई, धन्य, अब कहो क्या कहती हो ?"

"आप क्या चाहते है ?"

"रूठना छोड दो।"

"मेरा तो जी नही चाहता, पर खैर लाचार हू।"

"रावजी वही करेगे जो तुम कहोगी।"

"मुझे कुछ कहना नही है, हा, कोई बात स्वभाव-विरुद्ध न हो।"

"तो रावजी को लाऊ या सुखपाल और अर्दली मगाऊ ?"

"अभी नही, रात को चलूगी, आप भोजन करे।"

"पहले मै रावजी से मिल आऊं।"

रावजी की बाछें खिली थी, आज बहुत दिन की रूठी रानी मिलेगी। राजभवन सज रहा था। डाडनें, पातरे इकट्ठी हो रही थीं। शराब के पात्र भरे धरे थे। सर्वत्र रोशनी हो रही थी। गायन प्रारम्भ हुआ। शराब का दौर चला। उमादे को बुलाने बांदी पर बादी आ रही थी। अभी उसका शृगार ही नही निबटा था। माग में मोती भरे जा रहे थे, मन मचल रहा था। बांदी ने कहा :

"पधारिए महारानी, अन्नदाता ताकीद कर रहे है।"

"आते-आते आएगे, जल्दी क्या है ? जा भारेली, तू कह दे।"

"बाईजी राज, मुझे न भेजिए, अन्धेर हो जाएगा।"

"तू ही जा और लौटकर मेरे साथ चल।"

"वाह भारेली, आज तो तुम्हारे खूब ठाठ है। पियो एक प्याला।"

"अन्नदाता क्षमा करें, बाईजी पधार रही है।"

"आने दो फिर, उन्होने तुझे मेरा मन बहलाने को ही भेजा है।"

"महाराज, अनर्थ हो जाएगा, मुझे जाने दे।"

"बैठ जा, आने दे उन्हे।"

"महाराज, आप गज़ब कर रहे है।"

"उस दिन की तरह आज भी एक प्याला दो।"

भारेली ने मद्य से प्याला भरकर दिया ही था कि उमा ने आकर देख लिया। वह उल्टे पाव लौट गई।

भारेली ने उसे देखकर कहा·

"महाराज, अनर्थ हो गया!"

और वह खिडकी से कूदकर बाहर चली गई।

"वाह, दोनो तोते उड़ गए! बारहटजी को बुलाओ।"

"अब क्या करूं?"

बारहटजी ने सब कुछ सुनकर कहा—अन्नदाता, आपने अनर्थ किया।

"एक बार फिर मनाकर देखिए।"

"जाता हू, पर कठिन है।"

"कहिए बारहटजी, आपके तो होश उड़े हैं, खैर तो है?"

"पृथ्वीनाथ, राजभवन सूना पड़ा है, रानी बुर्ज मे जा बैठी है, सखियो ने सफेद चादनी तानकर परदा कर दिया है। लौंडिया पहरे पर है। उर्दू बेगमे नगी तलवार लिए खडी है, मेरा निकट जाने का साहस नही हुआ।"

"क्या भट्टानी बुर्ज मे जा बैठी? यह क्या किया?"

"महाराज, बुर्ज का भाग्य खुल गया, आज उसपर सती का वह तेज बरस रहा है, जो पृथ्वीराज के सिंहासन पर भी न बरसा होगा। चांदनी का परदा पड़ा है, नगी तलवारो का पहरा है!"

"तब तो उसे मनाना कठिन है।"

"बहुत कठिन, आपने बहुत अन्धेर किया।"

"अब क्या हो, मै पछताता हू।"

"अभी तो बाईजी दो-चार दिन महल मे आती दीखती नहीं; क्या प्रबन्ध किया जाए?"

"मैं तो कल ही बीकानेर पर चढ़ाई करूगा, आप वहा बुर्ज के पास कनातें

खडी कराकर चौकी-पहरे का प्रबध करा दीजिए। जब उसका मिज़ाज ठंडा हो जाए तो समझा-बुझाकर जोधपुर ले आइए।"

"जो आज्ञा महाराज।"

"बाई से अर्ज करो, दीवान हाज़िर है।"

"दीवानजी क्या चाहते है ?"

"रावजी के हुक्म से यह रामसर का परगना बाईजी राज के नाम लिखा है, सो हाज़िर है।"

"उसका प्रबन्ध हमारी तरफ से तुम स्वयं करो।"

"जैसी मर्ज़ी।"

"ड्योढी पर किलेदार ने तम्बू-परदे का सब प्रबन्ध कर दिया है, वह सुबह-शाम स्वय हाजिर होगा।"

"उसे इस चाकरी का सिरोपाव दिया जाए।"

"जो हुक्म, अजमेर का हाकिम मुजरा करता है।"

"वह क्या कहता है ?"

"बाईजी राज, रावजी ने बीकानेर जीत लिया है। पर शेरशाह हुमायू को भगाकर आगरे आ पहुचा है। बीकानेर के राजा-रईस सब उससे मिलकर उसे रावजी पर चढाने को ला रहे है। रावजी अस्सी हज़ार सेना ले उससे मोरचा लेने आ रहे है, सो किले पर जंगी बन्दोबस्त जारी करने का हुक्म हुआ है। आपके लिए जोधपुर पधारने की मर्ज़ी हुई है।"

"मुझे क्या भय है ! मैं राजपूत की बेटी हू, विपत आई तो जलकर नही मरूगी, मर्द की तरह लडूगी। रावजी को लिख दो, किला मेरे भरोसे छोड़ दें और बाकी राज्य का प्रबन्ध स्वय कर ले।"

"बाईजी राज, ऐसी ही मर्ज़ी है तो जोधपुर का किला आप अधिकार में कर ले, यहा तो भारी मोर्चे की जोखिम है।"

"अच्छा, अजमेर न सही, जोधपुर ही सही, सवारी का प्रबन्ध कर दो। यह मौका न आ जाता, तो मै यहां से जाना नही चाहती थी।"

"बारहटजी, यह क्या बात है, सौत हमारी छाती पर आ रही है ? इस बला

को टालिए। वह किले का अधिकार लेगी तो हम उसकी दबैल होकर रहेगी ?"

"क्या करू, मेरा भतीजा ईश्वरदास उसे ला रहा है, वह कपूत तो मेरे कहे मे नही।"

"भट्टानी यहा न आने पाए।"

"न कैसे आने पाए, सवारी तो चल चुकी, कल-परसों जोधपुर आ ही पहुचती है।"

"उसे राह ही मे रोक दो, हम आपको खुश करेगी।"

"जाकर देखता हू, सवारी कोसाना तक आ चुकी है।"

"जाओ और उसे रोको।"

"रूठी रानी की सवारी आ रही थी, आगे निशान का हाथी था। सवारी का ताता बधा था, हाथी के पीछे नौबतखाना था, उसके पीछे घोडों पर नक्कारा बजता था जिसकी आवाज़ बारह कोस से सुनाई देती थी। पीछे सजे हुए ऊंट और चीलों का झडा हवा मे उड़ता दिखाई देता था। झण्डे के पीछे रणबका बरछैत राठौरो का एक रिसाला था, फिर एक कतार बन्दूकचियो की, उनके पीछे तीरन्दाज़, फिर ढाल-तलवारवाले राजपूत थे, आगे कुछ दूर मैदान खाली रखकर कोतल हाथी और घोडे चलते थे, उनके पीछे नकीब, चोबदार, सोने-चांदी के आसे लिए हुए प्रवन्ध करते चलते थे। बारहट ईश्वरदास भी पांचों हथियार लगाए एक चालक घोडे पर अकड़े बैठे थे।

आसाजी को देख ईश्वरदास ने घोड़े से उतर मुजरा किया, दोनो खड़े हो सवारी देखने लगे। सवारी बढ रही थी।

एक झुंड सजी और कसी-कसाई पालकियो का आया। उनमे कुछ के पास तीर-कमान और तलवारें थी। उन्हीके झुरमुट मे रानी का सुनहला सुखपाल था। उसपर गुलाबी पर्दा पड़ा था, पर्दे पर जगह-जगह चमकीले नग जडे थे, जिसपर निगाह नही ठहरती थी। सुखपाल के पीछे नगी तलवारो का पहरा था। इसके बाद ज़नानी सवारिया पालकियो, पीनसो और रथो मे थी। उनके पीछे राठौरो का एक रिसाला था और रिसाले के पीछे जुलूस के बाकी कोतल घोड़े, हाथी और ऊट थे। सबके पीछे फर्राशखाना, तोपखाना और मोदी आदि लाव-लश्कर की ऊटगाड़ियां थी।

ज्योंही रूठी रानीका सुखपाल वहां पहुचा, आसाजी ने ड्योढ़ीदार को पुकारकर कहा—बाईजी से अर्ज़ करो कि आसा बारहट मुजरा गुज़ारता है और कुछ विनय भी किया चाहता है। इसके बाद उन्होने ऊंचे स्वर मे यह दोहा पढा :

**मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान।**
**दोय गयन्द न बांधिए, एकण खूंटे ठान॥**

दोहा सुनते ही रानी ने तुरन्त सवारी रोकने का हुक्म दे दिया। सब चकित रह गए। ईश्वरदास ने बहुत ज़ोर मारा, पर आसा का जादू चल ही गया। रानी ने वही कोसाना गाव मे डेरे डाल दिए, आसा ने ड्योढी पर जाकर कहा :

"धन्य बाईजी, मान तुम्हारा ही सच्चा और सब कहने की बात है।"

"बाबाजी, यह दोहा फिर पढो, बड़ा सच्चा दोहा है।"

(फिर पढ़कर) "बाईजी, आप सच्ची मानधनी है, आपका यह मान अमर रहेगा।"

"बाबाजी, जो यह मान जन्मभर निभे तो बात है।"

"बाईजी, तुम्हारे बाद जीता रहा तो तुम्हारा नाम अमर कर दूगा।"

"घणी खमा अन्नदाता बाईजी राज, रावजी वीरगति को प्राप्त हुए।"

"रावजी रण मे खेत रहे ?"

"महाराज, उन्होने महावीर की मृत्यु पाई।"

"सब रानिया सती हो गईं ?"

"स्वरूपदे झाली के सिवा सब रानिया, पातुर, खवासें सती हो गई, सब इक्कीस थी।"

"झाली रानी सती नहीं हुईं ?"

"उनके पुत्र ने उन्हें रोक लिया कि सरदार आ जाए तो उन्हे राजतिलक देने का वचन लेकर सती हो। उन्होंने वचन सरदारों से ले लिया पर पुत्र को श्राप दिया कि तूने मुझे पाच दिन अटकाया इससे तेरा राज अटल न रहेगा। कल वे पगड़ी के साथ सती हो गई।"

"पगड़ी आई है ?"

"कार्तिक सुदी पूर्णिमा को आ पहुचेगी।"

"अब मैं किससे रूठूगी, जिससे रूठी थी, वही न रहा तो अब जीकर क्या

करूंगी ? चिता की तैयारी करो।"

चिता तैयार हुई, बाजे बजे, चन्दन, कपूर, अगर से चिता सजाई गई, दूर-दूर से लोग रूठी रानी को सती होते देखने आए। रूठी रानी घोड़े पर चढकर मुहर और रत्न लुटाती, गहने बखेरती बाज़ार से निकल, चिता मे आ बैठी, गोद मे पति की पगड़ी थी, आग देनेवाला गांव में कोई न था।

"देखो, यहा कोई राठौर है ?"

एक बूढा जेत मालोत कांपता हुआ हाथ जोडे आया।

"सती माता, मुझपर दया करो, मैं भूखा मरता मारवाड़ छोड़ यहा पेट पालता हू।"

"डरो मत ठाकरा, स्नान करके चिता मे आग दे दो, तुम राठौर हो इसीसे तुम्हे बुलाया है।"

"सती माता, आग तो मैं दे दूगा, पर जाजम डालकर बारह दिन मे कहा बैठूगा ! मेरा तो घर भी इतना बड़ा नहीं कि जोधपुर की रानी को दाह करके शोक की जाजम बिछाकर बैठू।"

"मुन्शी हाजिर है ?"

"हुक्म अन्नदाता, सती माता।"

"अभी रानाजी को हमारी ओर से चिट्ठी लिख दो कि इस केलोह गाव का और दस हज़ार की पैदा का इस ठाकुर के नाम पुश्त-दर-पुश्त का पट्टा कर दें।"

"जो आज्ञा माता।"

स्नान करके ठाकुर ने चिता मे आग दे दी।

इस प्रकार रूठी रानी ब्याह के सत्ताईस वर्ष बाद इस भाति सती होकर अमर हुई।"

# जैसलमेर की राजकुमारी

एक राजपुत्री के शौर्यपूर्ण चरित्र और वीरतापूर्ण कार्य-क्षमता की झलक इसमें वर्णित है। अकेली राजकन्या ने कुछ मास तक जैसलमेर दुर्ग की मुगल सैन्य से रक्षा की।

राजकुमारी ने गर्व से हसकर कहा—पिता, दुर्ग की चिन्ता न कीजिए। जब तक उसका एक भी पत्थर पत्थर से मिला है, उसकी मैं रक्षा करूगी, चाहे अलाउद्दीन कितनी ही वीरता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे। आप निर्भय होकर शत्रु से लोहा लीजिए।

यह जैसलमेर के राठौर दुर्गाधिपति महाराव रत्नसिंह की कन्या थी। यह इस समय बलिष्ठ अरबी घोडे पर चढी हुई थी और मर्दानी पोशाक पहने थी। उसकी कमर मे दो तलवारे लटक रही थी। कमरबन्द मे पेशकब्ज, पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था। वह चपल घोड़े की रास को बलपूर्वक खीच रही थी जो एक क्षण भी स्थिर रहना नही चाहता था।

रत्नसिंह जिरह बख्तर पहने एक हाथी के फौलादी हौदे पर बैठे आक्रमण के लिए प्रस्थान कर रहे थे। सामने सहस्रावधि राजपूत सवार नगी तलवारें लिए मैदान मे खड़े थे। उनके घोड़े हिनहिना रहे थे और शस्त्र झनझना रहे थे।

रत्नसिंह ने पुत्री के कधे पर हाथ धरके कहा—बेटी, तुमसे मुझे ऐसी ही आशा है। मैंने तुझे पुत्री की भाति नही, पुत्र की भाति पाला और शिक्षा दी है। मै दुर्ग को तुझे सौपकर निश्चिन्त हो गया हू। देखना, सावधान रहना। शत्रु केवल वीर नहीं, धूर्त और छलिया भी है।

बालिका ने वक्र दृष्टि से पिता को देखा और हंसकर कहा—नही, पिताजी, आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें, किले का बाल भी बाका न होगा।

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चमकते हुए कगूरो पर डाली और हाथी बढ़ाया। गगनभेदी जय-निनाद से धरती-आसमान काप उठे। एक

विशालकाय सैन्य अजगर की भांति किले के फाटक से निकलकर पर्वत की उपत्यका मे विलीन हो गया। इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक बन्द हो गया।

टिड्डीदल की भाति शत्रु ने दुर्ग घेर रखा था। सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी। प्रतिदिन यवनदल गोली और तीरों की वर्षा करते थे, पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाए खड़ा था। यवन समझ गए थे कि दुर्ग-विजय करना हसी-ठट्ठा नही है। दुर्ग-रक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग मे सुरक्षित बैठी शत्रुओ के दात खट्टे कर रही थी। उसकी अधीनता मे पुराने विश्वस्त राजपूत वीर थे जो मृत्यु और जीवन को खेल समझते थे। वह अपनी सखियो समेत दुर्ग के किसी बुर्ज पर चढ जाती और यवन सेना का ठट्ठा उडाती हुई वहा से सनसनाते तीरो की वर्षा करती। वह कहती—मैं स्त्री हू, पर अबला नही। मुझमे मर्दो जैसा साहस और हिम्मत है। मेरी सहेलिया भी देखने-भर की स्त्रिया हैं। मैं इन पापिष्ठ यवनो को समझती क्या हू ?

उसकी बाते सुन सहेलिया ठठाकर हस देती हैं। प्रबल यवनदल द्वारा आक्रांत दुर्ग मे बैठना राजकुमारी के लिए एक विनोद था।

मलिक काफूर एक गुलाम था, जो यवन-सेना का अधिपति था। वह दृढ़ता और शान्ति से राजकुमारी की चोटे सह रहा था। उसने सोचा था कि जब किले मे खाद्यपदार्थ कम हो जाएगे, दुर्ग वश में आ जाएगा। फिर भी वह समय-समय पर दुर्ग पर आक्रमण कर देता था, परन्तु दुर्ग की चट्टानो और भारी दीवारो को कोई क्षति नही पहुचती थी। राजकुमारी बहुधा बुर्ज पर से कहती—ये धूर्त गर्द उडाकर और गोली बरसाकर मेरे किले को गन्दा कर रहे है। इससे क्या लाभ होगा ?

यवनदल ने एक बार दुर्ग पर प्रबल आक्रमण किया। राजकुमारी चुपचाप बैठी रही। जब शत्रु आधी दूर तक दीवारो पर चढ़ आए तब भारी पत्थरो के ढोके और गर्म तेल की वह मार पडी कि शत्रु-सेना छिन्न-भिन्न हो गई। लोगो के मुह झुलस गए। किसानो की चटनी बन गई। हज़ारों तौबा-तौबा करके प्राण लेकर भागे। जो प्राचीर तक पहुचे, उन्हे तलवार के घाट उतार दिया गया।

सूर्य छिप रहा था। प्राची दिशा लाल-लाल हो रही थी। राजकुमारी कुछ चिन्तित भाव से सुदूर पर्वत की उपत्यका में डूबते हुए सूर्य को देख रही थी। उसे चार दिन से पिता का सन्देश नही मिला था। वह सोच रही थी कि इस समय पिता को क्या सहायता दी जा सकती है। वह एक बुर्ज के नीचे बैठ गई। धीरे-धीरे अंधकार बढने लगा। उसने देखा, एक काली मूर्ति धीरे-धीरे पर्वत की तग राह से किले की ओर अग्रसर हो रही है। उसने समझा, पिता का सन्देशवाहक होगा। वह चुपचाप उत्सुक होकर उधर ही देखती रही। उसे आश्चर्य तब हुआ जब उसने देखा, वह गुप्त द्वार की ओर न जाकर सिंह-द्वार की ओर जा रहा है। तब अवश्य वह शत्रु है। राजकुमारी ने एक तीखा बाण हाथ मे लिया और छिपती हुई उस मूर्ति के साथ ही द्वार की पौर के ऊपर आ गई। वह मूर्ति एक गठरी को पीठ से उतारकर प्राचीर पर चढने का उपाय सोच रही थी। राजकुमारी ने धनुष पर बाण चढ़ाकर ललकारकर कहा—वही खडा रह, और अपना अभिप्राय कह।

कालरूप राजकुमारी को सम्मुख देख वह व्यक्ति भयभीत स्वर में बोला—मुझे किले मे आने दीजिए, बहुत ज़रूरी सन्देश है।

"वह सन्देश वहीं से कह।"

"वह अतिशय गोपनीय है।"

"कुछ चिन्ता नही, कह।"

"किले मे आकर कहूंगा।"

"उससे प्रथम यह तीर तेरे कलेजे के पार हो जाएगा।"

"महाराज विपत्ति में है, मैं उनका चर हूं।"

"चिट्ठी हो तो फेंक दे।"

"ज़बानी कहना है।"

"जल्दी कह।"

"यहा से नही कह सकता।"

"तब ले।" राजकुमारी ने तीर छोड दिया। वह उसके कलेजे को पार करता हुआ निकल गया। राजकुमारी ने सीटी दी। दो सैनिक आ उपस्थित हुए। कुमारी की आज्ञा पा रस्सी के सहारे उन्होने नीचे जा मृत व्यक्ति को देखा—यवन था। दूसरा व्यक्ति पीठ पर गठरी मे बधा था। यह देख राजकुमारी ज़ोर से हस पड़ी। इसके बाद वह प्रत्येक बुर्ज पर घूम-घूमकर प्रबन्ध और पहरे का निरीक्षण कर रही

थी। पश्चिमी फाटक पर जाकर उसने देखा, द्वार-रक्षक द्वार पर न था। कुमारी ने पुकारकर कहा—यहा पहरे पर कौन है ?

एक वृद्ध योद्धा ने आगे बढ़कर कुमारी को मुजरा किया। उसने धीरे से कुमारी के कान मे कुछ और भी कहा।

वह हंसती-हसती बोली—ऐसा ? अच्छा वे तुम्हे घूस देगे, बाबाजी साहब ?

"हां, बेटी," बूढ़ा योद्धा तनिक हंस दिया। उसने गाठ से सोने की पोटली निकालकर कहा—यह देखो, इतना सोना है।

"अच्छी बात है। ठहरो, हम उन्हें पागल बना देंगे। बाबाजी, तुम आधी रात को उनकी इच्छानुसार द्वार खोल देना।" वृद्ध भी हसता हुआ सिर हिलाता हुआ चला गया।

दो बज गए थे। चन्द्रमा की चादनी छिटक रही थी। कुछ आदमी दुर्ग की ओर छिपे-छिपे आ रहे थे। उनका सरदार मलिक काफूर था। उसके पीछे सौ चुने हुए योद्धा थे। सकेत पाते ही द्वारपाल ने प्रतिज्ञा पूरी की। विशाल महराब-दार फाटक खुल गया। सौ व्यक्ति चुपचाप दुर्ग मे घुस गए। काफूर ने मन्द स्वर मे कहा—यहां तक तो ठीक हुआ। अब हमे उस गुप्त मार्ग से दुर्ग के भीतरी महलों मे पहुचा दो जिसका तुमने वादा किया है।

राजपूत ने कहा—मैं वायदे का पक्का हू, मगर बाकी सोना तो दो।

"यह लो।" यवन सेनापति ने मुहरो की थैली हाथ मे धर दी। राजपूत फाटक में ताला बन्द कर चुपचाप प्राचीर की छाया में चला। वह लोमड़ी की भाति चक्कर खाकर कही गायब हो गया। यवन सैनिक चक्रव्यूह मे फस गए, न पीछे का रास्ता मिलता था, न आगे का। वास्तव मे सब कैद हो गए थे और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे। मलिक काफूर दांत पीस रहा था। राजकुमारी की सहेलिया इतने चूहों को चूहेदानी मे फसाकर हंस रही थी।

यवन-सैन्य का घेरा दुर्भेद्य था। खाद्य-सामग्री धीरे-धीरे कम हो रही थी। घेरे के बीच से किसीका आना अशक्य था। राजपूत भूखो मर रहे थे। राजकुमारी का शरीर पीला हो गया था। उसके अंग शिथिल हो गए थे, पर नेत्रो का तेज वैसा ही था। उसे कैदियों के भोजन की चिन्ता थी। किले का प्रत्येक आदमी

उसे देवी की भांति पूजता था।

उसने मलिक काफूर के पास जाकर कहा :

"यवन सेनापति, मुझे आपसे कुछ परामर्श करना है। मैं विवश हो गई हूं। दुर्ग में खाद्य-सामग्री बहुत कम हो गई है और मुझे यह सकोच हो रहा है कि आपकी कैसे अतिथि-सेवा की जाए। अब कल से हम लोग एक मुट्ठी अन्न लेगे और आप लोगो को दो मुट्ठी उस समय तक मिलेगा जब तक कि अन्न दुर्ग में रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।"

मलिक काफूर की आखो मे आसू भर आए। उसने कहा :

"राजकुमारी, मुझे यकीन है कि आप बीस किलो की हिफाज़त कर सकती है।"

"हां, यदि मेरे पास हो तो।" राजकुमारी चली गई।

अठारह सप्ताह और बीत गए।

अलाउद्दीन के गुप्तचर ने आकर सुलतान को कोर्निश किया।

सुलतान ने पूछा, "क्या राजकुमारी रत्नवती किला देने को तैयार है ?"

"नही, खुदाबन्द, वहा किसी तरकीब से रसद पहुच गई है। किला नौ महीने और पड़े रहने पर भी हाथ न आएगा। फिर पानी अब किसी तालाब में नही है।"

"और क्या खबर है ?"

"रत्नसिह ने मालबे तक शाही सेना को खदेड़ दिया है।"

अलाउद्दीन हतबुद्धि हो गया और महाराव से सन्धि का प्रस्ताव किया।

सुन्दर प्रभात था। राजकुमारी ने दुर्ग-प्राचीर पर खडी होकर देखा, शाही सेना डेरे-डडे उखाडकर जा रही है। और महाराव रत्नसिंह अपने सूर्यमुखी झडे को फहराते विजयी राजपूतो के साथ दुर्ग की ओर आ रहे है।

मगल-कलश सजे थे। बाजे बज रहे थे, दुर्ग मे प्रत्येक वीर को पुरस्कार मिल रहा था! मलिक काफूर महाराव की बगल में बैठे थे। महाराव ने कहा—खां साहिब, किले में मेरी गैरहाज़िरी मे आपको तकलीफ और असुविधाएं हुई होगी, इसके लिए आप माफ करेगे। युद्ध के नियम सख्त होते है, फिर किले पर भारी मुसीबत आई थी, लडकी अकेली थी, जो बन सका किया।

काफूर ने कहा—महाराज, राजकुमारी तो पूजने लायक है, ये इन्सान नही

# वीर बादल

चित्तौड की महारानी पद्मिनी की प्रतिष्ठा एक अल्प वयस्क वीर बालक ने किस शौर्य और साहस से बचाई, इस कहानी में यही चित्रित है।

तेरहवीं शताब्दी बीत रही थी। निर्दय और इन्द्रियलोलुप पठान अलाउद्दीन खिलजी भारत का सम्राट् था। उसने अपनी दुर्धर्ष सेना के बल पर राजपूताना को कुचल डाला था, और अब वह राजपूताने की बची-खुची आबरू को लूटने के लिए दलबल सहित चित्तौड पर चढ आया था। चित्तौड पर दुर्भाग्य उदय हुआ था। इस बार उसका इरादा चित्तौड-विजय का न था, प्रत्युत चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी को हरण करने का था। चित्तौड़ की आतरिक अवस्था अच्छी न थी, राणा लक्ष्मणसिंह नाबालिग थे और उनके चाचा भीमसिह चित्तौड के कर्ताधर्ता थे। पद्मिनी भीमसिह की पत्नी थी। वह पद्मराग मणि के समान सुन्दर और कान्तिवाली थी। उसके सौन्दर्य की तारीफ राजपूताने भर मे फैली हुई थी और सौन्दर्यलोलुप अलाउद्दीन खिलजी पूरी शक्ति से उस सौन्दर्य-कुसुम को लूटने चित्तौड़ पर चढ़ आया था।

किला चारो ओर से घिरा हुआ था और किसी भी आदमी का किले से बाहर जाना या बाहर से भीतर आना सम्भव न था। किले में खाद्य-सामग्री अभी इतनी थी कि वर्षो घेरा पड़ा रहने पर भी उसकी कमी न होती। परन्तु पानी का अभाव था। लोगो ने प्रथम स्नान आदि बन्द किए। अब पीने मे भी किफायत पर नौबत आ पहुची। अलाउद्दीन को चित्तौड को घेरे नौ मास हो चुके थे। किला फतह होने की कोई युक्ति सूझ न पड़ी थी। भारतीय राजनीति का वातावरण उस समय अत्यन्त क्षुब्ध था। मालवा, गुजरात, बंगाल और दिल्ली से अशान्तिपूर्ण खबरे आ रही थीं। अलाउद्दीन ने समझा कि इस सौन्दर्य की देवी के पीछे कही हिन्द का तख्त ही न खोना पड़े। वह जल्द से जल्द चित्तौड़ के मामले को खतम करने का मन्सूबा बाधने लगा। मन ही मन उसने कपट का जाल बिछाया और फिर सुलह का झण्डा

लेकर किले मे सवाद भेज दिया।

सुलह का झण्डा देखकर किले का फाटक खुल गया। दूत भीत मुद्रा से किले मे गया। विकटआकृति राजपूत उसे सन्देह और क्रोध से देख रहे थे। उसने राणा भीमसिंह की राजसभा मे जाकर विनयपूर्वक यह निवेदन किया कि सुलतान चित्तौड़ के राणा से बराबर की दोस्ती करना चाहते है। उनकी मन्शा न चित्तौड छीनने की है, न महाराणी को हरण करने की। अगर महाराणा अपनी दोस्ती का सबूत दे तो सुलतान अभी दिल्ली को लौट जाए। दोस्ती के सबूत मे सुलतान केवल यह चाहते है कि उन्हे केवल एक बार महाराणी की झलक दिखा दी जाए। और कुछ नही।

गर्वीले राजपूतो को दूत का यह प्रस्ताव अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत हुआ। उन्होने तलवारे खीच ली, और भाति-भाति के कुवाक्य दूत और सुलतान को कहे। प्रत्येक राजपूत इस अपमान के बदले अपने प्राण देने के लिए तैयार था, पर राणा भीमसिह गम्भीर चिन्ता मे निमग्न थे। उनके ऊपर चित्तौड़ की रक्षा एव हजारो राजपूतो की जीवन-रक्षा का दायित्व था। उन्होने सोचा, क्या सर्वनाश से बचने के लिए यह अपमान सह लिया जाए? उन्होने अपने मन्त्रियो, सरदारो और भाई-बदों से और दरबारियो से परामर्श किया और रानी पद्मिनी से भी सब हकीकत कह दी। रानी ने साहसपूर्वक कह दिया कि यदि मेरा यह अपमान करके वह दैत्य टल जाए तो मै अपनी आबरू का बलिदान देने को तैयार हू, परन्तु प्रत्यक्ष नही, दर्पण मे ही वह पशु मेरी छवि की एक झलक देख सकता है।

राणा भीमसिह ने सभासदो को सब ऊच-नीच समझाकर अन्त मे प्रस्ताव की स्वीकृति दे दी। उन्होने यह शर्त की कि सुलतान अकेले निःशस्त्र किले में आएंगे और दर्पण मे महाराणी की एक झलक देखकर तुरन्त लौट जाएगे, तथा तुरन्त ही चित्तौड़ का घेरा उठा लेंगे।

अलाउद्दीन ने राणा की इस उदारता की बड़ी तारीफ की, और मित्रता की बहुत लम्बी-चौड़ी बातें राणा के पास भेजीं। ठीक समय पर वह नि:शस्त्र, अकेले किले मे आ पहुचा।

सुलतान का प्रस्ताव अभूतपूर्व था और वह विश्वासी व्यक्ति न था। किले का प्रत्येक राजपूत इसे अपना जातीय अपमान समझे हुए था। परन्तु राणा अपने विचार पर दृढ़ था। वह गम्भीर और मौन था। आज महलो मे अद्भुत गम्भी-

रता छाई हुई थी। राजपूत बडी-बडी काली दाढ़ियों के बीच दातो की बत्तीसी भीचे, सम्पुटित होठ किए, बिना बड़ी-बडी ढाल कन्धे पर लिए, तलवारे म्यान मे किए, लाज और अपमान से नीचे आंखें किए खड़े थे। सुलतान सबके बीच साहस और उत्साह की मूर्ति बना धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। राणा ने किले के फाटक पर उसका स्वागत किया था। राजपूतो के वचन पर उसे भरोसा था। वह नि.शस्त्र तथा एकाकी था। वह चपल घोडे पर सवार था और आगे बढ रहा था। उसके बाई ओर राणा चुपचाप एक घोड़े पर सवार आगे बढ रहा था, और पीछे चुने हुए सवार थे। सुलतान अपनी मित्रता और प्रसन्नता प्रकट करने के लिए बहुत-सी बातें करता जाता था।

ज़नाने दरवाज़ो पर सब घोडों से उतर पड़े। वे उन सीढियो पर चढे जहा किसी यवन के पांव नही पडे थे। राजपूत क्रोध से एव बादिया भय से थरथर कापती जा रही थी। सन्नाटा था, विरद गानेवाले चुप बैठे थे, डाडिने अपने मुह पर घूघट डाले सिमटी खड़ी थी। नौबतखाने के नक्कारे औधे पड़े थे।

सुलतान ने कहा—महाराणा, आज से हम दोनो दोस्त हुए. हुए न, कहिए ?

महाराणा ने खिन्नमन होकर धीरे से कहा—सुलतान की यदि यही इच्छा है तो मैं वचन देता हू कि राजपूत हमेशा सच्ची दोस्ती निभाएगे।

"इसका मुझे पूरा भरोसा है, आप देखते है कि आपपर मै यकीन करके खाली हाथ किले में आ गया हू। उम्मीद है, आप भी मुझे भरोसा देगे।"

राणा ने गम्भीर स्वर मे कहा—तो क्या सुलतान मित्रता की ओर इतना कदम उठाकर भी वह अपमानजनक काम करने का इरादा रखते है, जो राजपूतो के लिए बिलकुल नया है ?

"यकीन रखिए, राणा साहब, मेरी नीयत कुछ बुरी नही। जैसा हम लोगो मे कौल-करार हुआ है, उसके पूरा होते ही मै तुरन्त दिल्ली लौट जाऊगा।"

राणा ने ठण्डी सास लेकर एक बार सरदारो की ओर देखा—वे नीची आखे किए खड़े थे। फिर उसने चादी की भाति सफेद महलो के आकाश को छूनेवाले सुनहरी कंगूरो को देखा जो सूर्य की धूप मे चमक रहे थे। तब सूर्यवश के उस अधिकारी ने एक ठण्डी साँस ली और कहा—तब आइए, राजपूत अपनी बात पूरी करेगे। दोनों आगे बढे। दो कदम बाद सुलतान झिझककर खड़ा हो गया, उसने देखा—सामने पूरे कद के आइने मे वह अलौकिक सुन्दरी—जैसे रत्नो से जड़ी तस्वीर

हो—लाज से सिर नवाए खड़ी है। एक झलक सुलतान ने देखा, और वह झलक दर्पण से गायब हो गई। सुलतान निश्चल हो गया, इस सौन्दर्य की उसने कभी कल्पना भी न की थी। महाराणा ने कंपित कण्ठ से कहा—राजपूतों का वचन पूरा हुआ, अब सुलतान को अपना वचन निभाना चाहिए।

सुलतान चौका और सोते हुए मनुष्य की भाति उसने कहा—हा, हा, ज़रूर ; अब मुझे आपकी दोस्ती पर यकीन हो गया है। महाराणा, दरहकीकत मै आपको मुबारकबादी देता हू। आपकी महाराणी इन्सान नही है, इन्सान मे इतनी खूबसूरती नही हो सकती।

राजपूत धीरज खो रहे थे। राणा ने अधीर होकर कहा—राजपूती मर्यादा को निभाने के लिए, सुलतान जैसे प्रतिष्ठित मेहमान को विदा करने हम बाहर की डयोढ़ी तक चलेंगे, परन्तु सुलतान अपना वचन कब पूरा करेंगे ?

"मैं अभी अपनी छावनी उठाता हू," सुलतान ने वापस लौटती बार कहा था।

वे चुपचाप धीरे-धीरे लौट रहे थे। दोनो चुप थे। राणा उस अपने अपमान की बात सोच रहे थे, जो अभी हो चुका था और सुलतान उस घात की, जो वह अभी करनेवाला था।

फाटक आ पहुचा। राणा ने कहा—मै सुलतान के कष्ट करने के लिए क्षमा चाहता हू।

"नही, नही, माफी मुझे मांगनी चाहिए, क्योंकि मैंने आपको बडे भारी तरद्दुद में डाल दिया है; मगर खैर, इससे हमारी और आपकी दोस्ती पक्की हो गई। अरे, आप रुक क्यों गए, ज़रा और आगे चलिए। वहा मेरे आदमी है। मै आपके लिए कुछ सौगात लाया हू, जो आपको बाइज्ज़त कबूल करनी होगी। आशा है आप इनकार नही करेंगे।"

राणा झिझका पर आगे बढ़ा। उसने कहा—आपकी दोस्ती ही मेरे लिए सबसे बड़ी सौगात है।

सुलतान ने अत्यन्त आग्रह से कहा—नही, नही, अगर आप इनकार करेंगे तो मैं समझूगा कि आपका दिल मेरी तरफ से साफ नही है।

फाटक कदम-कदम पर दूर हो रहा था, राणा कुछ कह न सके। एकाएक पठानों का एक बड़ा दल जंगल से निकल आया और बात की बात मे राणा को घेर लिया। राणा तलवार भी न निकाल पाया, उसकी मुश्कें कस ली गई। राणा ने

लाल-लाल आखे करके कहा—यही सुलतान की दोस्ती है ?

"दोस्ती ? काफिर की और दीनदार की कैसी दोस्ती ? या तो वह परी पैकर मेरे हवाले कर, वरना चित्तौड़ की ईंट से ईंट बजा दूगा, और तेरी बोटिया चील और कव्वे खाएगे।"

राणा ने घृणापूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—धिक्कार है तुझ विश्वासघाती पर।

सुलतान ने कहा—ले जाकर बन्द कर दो बदबख्त को।—और वे तेज़ी से चल दिए।

किले मे हाहाकार मच गया। राजपूतो ने तलवारे सूत ली। सबने इरादा किया, किले का फाटक खोल दो, और जूझ मरो। पद्मिनी ने सुना तो कहलाया—सब कोई शान्त रहे, मैं महाराण की मुक्ति का उपाय करूगी। लोग आश्चर्यचकित हो महाराणा की मुक्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

"बादल, क्या तुम अपने काका जी को छुडाने का साहस कर सकते हो ?"

"हा काकी जी, मै अभी अपने प्राण दे सकता हू।"

"परन्तु बेटे, शत्रु छली और बली है, हमे भी छल और बल से, काम लेना होगा।

"छल-बल से कैसे काकी जी ?"

"मैं सुलतान से कहलाए देती हू, मैं स्वयं उसके पास आने को राजी हू। आप राणा को छोड़ दे।"

"छी, छी, काकी ! क्या आप उस म्लेच्छ सुलतान के पास जाएगी ?"

"नही बेटे, मेरी जगह मेरी डोली मे तुम जाओगे।"

"क्या, मैं ?"

"हा, तुम मेरी जगह। यद्यपि तुम अभी बारह साल के बालक हो, पर क्षत्रिय-पुत्र को जूझ मरने के लिए यह आयु काफी है। तुम यह काम कर सकोगे ?"

"मुझे क्या करना होगा ?"

"तुम सब हथियार बाधकर मेरी पालकी मे बैठोगे। पालकी के साथ सात सौ डोलियों में मेरी सहेलिया होगी। प्रत्येक डोली में बादी की जगह दो-दो शूरवीर हथियार बाधकर बैठेंगे। और चार-चार शूरमा कहार का भेस धरे डोली उठाएगे, जिनके हथियार कपड़ो मे छिपे होगे।"

"इसके बाद काकी जी ?"

"इसके वाद राणी-राणा मे अकेले में भेट होगी। पास में तुम्हारे काका गोरा घोडे पर सवार होगे। वे तुरन्त ही राणा जी को घोड़ा और हथियार दे देंगे। और किले की ओर चलता कर देगे। फिर तुम डोली से निकल अपने राजपूती जौहर के हाथ दिखलाना।"

"ऐसा ही होगा काकीजी, हम सुलतान को दगाबाज़ी का वह पाठ पढ़ाएगे, जिसका नाम है।"

"तब जाओ बेटे, अपने गोरा काका से कहो। वे सुलतान से कहला भेजे कि राणी आपके पास आने को राजी है। मगर वे अपनी बादियो और सहेलियों के साथ आएंगी। उन्हे परदे मे उतारने का बदोबस्त कीजिए, और राणा को छोड दीजिए तथा राणी को एक घण्टे राणा से एकान्त में मिलने की आज्ञा मिलनी चाहिए, बस।"

"समझ गया। अभी जाकर गोरा चाचा से सब हकीकत बयान करता हू।"

"जाओ पुत्र, ईश्वर तुम्हे सफलता दें।"

सुलतान की छावनी मे जश्न मनाया जा रहा था। उसे खबर लग चुकी थी कि पद्मिनी अपने महल मे चल चुकी है। वह पहाड़ से उतरती हुई डोलियो को देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था। वह अपनी चालाकी पर खुश हो रहा था। सिपाही शराब ढाल रहे थे और नाच-गान मे सब मस्त थे। किसीको किसीकी सुध न थी।

धीरे-धीरे डोलिया पठानों के शिविर में आ गईं। और वे सब एक बड़े तम्बू मे उतार दी गईं। रानी ने कहला भेजा—अब आप एक घण्टे के लिए मुझे राणा से मिलने की इजाजत दें। इसके बाद तो मैं आपकी हू ही।

बादशाह ने हसकर कहा—अच्छा, अच्छा, इसमे कोई हर्ज नही है। राणा अच्छा आदमी है। मगर एक घण्टे बाद मै कुछ नही सुनूगा।

"यह मैं क्या देख-सुन रहा हू, अच्छा होता कि इससे पहले ही मर गया होता। पद्मिनी, तुमसे ऐसी आशा न थी। अब तुम मुझे अपना मुह दिखाने का साहस करती हो!" राणा भीमसिह ने क्रोध से थर-थर कापते हुए पालकी के सुनहरी काम की ओर अग्निमय नेत्रों से देखते हुए कहा।

पर्दा हिला। बादल ने घूघट से मुह निकालकर कहा, "काकाजी, सावधान!"

"कौन, तुम हो बादल!"

"जी हां, और सात सौ डोलियो मे जुझाऊ वीर भरे है। हम, हम सुलतान से निबट लेगे। बाहर गोरा काका घोड़ा लिए खड़े है। आप घोड़े पर चढकर किले मे जा पहुचे। और फिर सेना लेकर सुलतान की सेना पर टूट पड़ें, तब तक हम निबट लेगे।"

"शाबाश बेटे, हम आज दगाबाज़ी का···"

"चुप, ज्यादा बातें न कीजिए। खीमे के पीछे घोड़ा खड़ा है, आप जाइए, हम शत्रुओ को रोकते है। बादल पालकी से निकलकर खडा हुआ। सकेत होते ही हजारो राजपूत हर-हर करके तलवारे सूतकर निकल पडे। रग मे भग पड गया। छावनी मे उथल-पुथल मच गई। जो जहां था, वही काट डाला गया। तैयारी का अवसर ही न था। मारो, मारो की आवाज़ सुनाई पडती थी। घायलो के चीत्कार मारते हुए कराहने की आवाज़ और राजपूतो की हर हर महादेव तथा पठानो की अल्लाहो अकबर की तुमुल ध्वनि हो रही थी। रुण्ड-मुण्ड कट-कटकर गिर रहे थे। राणा भीमसिह तीर की भाति किले की ओर जा रहे थे। किले पर राजपूत तलवारें झनझना रही थी।

बादल को पठानो ने घेर लिया था। पर वह बालक किले के नीचे पथ पर खडा दोनो हाथो से तलवार चला रहा था। गोरा ने तलवार चलाते-चलाते कहा, "वाह बेटे, खूब खेत काट रहे हो !"

"सावधान काका जी, वह पीछे से वार होता है।"

तलवार चलाते-चलाते गोरा ने कहा—हर्ज नही, राणा जी महल मे पहुच गए है, वह तोप छूटी।"

तलवारे और तीर बरस रहे थे। गोरा ने कहा—बादल, अब मेरे हाथ नही चलते।

बादल ने कहा—काका जी, हम उस लोक मे मिलेंगे।—गोरा घाव खाकर गिर पड़ा। बादल ने देखा और शत्रुओ को चीरते हुए ज़ोर से उनके कान के पास पुकारा, मैं, काका जी, आपकी वीरता का बखान करूगा ! महाराणा सेना लेकर आ रहे हैं !

राणा ने आते ही शत्रुओ को गाजर-मूली की तरह काटना आरम्भ कर दिया। शत्रु के पैर उखड़ गए। सुलतान पिटे कुत्ते की तरह सब सामान छोड़कर भागा। उसकी छावनी जला दी गई। बादल के शरीर पर अनगिनत घाव थे। उसके मुमुर्ष शरीर को महलो मे लाया गया। शरीर से एक-एक बूद रक्त निकल गया था। और उसके होठों पर हसी की रेखा थी।

# बाण-वधू

इस कहानी मे वीरबाला तारा के अप्रतिम शौर्य का अनोखा रेखाचित्र है।

"प्रिये, यह सब भाग्य का खेल है, लक्ष्मी अति चपल है। वह सदा एक ठौर नही रहती। जो कल महाराज था, आज भिखारी है।"

"स्वामिन्, क्षत्रिय-पुत्री हू, मै भाग्य को नही मानती। वीर पुरुष अपने पौरुष से भाग्य का निर्माण करते है।"

"किन्तु विश्वधारा के प्रतिकूल, क्षीण मनुष्य का बल···"

"किन्तु कर्मक्षेत्र मे दृढता से खडे रहना उसका कर्तव्य है।"

"और यदि युद्ध में पराजय हुई ?"

"तो वही प्राण त्यागे। क्या वीर पुरुष तिनके हैं, जो प्रवाह मे पडकर जिधर लहर ले जाए उधर ही बह निकले ?"

"क्या नल पर विपत्ति नही पड़ी ? राज्य गया, स्त्री छूटी, अन्त में नौकरी करनी पड़ी, यह सब विधाता के खेल हैं।"

"यह अवैध जुआ खेलने के खेल है।"

"प्रिये, ऐसी बाते क्यो करती हो ? तुम्हे यहां क्या कष्ट है ? कैसी सुदर वन-स्थली है ! झरने का मीठा जल, फल और हरियाली···"

"पराधीनता मे एक क्षण भी रहना धिक्कार की बात है, कायर ही ऐसी युक्तियो से सन्तोष किया करते है।"

"प्रिये, पति से ऐसे कठोर वाक्य कहने उचित नही, द्रौपदी ने भी कठोर वचन कहे थे, पर फल क्या हुआ ?"

"सच है, क्षत्रिय को रण मे पीठ दिखाना शोभा नही देता है। तुम पुरुष जब से स्त्रियों के विधाता बन गए हो तब से उन्हे सदा अपने प्रति कर्तव्य का उपदेश देते रहते हो, पर अपने कर्तव्य का पालन नही करते। यदि तुम कायरों की भाति युद्ध से भाग

न अंते और सम्मुख युद्ध मे प्राण देते तो देखते कि तुम्हारी पत्नी किस आनन्द मे चिता पर चढ़ती है !"

"पर प्रिये, समय के लिए बच रहना भी युक्ति है।'

"कायर ही ऐसी युक्तिया दिया करते हैं, पर जो सच्चे शूर है वे जय या मृत्यु—इन दो वस्तुओ को ही प्राप्त करते है। शोक तो यह है कि मुझे कन्या जन्मी. पुत्र भगवान् ने न दिया।"

"और जो पुत्र भी युद्ध से भागता ?"

"सिहनी कभी स्यार नही पैदा करती।"

"आह, मैने नारी-जन्म पाया ! मुझे धिक्कार है, मैं पुत्र क्यो न हुई। परन्तु स्त्री अबला क्यो ? क्या उसके हाथ-पैर नही, मस्तिष्क नही, हृदय नही ? शक्ति, तेज, बल—सभी तो शिक्षा और अभ्यास से प्राप्त होता है। देखू ! सुकोमल बाहुओ को वज्र-भुजदण्ड बना लू। इन कलाइयो में दुधारा खड्ग धारण करू। माता, तुम क्षोभ मत करो, मै पिता का राज्य शत्रु से छीनूगी तो मेरा नाम तारा रहा, मै राजपूतानी की बच्ची हू। मैं तुम्हारे पुत्र का काम करूगी।"

"प्रिये, तारा पुत्री कहा गई ?"

"शिकार को गई है।"

"अरे, उस दिन इतना मना किया था ! क्या वह बालक है ? उसे रोका नही ?'

"तुम्ही रोक देखो।"

"वह विवाह के योग्य हो गई।"

"इसका विचार भी तुम्ही करो।"

(तारा का प्रवेश)

"पिता जी, आपने यह बाघ का बच्चा देखा ?"

"अरे-अरे, उसे यहा लाया कौन ?"

"झाड़ी मे घुसकर लाई हूं। इसकी बेचारी माता आज मेरे बर्छे से विद्ध होकर मर गई।"

"मर गई ? तुमने बाघिन को मारकर बच्चा छीन लिया ?"

"पिता जी, कैसा प्यारा बच्चा है !"

"तारा बेटी, तुम्हारा यह कार्य प्रशसा के योग्य नही। तुम राजकुल की कन्या हो; यो पुरुष-वेश मे घूमते फिरना और शिकार करना तुम्हे उचित नही। जाओ, भीतर बैठो।"

"पिता जी, जब मर्दों ने मर्द के सब काम और बर्ताव तक छोड दिए, स्त्री जैसे बन गए—पर स्त्री का प्रधान गुण लज्जा एक बार ही तज बैठे—और चुपचाप शत्रु की लात सहते बैठे है, तब स्त्रियो को विवश यह वेश लेना पड़ता है।"

"तारा, ऐसा तर्क, ऐसी प्रगलभता तुमने किससे सीखी ?"

"पिता जी, तब बाघ का बच्चा न देखोगे ? मा, आओ तुम देखो।"

"चलो बेटी, देखू तेरा बाघ।"

"मै सुन चुकी, मेरे कान पक गए। यह सड़ा हुआ वाक्य—'तुझे चाहता हू' मैं नही सुनना चाहती, मैं इससे घृणा करती हू।"

"तारा, तुम्हे सुनना ही होगा।"

"कुंवर, तुम चाहे चाहो, चाहे न चाहो, इससे किसीका कुछ बनता-बिगड़ता नही।"

"आह ! कैसी पाषाणहृदय नारी हो ? किसने तुम्हें यह रूप दिया ?"

"मूर्ख विधाता ने, जिसने तुम्हें मर्द और मुझे औरत बनाया।"

"तारा, तुम प्रेम का महत्त्व नही समझती।"

"नही समझती, वह तत्त्व मुझे सिखाया नहीं गया, वह विधर्मियों के सम्भोग की विद्या है, घर-द्वार और राज्य से विहीन सामन्त की दरिद्र कन्या के लिए उपयुक्त नही।"

"तुम्हारी इच्छा क्या है ?"

"जब तक पिता का राज्य वापस न लूगी, किसी विषय को मन मे स्थान न दूगी।"

"यह किस भांति होगा ?"

"मैं नही जानती, पर मेरे सोचने का यही विषय है। मै अकेली स्त्री हू। माना कि शस्त्र-विद्या जानती हूं, पर जब सभी मर्द निश्चिन्त बैठे हैं, मैं अकेली क्या करूगी ?"

"क्या ब्याह की रुकावट यही है ?"

"यही है। प्रेम विलासियों का स्वप्न है, साधको का नही।"

"यदि मैं तुम्हारी मातृभूमि का उद्धार करू ?"

"तो मैं तुम्हें ब्याहूगी—चाहे तुम्हे चाहूं या न चाहू।"

"सच ?"

"सच, यह रूप, यौवन, यह सतीत्व-रत्न सब तुम्हारे चरणों में बलि होगा।"

"अच्छा, ब्याह के बाद प्रेम करोगी ?"

"नही कह सकती, तो भी अपना रूप, यौवन सभी बे-उज्र बेच दूगी। वह तुम्हारी सम्पत्ति होगी।"

"तब यही होगा।"

"तब जाइए कुवर, जब तक प्रतिज्ञा पूरी न करे मेरे सामने न आना।"

—अर्द्ध रात्रि है, चोर की भाति आया हूं, पर प्रेम अन्धा है, अहा ! कैसा छलकता यौवन है ! वैशाखी वायु मे इसकी बहार तो देखो। आकाश में कितने नक्षत्र हैं, पर पृथ्वी मे एक यही है। कैसी सुन्दर है, बेसुध सो रही है, कैसी विशाल आंखें, भवें ! अहा ! चिकने केश, निखरा हुआ रग, बलिष्ठ और कोमल शरीर, वक्षस्थल का उभार, फडकते होठ, मानो चुम्बन माग रहे है, यह कम्पित वक्षस्थल, मानो आलिगन माग रहा है—है, पैर मे क्या अड़ गया···

"कौन ?"

"प्रिये, चरणो का दास।"

"कुवर, तुम इस समय यहा ?"

"प्रिये, क्षमा।"

"एक क्षण भी बिना ठहरे चले जाओ।"

"नही तारा, मैं बिना इच्छा पूर्ण किए न जाऊगा।"

"नीच, कापुरुष, कुमार्गी—मेवाड़-कुल-कलकी, धिक्कार है ! तू चोर की भाति छिपकर कन्या के शयन-गृह मे घुस आया है !"

"तारा, प्रेम अन्धा है।"

"फिर कहती हू चले जाओ।"

"वरना···?"

"वरना प्राण जाएगे।"

"मैने द्वार बन्द कर लिए है, तुम्हे कौन बचाएगा ?"

"अरे मूढ, क्षत्रिय-बाला स्वय रक्षा करती है, क्या तुम जानते हो ?"

"नही प्रिये, एक बार इच्छा-पूर्ति कर दो।"

"तब लो।" (तलवार का प्रहार)

"तारा, ठहरो, दूसरा…"

"अरे पतित, अब नही…"

"क्षमा करो, निहत्थे…"

"अरे घृणित चोर…"

"यह आखेट मेरा है।"

"क्या कहा, तुम्हारा इतना साहस ?"

"तुम कौन हो इतने गर्वीले ?"

"अरे, तुम कौन हो इतने सुन्दर, कोमल और निर्भय ?"

"पहला प्रश्न मेरा है।"

"तब सुनो, मैं पृथ्वीपाल हूं।"

"मेवाड़ के राजपुत्र ?"

"हा वही, तुम कौन हो ?"

"इससे प्रयोजन नही, आखेट तुम ले जाओ।"

"वाह, परिचय तो देना पड़ेगा।"

"मुझे क्षमा करो, कुमार।"

"अरे यह कैसी भाषा ! मुझे ही तुम क्षमा करो, आखेट तुम ले लो।"

"नही, वह तुम्हारा है।"

"मन में शका होती है, पर तुम स्वय ही परिचय दो।"

"मैं तारा हूं।"

"वाह, राजकुमारी ! अच्छा मेल हुआ ! यह आखेट तो मेरा है, मैं तुम्हारा आखेट हू।"

"कुमार ! मेरी प्रतिज्ञा तो राजपूताने भर में प्रख्यात है, आप इस प्रकार की चर्चा न करें; अपने रास्ते जाए।"

"कुमारी, आज ही वह प्रतिज्ञा पूरी होगी।"

"क्या यह सत्य है ?"

"आज मुहर्रम है, अभी तीन पहर दिन शेष है। मुसलमान सब मुहर्रम में लग रहे हैं, मेरे पाच सहस्र शूर छिपे तैयार खड़े हैं, केवल एक घण्टे का मार्ग है। क्या तुम स्वयं तमाशा देखना चाहती हो ?"

"सहर्ष।"

"तब चलो, क्या पिता से आज्ञा लोगी ?"

"आवश्यकता नही।"

"तब चलो।"

"कुमा री, समस्त सेना कोट के बाहर खाई में छिपी रहने दो, हम लोग दुर्ग में चलेंगे।"

"अकेले ?"

"क्या भय लगता है ?"

"नही कुमार, तुम्हारे साथ भय !"

"कुमारी, तुम्हारा असली आखेट तो वही है।"

"तब चलो।"

"विजयसिंह !"

"महाराज !"

"संकेत का शब्द सुनते ही दुर्ग में बलपूर्वक घुस पड़ना।"

"जो आज्ञा।"

"कुमारी !"

"कुंवर !"

"चलो।"

"चलो।"

"कुमारी, तुम्हारा अश्व बड़ा चपल है, इसे तनिक वश में रखो, नही तो नागरिक लोग इधर ही देखने लगेंगे, यह शत्रुपुरी है।"

"कुवर, आज इसे स्वच्छन्द विचरण करने दो।"

"क्षणभर ठहरकर देखो, कितनी भीड़ है, आज सभी मस्त हो रहे हैं।"

"ठहरो, देखो ये दोनों सवार हमें घूर-घूरकर देख रहे हैं, सन्देह न करने लगें, आओ, उनके निकट चलो।"

"भाई, आज क्या त्योहार है ?"

"तुम लोग परदेशी मालूम होते हो, आज मुहर्रम है।"

"ओह, हमे यह नहीं मालूम था, हम लोग अभी-अभी आ रहे हैं, परन्तु हम लोग क्या यह सब देख सकते है ?"

"अभी सुलतान की सवारी आ रही है, तुम्हे कौन रोकता है, खुशी से देखो।"

"सच, सुलतान के दर्शन तो हमें अनायास ही हो जाएगे। अरे, यह सुलतान की सवारी आ रही है !"

(कान मे) "कुंवर, यही समय है।"

"कुमारी, क्षणभर ठहरो, आओ निकट ठहरो। आओ, उस घर की आड़ में खड़ी हो जाओ।"

(एक तीर छांटकर) "यही यथेष्ट होगा। कुंवर, अपने आखेट को मैं ही विद्ध करूंगी।"

"और कौन यह साहस करेगा कुमारी ! पर सुलतान को ठीक पहचान लेना।"

"वही न, जो श्वेत अश्व पर सवार है ?"

"वही जिसकी हरी पगड़ी में हीरा चमक रहा है।"

(तीर धनुष पर सन्धान करके) "कुंवर, देखना, सूअर विद्ध होता है या नही।"

"तुम निर्भय बाण छोड़ो कुमारी।"

"वह मारा, तीर सुलतान की छाती के आर-पार हो गया ! वह घोड़े से गिर गया ! हलचल मच गई। देखो वे इधर ही आ रहे हैं ! कुमारी, अपना बर्छा संभाले रहो। मेरे बायें कक्ष से दूर न रहना। सीधी बढ़ी चलो, अभी फाटक खोलना है।"

"कुंवर, सावधान !" (एक यवन को बर्छे से मारती हुई)

"कुमारी, सावधान !" (तलवार से एक सिपाही को काटकर)

"कुंवर, बढ़े चलो !"

"आह, द्वार पर मस्त हाथी खड़ा है, सारी सेना दौड़ी आ रही है।"

"चिन्ता नही !" (बढ़कर एक ही तलवार के वार से हाथी की सूंड काट डालती है। हाथी चिघाड़ता भागता है। झटपट द्वार खोलकर—)

"विजयसिंह !"

(सेना का दुर्ग में प्रवेश, भयानक मार-काट, दुर्ग-विजय)

"तारा पुत्री, ये मेवाड़ के राजकुमार पृथ्वीपाल हैं, इन्हें प्रणाम करो। इन्होने सुलतान को मारकर तुम्हारे पिता का राज्य उद्धार किया है।"

"पिताजी, मैं इनका यश सुन चुकी हूं।"

"राजकुमार, यही मेरी कन्या तारा है, मुझ दरिद्र के मस्तक का मुकुट, मेरे जीवन की डोर। तारा !"

"पिताजी !"

"तुम्हे अपनी प्रतिज्ञा याद है ?"

"जी हा, पिताजी !"

"कुंवर, तुम्हे मैं जामाता बनाता हूं, यदि तुम दरिद्र का यह दान स्वीकार करो। मैं तो नही, पर तारा तुम्हारे योग्य है।"

"महाराज, यदि आपकी पुत्री स्वीकार करें......"

"वह तो कर चुकी। हाथ आगे लाओ पुत्री, तुम भी आगे बढ़ो पृथ्वी, मेवाड़ में वीर, मैंने तुम्हें अपनी पुत्री दी।"

"पिंता, हम आपको प्रणाम करते है।"

"दोनों चिरंजीव रहो; सुपुत्र और सुयश के भागी बनो।"

# नवाब ननकू

'नवाब ननकू' एक भावकथा है, जिसमें चरित्र और आचार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। कहानी में कुल तीन मुख्य पात्र हैं। राजा साहब, एक शराबी-कबाबी-वेश्यागामी-लम्पट रईस, जिन्होंने इसी काम में अपनी सारी सम्पत्ति फूंक दी और अब दारिद्रय और रोग का भोग भोग रहे हैं। दूसरी है एक विगलितयौवना वेश्या, और तीसरे हैं एक रईस के औरस से उत्पन्न वेश्यापुत्र, जो अपने को नवाब समझते हैं। कहानी में तीनों दोस्तों की एक मुलाकात का रेखाचित्र है। मुलाकात में जीवन के आगे-पीछे के समूचे जीवन की स्पष्ट झांकी अंकित करने में लेखक ने अपनी अपरिसीम कथा-निर्माण-कला का परिचय दिया है। इससे भी अधिक अपनी उस विश्लेषण-सामर्थ्य को मूर्त किया है—जब कि वह चरित्र को आचार से पृथक् मानता है। तीनों ही पात्र हीन चरित्र हैं। परन्तु उनके हृदय की विशालता, विचारों की महत्ता, भावों की पवित्रता ऐसी व्यक्त हुई है कि बड़े से बड़ा सदाचारी भी उसकी समता नहीं कर सकता। पूरी कहानी पढ़कर तीनों में से किसी पात्र के प्रति मन में विराग और घृणा नहीं होती, आत्मीयता और सहानुभूति के भाव पैदा होते हैं। आचारहीन व्यक्ति भी उच्च चरित्र वाले होते हैं। तथा आचार और चरित्र में मौलिक अन्तर क्या है—यह गम्भीर मनोवैज्ञानिक और आचारशास्त्र-सम्बन्धी नया दृष्टिकोण लेखक ने कहानी में व्यक्त किया है।

सरदी के दिन और सनीचर की रात, कल इतवार। न दफ्तर जाने की फिक्र न किसी काम की चिन्ता। बस, बेफिक्री से खाना खाकर जो रज़ाई में घुसे तो अम्बरी तमाखू का कश खींचते-खीचते ही अण्टागफील हो गए।

मगर उस मीठी नीद में शुरू मे ही विघ्न पड़ गया। नीचे कोई कर्कश स्वर में चिल्ला रहा था—बाबू साहब, अजी बाबू साहब! उस वक्त आराम में यों खलल पड़ने से तबियत झल्ला उठी। क्या मज़े की झपकी आई थी! मैंने उठकर खिड़की से सिर निकालकर कहा—कौन है भई इस वक्त?

"अजी हम है नवाब साहब। गज़ब करते हैं आप भाई साहब! अभी लम्हा भर हुआ है सूरज छिपे, और आपके लिए आधी रात हो गई! चीखते-चीखते गला फट गया। मुहल्ला सिर पर उठा डाला।"

बड़ा गुस्सा आया उस नवाब के बच्चे पर। जी में आया, कच्चा ही चबा जाऊं। परन्तु ज़ब्त करके कहा—कहिए नवाब साहब, इस वक्त कैसे?

"अजी, दरवाज़ा तो खोलिए, या गली में खड़े ही खड़े राग अलापूं।"

मन ही मन दांव-पेच खाता नीचे उतरा और कुण्डी खोली। नवाब साहब चुपचाप पीछे-पीछे ज़ीना चढ़कर ऊपर आए, आते ही मसनद पर बेतकल्लुफी से उठग गए। कहने लगे—खुदा की मार इस सरदी पर। हड्डिया तक ठण्डी पड़ गई। मगर उस्ताद, खूब मज़े मे आप मीठी नींद ले रहे थे।

मैंने कहा—आपके मारे कोई सोने पाए तब तो। कहिए, इस वक्त कैसे तकलीफ की?

नवाब साहब ने बेतकल्लुफी से हंसकर कहा—यों ही, बहुत दिन से भाभी साहिबा के हाथ का पान नही खाया था, सोचा: पान भी खा आऊं और सलाम भी करता आऊ।

गुस्सा तो इतना आ रहा था कि मर्दूद को धकेल दूं नीचे। मगर मैंने गुस्सा पीकर कहा—पूरे नामाकूल हो तुम। कल इतवार था। कल यह सलाम की रस्म पूरी नही कर सकते थे, जो इस वक्त आराम मे खलल डाला?

नवाब साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। जेब से सिगरेट का बक्स और दियासलाई निकालकर एक होंठो में दबाई, दूसरी मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—खैर, सिगरेट तो पिओ और गुस्सा थूक दो। हां, चालीस रुपये मेरे हवाले करो और इसे रखो संभालकर।

उन्होने बगल से पोटली निकालकर मेरे आगे सरका दी।

मैंने कहा—यह क्या बला है, और इस वक़्त रुपयों के बिना कौन कयामत बरपा हो रही थी?

नवाब साहब को भी गुस्सा आ गया। कहने लगे—कयामत नहीं बरपा हो रही थी तो मैं यों ही झख मारने आया हूं इस वक्त? हज़रत, यह मेरी भी पीनक का वक्त था।

"मगर इस वक्त रुपये तुम क्या करोगे?"

"फेंक दूगा सडक पर, तुम्हे इससे मतलब ?"

"रुपये नही हैं।"

"रुपये न होने की खूब कही, बुलाऊ भाभी को ?"

"भाभी तुम्हारी क्या तोप से उडा देंगी, बुलाओ चाहे जिसको, रुपये नही हैं।"

"समझ गया, बेहयाई पर कमर कसे हुए हो। लाओ, चुपके से रुपये दे दो, अभी मुझे सदर तक दौडना होगा।"

"सदर तक क्यो ?"

"एक बोतल व्हिस्की और गज़क लेने, और क्यो।"

"अच्छा, तो हज़रत को शराब के लिए रुपये चाहिए !"

"जी हा, शराब के लिए, और कवाब के लिए भी। निकालो जल्दी से।"

"कह तो दिया, रुपये नही है।"

"तुमने तो कह दिया, पर हमने तो सुना ही नही।"

"नही सुना तो जहन्नुम में जाओ।"

"कही भी हम जाए तुम्हारी बला से, लाओ तुम रुपये दो।"

"रुपये नही दूगा, अब तुम खसकन्त हो यहां से नवाब।"

"चे खुश। रुपये तो मैं खड़े-खड़े अभी लूगा तुमसे।"

"क्या तुम्हारा कर्ज़ चाहिए मुझपर ?"

"कर्ज़ ही तो मागता हू।"

"मै कर्ज़ नही देता।"

"देखता हू कैसे नही दोगे, बुलाओ भाभी को अपनी हिमायत पर।" नवाब ने गुस्से से आस्तीन चढानी शुरू की।

मुझे बुरी तरह हसी आ गई। कहा—क्या मारपीट भी करने पर आमादा हो ?

"मारपीट ! तुम मारपीट की कहते हो, मैं तुम्हे गोली न मार दू तो नवाब ननकू नही।"

मैंने हसकर कहा—गोली मार दोगे तो फिर रुपया कहां से वसूल करोगे नवाब साहब ?

"बस, इसी बात को सोचकर तो तरह दे जाता हू, निकालो रुपये।"

"लेकिन नवाब, तुम तो कभी नही पीते थे, आज यह क्या बात है ?"

"तो क्या मैं अपने लिए मांगता हूं ? मैंने कभी पी है ?"

"फिर किसके लिए ?"

"राजा साहब के लिए।"

"अच्छा—यह बात है, अब समझा। कोई नई चिड़िया आई है क्या ?"

"राजेश्वरी आई है बनारस से।"

"तो तुम क्यों उस शराबी के लिए झख मारते फिरते हो ?"

"तब कौन झख मारे ! तुम चाहते हो, राजा साहब खुद तुम्हारे दरवाजे पर आकर चालीस-चालीस रुपल्ली के लिए ज़लील होते फिरे ?"

"वे कुछ भी करें, तुम्हें क्या ? जो जैसा करेगा, भोगेगा। जिसने लाखों की ज़मीन-जायदाद, ज़र-जवाहरात, सब शराब और रण्डी-भडुओं में फूक दी, तुम उससे क्यो इतनी हमदर्दी रखते हो ?"

"क्या मै हमदर्दी रखता हूं ?"

"तब ?"

"मैं मुहब्बत करता हूं उनसे भाई, उनकी इज्ज़त करता हू।"

"किसलिए ? आखिर सुनू तो।"

"किसलिए ? सुनो, पहले तो वे मेरे बड़े भाई, दूसरे ऐसे दाता, ऐसे प्रेमी, ऐसे बात के धनी, ऐसे दिल वाले क्रि दुनिया में चिराग लेकर ढूढो तो कही मिल नही सकते।"

"शराबी और रंडीबाज भी क्यों नही कहते ?"

"वह तुम कहो। वे शराब पीते हैं और रण्डियों से आशनाई करते है, इसमें किसीका क्या लेते है ? उन्होंने अपनी लाखों की जायदाद उन्हें दे दी, जिन्हे उन्होने प्यार किया। आज उनका हाथ खाली है, मगर दिल बादशाह है। वे जीते जी बादशाह रहेंगे। मै उन्हें पसन्द करता हूं, प्यार करता हूं, इज्ज़त करता हू। मैं नही बर्दाश्त कर सकता कि वे दुनिया के आगे हाथ फैलाएं।"

"और तुम उनके लिए भीख मांगते फिरते हो।"

"किससे मैंने भीख मांगी है, कहो तो।" नवाब ने तैश में आकर कहा।

"यह अभी तुम चालीस रुपये माग रहे हो ?"

"और यह क्या है ?"

ने सामने की पोटली की ओर इशारा किया।

उसे तो मै भूल ही गया था। मैंने देखा, वह एक जरी के काम का कीमती लहंगा है।

नवाब ने कहा—बेचना चाहूं तो खड़े-खड़े दो सौ मे बेच दूं। तुमसे तो मैं चालीस ही मांग रहा हूं।

"लहंगा क्या राजा साहब ने दिया ?"

"वे क्यों देने लगे ? अम्मी जान का है। राजेश्वरी आज आई थी। मुझे बुलाकर राजा साहब ने कहा—नवाब, हाथ मे इस वक्त कुछ नही है, राजेश्वरी के लिए कुछ खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दो। आंखें उनकी शर्म से झुकी थी, और लाचारी से भीग रही थी। बस, इतनी ही तो बात है।"

"अच्छा और तुम चुपके से घर आए, यह लहगा उठाया और यहा आ धमके ?"

"जी हा, और तुम्हारी नीद हराम कर दी ! बहुत हुआ अब, बस अब लाओ रुपये दो।"

मैंने चुपके से दस-दस के चार नोट नवाब के हाथ पर रख दिए। मेरी आखो मे आसू आ गए, और मैने वह लहंगा उसी तरह लपेटकर नवाब की ओर बढ़ाते हुए कहा—इसे लेते जाओ।

नवाब ने आपे से बाहर होकर चारों नोट फेक दिए। लाल होकर कहा—अच्छा, तो हज़रत मुझे भीख देने की जुर्रत करते है !

"नहीं भाई, ऐसा क्यो सोचते हो, मगर यह लहँगा मैं नही रख सकता।"

"तो तुम्हारे रुपये भी नवाब नही ले सकता। आज राजा कामेश्वरप्रसादसिंह खाली हाथ हैं, और नवाब ननकू अपनी अम्मी जान का लहगा गिरवी रखने पर लाचार है, मगर आप यह मत भूलिए कि वे दोनो सलीमपुर के राजा महाराज नन्दनसिंह के नुतफे से पैदा हुए है, जो तीन बार सोने से तुले थे, और जिन्होने ग्यारह हाथी ब्राह्मणो को दान दिए थे। जिनकी दी हुई जागीरो को सैकड़ो शरीफज़ादों की आस-औलाद आज भोग रही है। इलाके भर मे जिनके पेशाब से चिराग जलते थे।" मैंने खड़े होकर खुशामद करते हुए कहा—वह सब ठीक है नवाब साहब, मगर ये रुपये तुम मेरी तरफ से राजा साहब को नज़र करना।

"हरगिज़ नही, राजा साहब कभी किसीकी नज़र कबूल नही करते। तुम यह लहंगा गिरों रखकर चालीस रुपये देते हो तो दो।"

लाचार मैंने हामी भर ली। मैंने लहगे को उसी तरह लपेटकर रख लिया और

नवाब रुपये जेब मे रखकर उठ खडे हुए ।

मैने कहा—यह क्या नवाब, भाभी का पान बिना खाए और बिना सलाम किए चले जाओगे ?

"हरगिज नही," नवाब ने बैठते हुए कहा—बुलाओ तो उन्हे ।

मैंने पत्नी को नीचे से बुलाया । वे बच्चो को दूध पिलाने और सुलाने की खट-पट मे थी, नवाब को एक लफगा आदमी समझती थी । मेरे पास उसका आना-जाना और चाहे जब रुपये-पैसे ले जाने को वे हमेशा नापसन्द करती थी । उन्होने आकर कहा—इस वक्त मेरी तलबी क्यो हुई है ?

"यह इन नवाब साहब से पूछो ।"

"यही कहे ।"

"पान खिलाइए तो कहूं ।"

"कहो, पान भी मिल जाएगा ।"

"वादे को सनद नही, झपाके से दो बीड़ा वढिया पान ले आइए ।"

पत्नी चली गई और एक तश्तरी में कई बीडे पान लेकर लौटी । उनमे से दो बीड़े उठाकर नवाब ने हाथ मे लिए, अदब से मेरी पत्नी के सामने खडे हुए और जमीन तक झुककर कहा—सलाम बडी भाभी, आपका यह गुलाम नवाब ननकू आपको सलाम करता है, और आपकी दुआ की इस्तुजा रखता है ।

पत्नी मुस्कराई । उन्होने कुछ झेपते हुए कहा—कभी बच्चो को भी नही भेजते नवाब साहब; एक बार भेजो ।

"जो हुक्म बड़ी भाभी, सलाम ।"

नवाब साहब ने और एक सलाम फुकाई और चले गए ।

मेरी नीद बहुत रात तक गायब रही । मै अन्दाजा न लगा सका कि यह व्यक्ति ससार के सब मनुष्यो से कितना ऊचा है !

•

कमरे मे एक ओर अगीठी जल रही थी । राजा साहब पलग पर लेटे थे और एक खिदमतगार धीरे-धीरे उनके पाव सहला रहा था । राजेश्वरी नीचे फर्श पर बैठी छालिया काट रही थी । चादी का पानदान सामने खुला रखा था । राजा साहब गगा-जमुनी की गुड़गुड़ी पर अम्बरी तम्बाकू पी रहे थे और धीरे-धीरे राजेश्वरी से बाते कर रहे थे ।

राजेश्वरी की उम्र चालीस को पार कर चुकी थी। बदन उसका कुछ भारी हो चला था, और माथे पर की लटो मे चादी की चमक अपनी बहार दिखा रही थी। फिर भी उसकी पानीदार आखों और मृदु मुस्कान मे अभी भी मोह का नशा भरा था।

राजेश्वरी ने कहा—सरकार ने यों नज़रें फेर ली, मुद्दत हुई पैगाम तक न भेजा। सुनती रहती थी, हुजूर के दुश्मनो की तबियत खराब रहती है। आखिर जी न माना, बेहया बनकर चली आई।

"मुझे निहाल कर दिया तुमने इस वक्त आकर राजेश्वरी, दिल बाग-बाग हो गया। क्या कहू, बहुत याद करता हूं तुम्हें—मगर…"

"हुजूर की नज़रे-इनायत पर मैंने हमेशा फख्र किया है, और मरते दम तक करूंगी।"

"तुम जिओ राजेश्वरी, ईश्वर तुम्हे खुश रखे। यह मूज़ी बीमारी—क्या कहू, अब तो हिलने-डुलने से भी लाचार हो गया हू। पर यह सब उस भगवान् की दया है। फिर मुझे अपनी लाचारी का क्या गम है, जब तुम दुनिया की तमाम खुशी लेकर यहां आ जाती हो।"

राजेश्वरी ने चार बीडा पान बनाकर राजा साहब को अदब से पेश किए। राजा साहब ने पान लेकर मुह मे रखे।

खिदमतगार ने आकर अर्ज़ की—हुजूर, कुवर साहब सलाम के लिए हाज़िर हुए हैं।

"आएं वे"—राजा साहब ने धीरे से कहा।

कुवर साहब ने झुककर राजा साहब को सलाम किया और पैताने की ओर अदब से खड़े हो गए।

राजा साहब ने कहा—चाची को सलाम नही किया बेटे।—कुवर साहब ने आगे बढ़कर राजेश्वरी को सलाम किया, और दो कदम पीछे हट गए।

राजेश्वरी खड़ी हुई। आगे बढ़कर कुवर साहब के पास पहुची, उनके मुह पर प्यार से हाथ फेरा, और दो अशर्फिया निकालकर उनकी मुट्ठी मे ज़बरन थमा दी।

कुवर साहब ने पिता की ओर देखा।

राजा साहब ने कहा—ले लो, और चाची को फिर मुकर्रर सलाम करो।

कुवर साहब ने फिर झुककर सलाम किया। राजेश्वरी ने दोनो हाथ उठाकर

आशीर्वाद दिया। राजा साहब ने इशारा किया और कुवर साहब चले गए।

एक ठण्डी सास खीचकर राजा साहब ने कहा—इस निकम्मे बाप ने अपने बेटे के लिए भी कुछ न छोडा राजेश्वरी; मगर तसल्ली यही है कि ज़हीन है, पेट भर लेगा।

"हुज़ूर ऐसा क्यो फर्माते है! इन मुबारक हाथो से भीख पाकर लोगो ने रियासतें खड़ी कर ली है। दुनिया मे दिल ही तो एक चीज़ है हुज़ूर, भगवान् भी यह सब देखता है। वह उस आदमी की औलाद पर बरकत देगा जिसने अपनी ज़िन्दगी मे सबको दिया ही है, लिया किसीसे भी कुछ नही।"

राजा साहब ने हाथ बढाकर राजेश्वरी का हाथ पकड लिया। बहुत देर तक कमरे मे सन्नाटा रहा। दो पुराने किन्तु पानीदार दिल मन ही मन एक दूसरे को यत्न से सचित स्नेह से अभिषिक्त कहते रहे।

आखिर राजा साहब ने एक ठण्डी सास भरी, और गुडगुड़ी मे एक कश लगाया।

नवाब ननकू हांफते हुए आ बरामद हुए। उनकी नाक पर ऐनक नाक की नोक पर खिसक आई थी। आते ही उन्होने खिदमतगार को एक डाट दी—अरे कम्बख्त, बदनसीब, अंगीठी मे और कोयले क्यो नही डाले, वह बुझ रही है। नवाब साहब जब तक हुक्म न दें, ये नवाब के बच्चे काम न करेंगे। राजा साहब को दौरा हो गया, तो याद रख कच्चा चबा जाऊगा। उठ, जल्दी कोयले डाल।

खिदमतगार चुपके से उठ गया। नवाब ने ही-ही हंसते हुए कहा—देखा राजेश्वरी भाभी, खिदमतगार साले नवाब ननकू के आगे बन्दर की तरह नाचते हैं। मगर मुह पर कहता हूं, बिगाड़ दिया है राजा साहब ने। नौकरों को बहुत मुह लगाना अच्छा नही।

"लेकिन नवाब, उन गरीबों को छह-छह महीने तनख्वाह नही मिलती है, बेचारे मुहब्बत के मारे पड़े है।"

"तो इससे क्या? उनके बाप-दादों ने इतना खाया है कि सात पीढी के लिए काफी है।"

"मगर उन्होंने खिदमत भी तो की है।'

"तो रियासतें भी तो पाई हैं।"

"अच्छा देखू तो, राजेश्वरी के लिए क्या-क्या चीज़ लाए हो।"

"देखिए, और दाद दीजिए नवाब को।"

नवाब ने बोतल बगल से निकाली। और भी बहुत-सा सामान।

"अरे, यह इतनी खटपट किसलिए की, नवाब साहब !" राजेश्वरी ने कहा।

"जी, जैसे आप चिऊंटी के बराबर तो खाती ही हैं ! फिर आई कितने दिन बाद है राजेश्वरी भाभी। जानती हैं, राजा साहब कितना याद करते है। जब राजेश्वरी ज़बान पर चढती हैं, आंखें गीली हो जाती है। अम्मी जान कहती थी, बड़े महाराज का भी यही हाल था, ज़रा-सी बात पर दिल भारी कर लेते थे।"

"देवता थे नवाब साहब।"

"और ये ?"

"ये ; इन्हें पहचाना किसने है अभी।"

"दुनिया ऐसो को कभी न पहचान पाएगी।"

खिदमतगार अंगीठी टच करके रख गया। नवाब साहब ने खुश होकर कहा— यह बात है रामधन, मगर देखो मैंने तुम्हें एक गाली दी है, और ये दो रुपये इनाम देता हूं।

नवाब ने दो रुपये निकालकर रामधन की ओर बढ़ा दिए।

रामधन ने नवाब के पैर छूकर कहा—हुजूर, आपकी गालिया खाकर ही तो जी रहा हू। रुपया-पैसा सरकार का दिया बहुत है।

"मगर यह भी रख लो, महरिया को एक बढिया-सी चुनरी ला देना।"

"वह उस दिन हवेली गई थी सरकार, तो बेगम साहिबा ने जाने क्या-क्या लाद दिया था, गट्ठर भर लाई थी।" नवाब ने तैश मे आकर कहा—अबे, रुपये लेता है या मतिख छांटता है, क्या लगाऊ धौल ?—रामधन ने रुपये लेकर उन्हें और राजा साहब को सलाम किया।

राजा साहब ने हसकर कहा—देखा राजेश्वरी, नवाब का इनाम देने का तरीका।

नवाब खिलखिलाकर हस पड़े। उन्होने कहा—झपाके से तश्तरियां ला, गिलास ला, पैग ला। जल्दी कर।

क्षणभर मे ही सब साधन जुट गए। राजा साहब तकिए के सहारे उठग गए। शराब का दौर शुरू हुआ। नवाब ने गिलास में सोडा और शराब भरकर कहा—

राजेश्वरी, राजा साहब की तन्दुरुस्ती और बरकत के लिए।—तीनो ने हंसती हुई आखें मिलाई और शराब की चुस्किया लेने लगे।

राजेश्वरी ने कहा—इस सरदी में बहुत दौड-धूप की, नवाब साहब !

"मान गई न आप नवाब को, लीजिए इसी बात पर दूसरा पैग।"

"नही नवाब, मैं तो कभी पीती ही नही। बहुत मुद्दत हुई, जब से महाराज की तबियत नासाज़ रहने लगी। आज मुद्दत बाद मुह से लगा रही हू।"

"तो पूरी कसर निकालिए राजेश्वरी भाभी, नवाब को इस ठडी रात मे उस माले ठेकेदार से बहुत मगजपच्ची करनी पड़ी। साला वही रद्दी माल पटील रहा था। मैंने कहा: वह बोतल निकाल जो उस दिन हमारे सरकार की खिदमत में गई थी। और ये कवाब, सच कहता हू राजेश्वरी भाभी, कस्बे मे दूसरा नही बना सकता।"

"वाकई बहुत अच्छे बने हैं, मगर आप तो खाते ही नही नवाब साहब।"

"वाह, खिलाने मे जो मजा है, वह खाने में कहां ? देखा था अम्मी को, यही एक शौक उन्हे मरते दम तक रहा—एक से एक बढकर चीज़ें बनाना और खिलाना।"

"मुझे याद है नवाब, मैं तब बहुत बच्ची थी, आपा के साथ आती थी, वे छोड़ती ही न थी—खीच ले जाती थी। कितना खिलाती थी; क्या कहूं।"

"मगर अब अम्मी तो हैं नही, नवाब उनका नालायक लड़का है, उसने विरासत में अम्मी की वह आदत पाई है। लीजिए, यह पैग तो पीना होगा।"

"मगर उधर तो देखो नवाब, महाराज ने सिर्फ होठो को छूकर ही गिलास रख दिया है, पी कहा ?"

"क्या कहूं राजेश्वरी, तकलीफ देती है, पी नही सकता। डाक्टरों ने भी मना कर दिया है। मगर तुम पियो राजेश्वरी, आज मैं बहुत खुश हूं। लाओ नवाब, राजेश्वरी को एक पेग मै भरकर दू।"

"और हुज़ूर, एक नवाब को भी।"

"अरे, यह कब से ? तुम तो कभी पीते नही थे।"

"आज ही से, अभी-अभी एक पैग पिया है मैंने।"

राजा साहब ने दो पैग भरकर तैयार किए। गिलास में भरकर कहा—लो राजेश्वरी, और तुम भी नवाब।

"वाह हुज़ूर, यो नही, ज़रा-सा जूठा कर दीजिए कि यह जाम पाक तबरुंक हो

जाए।" नवाब ने कहा।

राजा साहब हंस दिए। उन्होने नवाब का हाथ पकड़कर और खीचकर छाती से लगा लिया। फिर आंखों में आसू भरकर कहा—ननकू, मेरे प्यारे भाई! हमारी मा दो थी, मगर वालिद एक थे। फिर भी तुम मेरे सगे भाई हो, ऐसे, जैसा दूसरा मिलना मुश्किल है। और ननकू, मैं सिर्फ प्यार की बदौलत ही जी रहा हू।—उन्होने प्याला होठो से छुआकर नवाब को दिया और नवाब गटागट पी गए। उनकी आखो मे आंसू और होठो मे हसी बिखर रही थी।

नवाब ने कहा—राजेश्वरी भाभी, बहुत दिन से सूने-सूने दिन जा रहे थे। आज तो कुछ जच जाए।

"मगर नवाब, गले में अब सुर तो रहे ही नही।"

"बेसुरा ही सही।"

महाराज ने हसकर कहा—राजेश्वरी, आज नवाब को बहुत मिहनत करनी पड़ी है, उसकी बात रख लो।

"जो हुक्म, मगर मेरी एक अर्ज़ है।"

"कहो।"

"नवाब साहब को जो तबर्रुक बख्शा गया है, वही लौडी को भी इनायत हो।"

"ओह, अच्छा ठहरो, सब्र करो।"

नवाब ने इशारा किया। रामधन तबला-हारमोनियम ले आया।

हारमोनियम नवाब खीच बैठे, और रामधन ने चारो ओर तकिये लगाकर राजा साहब को आराम से बैठाकर तबले उनकी गोद मे रज़ाई मे लपेटकर रख दिए। अम्बरी तमाखू की एक नई चिलम चढ़ा दी। तबले पर एक चोट देते हुए राजा साहब ने कहा—राजेश्वरी, अभी उगलियो पर लकुए का असर नही है, काम दे रही है।

राजेश्वरी ने चुपचाप आखो में प्यार भरकर राजा साहब पर उडेल दिया और आलाप लिया। हारमोनियम पर नवाब की अभ्यस्त उंगलिया नाचने लगी, और तबले पर मृदु मन्द ताल नृत्य करने लगा।

राजेश्वरी की प्रौढ स्वर-लहरी ने वातावरण मे एक प्यास उत्पन्न कर दी। यह वैसी न थी जैसी वासना और यौवन की आंधी के झोको में मिली रहती हैं। यहां तीन प्रेमी विश्वस्त, पुराने और ऊचे हृदय, अपने भौतिक आनन्द की चरम

अनुभूति ले रहे थे। वे लोग आप ही अपनी कला पर मुग्ध थे, आप ही अपनी तारीफ कर रहे थे, आप ही अपने मे पूर्ण थे।

"तो हुज़ूर, अब कब ?"

"जब मर्ज़ी हो राजेश्वरी।"

"तबीयत होती है कि कुछ दिन कदमो मे रहूं।"

"मैं भी चाहता तो हू राजेश्वरी, पर तुम्हारी तकलीफ का ख्याल करके चुप रह जाता हू। देखती हो, मकान कितना गन्दा है, सिर्फ दो ही खिदमतगार है। इन्हें भी महीनों तनखाह नही मिलती, पर पड़े हुए है। तुम इन तकलीफो की आदी नही हो।"

"मगर हुज़ूर, क्या मै उन खिदमतगारो से भी गई-बीती हू ?"

"नही, नही, राजेश्वरी, मै तुम्हे जानता हूं।"

"मगर हुज़ूर अपने को नही जानते। मेरी वह कोठी, जायदाद, नौकर-चाकर सब किसकी बदौलत है ? हुज़ूर ने जो पान खाकर थूक दिया उसकी बदौलत। अब हुज़ूर गरीब हो गए तो पुराने खादिम क्या बेगाने हो जाएगे ?"

राजेश्वरी की आखें भर आई। कुछ ठहरकर उसने कहा—शर्म के मारे मैं खिदमतगारो को नही लाई, और इस टुटहे इक्के पर आई हू। मै कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि मालिक जब इस हालत मे हो तो उनकी बांदिया ठाठ दिखाए ?

"नही-नही, राजेश्वरी, यह बात नही। पर मैं अपनी आखो से तुम्हे तकलीफ पाते देख नही सकता। कभी देखा ही नही।"

"इसीसे हुज़ूर, मुझे अभी ज़बर्दस्ती भेज रहे हैं, मेरी नही सुनते ?"

"इसीसे राजेश्वरी।"

"और इस लौंडी का कभी कोई तोहफा भी नही कबूल करते ! उस बार जब ज़नाना महल नीलाम हो रहा था, मैने कितनी आरज़ू की थी कि मुझे रुपया चुकता कर देने दीजिए, पुरखों की यादगार है। सब रियासत गई, मगर रहने का महल—आप मेरे आंसुओ से भी तो नही पसीजे हुज़ूर, आप बड़े बेदर्द है।"

राजेश्वरी फूटकर रो पड़ी, और राजा साहब के सीने पर गिर गई। राजा साहब उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। फिर कहा—तुम भी बच्ची हो गई हो राजेश्वरी, अब भला उतना बड़ा महल मैं क्या करता ? अकेला पंछी। फिर उसमें

अब खुल गया ज़नाना अस्पताल, कितने लोगो का भला होता है। बोर्ड ने खाम-खाह् मेरा नाम अस्पताल के साथ जोड़ दिया है।

"जी हां, खामखाह ही। वह लाखो की स्टेट जो कौड़ियो मे दे दी। और अब हुज़ूर, इस किराये के मकान में बहुत खुश है।"

"बहुत खुश, राजेश्वरी, बहुत खुश। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। लेकिन बहुत देर हो रही है राजेश्वरी, गाड़ी पकड़नी है। स्टेशन काफी दूर है, और रास्ता बडा खराब है। तुम्हारा इक्का आ गया?"

"धक्के दीजिए मुझे, बुढिया जो हो गई हूं, अब आप यही तो करेगे।"

राजा साहब असयत होकर पलग से आधे उठ गए। राजेश्वरी को खीचकर छाती से लगा लिया। फिर प्यार से उसके गगा-जमुनी बालों की लटो को उगलियों में लपेटते हुए कहा—बुड्ढा-बुढिया कौन होता है राजेश्वरी, मेरी आखो में तुम वही, नये केले के पत्ते-से रूपवाली, अछूते यौवन और अपार प्यारवाली, मेरे दिल और दिमाग की तरावट राजेश्वरी हो। तुम या मै भले ही बूढ़े हो जाए, लेकिन इन आखों में झांककर जिसने तुम्हे देखा है, वह बूढा नही। और तुम्हारे भीतर बैठकर जो एक-एक मोती तुम्हारी आखो से सजाता जा रहा है, वह भी बूढा नही।

राजेश्वरी धीरे से राजा साहब के मुंह के बिल्कुल पास फर्श पर बैठ गई। रामधन अम्बरी तमाखू चढाकर गुडगुडी रख गया। राजा साहब चुपचाप तमाखू पीने लगे। तमाखू की खुशबू ने कमरे को मस्त कर दिया।

राजेश्वरी ने कहा—हुज़ूर वादा-वक्फ हो।

राजा साहब ने भौहे सिकोड़कर राजेश्वरी की ओर देखकर कहा—वादा?

"जी।"

"क्या?"

"तबर्रुक।"

"ओह, भूली नही राजेश्वरी!"

"भूलने की एक ही कही, कल से आस लगाए हू। नवाब के सामने फिर नही कहा।"

राजा साहब कुछ देर चुपचाप गुड़गुड़ी पीते रहे। फिर कहा—ज़रा और पास आओ तो राजेश्वरी।

राजेश्वरी बिल्कुल राजा साहब के मुंह के पास खिसक गई।

राजा साहब ने गुड़गुडी की सोने की मूनाल उसके होठों में लगाकर कहा—एक कश खीचो राजेश्वरी।

"लेकिन, लेकिन हुज़ूर..."

"ऐन खुशी होगी, खीचो एक कश।"

राजा साहब की आंखो में प्यार का सारा ही रस उमड़ आया। राजेश्वरी ने आनन्द-विभोर होकर गुडगुड़ी से कश खीचा।

"खुश हुई अब राजेश्वरी?"

"ओह हुज़ूर, कही खुशी से मेरी छाती न फट जाए। हुज़ूर ने गुड़गुड़ी-खास इनायत करके मेरी सात पीढियों को तार दिया।"

राजा साहब ने खिदमतगार से कहा—रामधन, चिलम ठण्डी कर दे और गुड़गुड़ी उस अखबार में लपेटकर इक्के मे रख आ।

राजेश्वरी का मुह सूख गया। उसने कहा—यह आप क्या कर रहे है?"

"मेरा दिल बाग-बाग है, तुम दुलखो मत।"

"मगर हुज़ूर..."

"मैं हुक्म देता हू—मत बोलो।"

राजेश्वरी का सिर नीचे को झुक गया। उसने खड़े होकर, झुककर राजा साहब को सलाम किया और रोती हुई चली गई। राजा साहब चित अपने पलग पर पत्थर की मूर्ति की भाति निश्चल-निर्वाक् पड़े रहे।

"यह क्या तमाशा है रामधन, महाराज मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू पी रहे हैं। गुड़गुड़ी-खास क्या हुई?" नवाब ने कमरे मे आते ही हैरान होकर पूछा। रामधन चुपचाप खड़ा रहा। उसे बाहर जाने का इशारा करते हुए राजा साहब ने मुस्करा-कर कहा—यहां आओ नवाब, मैं बताता हूं।

नवाब ननकू एकदम पलग के पास जा खड़े हुए। राजा साहब ने हंसकर कहा—बैठो।

"मगर मैं पूछता हूं, गुड़गुड़ी-खास क्या हुई?"

"बैठो तो कहूं।"

नवाब ने बैंठकर कहा—कहिए।

राज़ा साहब ने रजाई से हाथ बाहर निकालकर नवाब का हाथ पकड़ लिया। कहा—नाराज न हो नवाब, राजेश्वरी को दे दी।

"क्या उन्होंने मागी थी ?"

"नही, मगर उसे खाली हाथ कैसे जाने देता। तुम देखते ही हो, खानदान की वही एक चीज़ मेरे पास बची थी।"

नवाब कुछ देर होंठ चबाते रहे, फिर बोले—मगर आप मिट्टी की गुड़गुडी में तमाखू नहीं पी पाएंगे। मैं गुड़गुड़ी लाता हूं।

"कहां से ?"

"घर से।"

"कहां पाई ?"

"अम्मी जान की है, बड़े महाराज ने बख्श दी थी। मेरे पास यह अब तक पाक धरोहर थी। अब आज काम आएगी।"

राजा साहब ने कहा—बड़े महाराज ने जो चीज बख्श दी, वह मैं वापस कैसे ले सकता हूं ?

"तो अब हुजूर नवाब को जीने न देंगे !"

राजा साहब हस दिए। मीठे स्वर से बोले—खैर, इस अम्र पर पीछे गौर कर लिया जाएगा। पर मिट्टी की गुड़गुडी में तम्बाकू बहुत मीठा लगता है नवाब। हां, यह कहो, रात सामान कैसे जुटाया था ? मैं जानता हूं तुम्हारे पास छदाम न था।

"जुट गया यों ही। नवाब हूं, कोई अदना आदमी नही।"

"मगर सच-सच कहो।"

"झूठ से फायदा ? चालीस रुपये बाबू साहब से लिए थे।"

"बड़ी तकलीफ दी उन्हे। अब ये रुपये दिए कैसे जाएं ?"

"जल्दी नहीं है सरकार, रहन पर लाया हूं। यों ही नहीं, जब हाथ खुला होगा दे देंगे।"

"रहन क्या रखा ?"

"एक अदद था।"

"क्या अदद, बताओ।"

"आप तो धांधली करते हैं, आपको मतलब ?"

"तुम्हे मेरी कसम नवाब।"

"ओफ !"

"कहो, कहो।"

"अम्मी का लहंगा था।"

राजा साहब निश्चल पड़ गए। उनकी आंखों की कोर से आंसू बह रहे थे और उनका कांपता हुआ हाथ नवाब के हाथ में था।

# द्वितीया

प्रथम पत्नी की मृत्यु के उपरान्त पति का हृदय व्यथित था, फिर भी उन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा।
विवाहित पति और क्वांरी युवा बालिका के मानसिक घात-प्रतिघात का हृदय-ग्राही वर्णन इस कहानी में है।

उस दिन को सिर्फ चार मास और कुछ दिन व्यतीत हुए थे, इसी बीच में चन्द्रनाथ फिर से हल्दी चढ़ा और कंगना बाधकर एक मुग्धा बालिका को ब्याह लाए।

बालिका का नाम था आनन्दी। आयु चौदह वर्ष, रंग मोती के समान, कण्ठ-स्वर सितार की मूर्छना जैसा, चाल भीता-चकिता हरिणी जैसी, उगलिया चम्पे की कली के समान, उत्तप्त स्वर्ग की मानो सजीव प्रतिमा। परन्तु मुख? मुख हमने देखा नही। एक बात देखी—पास-पडोस, मुहल्ले और कुटुम्ब की, सभी जाति, आयु और स्थिति की स्त्रिया झुण्ड की झुण्ड उस मुह को देखने गई, अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार भेट चढ़ाई और बालिका का मुह देखा। वे नेत्रों में रहस्य का हल्का गुलाबी रग लिए लौट रही थी; वह रग भला किस वस्तु की छाया थी? उसी मुह की।

चन्द्रनाथ ने भी सुयोग पाकर उसे देखा। उस देखने के मूल्य में उन्हें मुह-मांगे दाम अर्थात् 'हीरो का हार' देना पड़ा। स्तब्ध रात्रि मे, विमल चादनी में, चन्द्रनाथ ने वह उत्फुल्ल लज्जावान् मुख देखा। वे हंसे नही, बोले नहीं। कम्पित हाथों से घूघट हटाया, फिर चुपचाप वैसे ही ढक दिया और उठकर चले आए। उस दिन वे दिन-भर सोते रहे अथवा यों कहिए कि आंख बन्द किए पड़े रहे।

क्यों? उन हीरों के मूल्य में देखने योग्य उस मुख को नेत्रो से हटाकर हृदय के गम्भीर प्रदेश मे, जहां ऐसी अमूल्य निधि सुरक्षित रखी जाती है, पहुचने की चेष्टा मे वे बहुत प्रयत्न करने पर भी विफल ही रहे थे। उस रूप की प्रभा, जो

वे आखों में भर लाए थे, भीतर प्रवेश पाती ही न थी। आंख खोलते ही वह बाहर खिसककर गिर पड़ती थी। विवश चन्द्रनाथ दिन-भर उस रूप-स्मृति को आखों की पलकों मे छिपाए पड़े रहे। हृत्पट न खुले या कब खुले, हमारे लिए कहना कठिन है।

एक बात और हुई, एक दिन ननद के बड़े आग्रह से कांपते-कांपते पेन्सिल हाथ मे लेकर बड़े-बड़े टेढे अक्षरों में आनन्दी ने अपने हस्ताक्षर कर दिए थे। उन्हे उसी समय दौड़कर बहिन ने चन्द्रनाथ के हाथ में ला धरा। चन्द्रनाथ कुछ बोले नहीं, हिले भी नही; जड़वत् बड़ी देर तक उन टेढ़े अक्षरो को देखते रहे। फिर उन्होने एक बार मर्मभेदिनी दृष्टि से अबोध बहिन को देखा, और फिर मसनद के सहारे उठंग कर सो गए। बहिन भाई के हास्य का यह सुयोग खोकर और उस दृष्टि से डरकर भीतर भाग गई।

चन्द्रनाथ की अवस्था पैंतीस वर्ष की थी। वे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी साहित्य के प्रोफेसर थे। उन्होंने इंगलैण्ड से ससम्मान डी० एल० का प्रतिष्ठित पद प्राप्त किया था। वे अतिशय कान्तिवान्, विनम्र, हास्यवदन, सुन्दर, बलिष्ठ, नीरोग, चरित्रवान्, गम्भीर और गण्यमान्य विद्वान् थे। सभा-सोसायटियों की वे जान थे, कालेज के छात्रों के प्रिय और मनभावन गुरु, मित्रों मे सम्यहास्य और सविवेक विनोद की प्रतिमा थे।

आनन्दी थी एक दरिद्र और अपढ़ परिवार की मातृहीना बालिका। वृद्ध पिता का नीरस प्यार और विमाता का विष-प्यार पाकर उसने बाल-काल के दिन काटे थे। मा को उसने देखा था, उसकी स्मृति भी उसके मन में थी। वह चाहे जब तनिक मनोवेदना प्राप्त करते ही 'मां' कहकर रो उठती थी। चिर-परलोकगामिनी मां के इतने निकट वह मुग्धा सुन्दरी बालिका अब भी, विवाहिता होने पर भी, थी। जीवन का यह प्रबल परिवर्तन, सौभाग्य का यह उदय, रानियों जैसा शृंगार, आदर और प्यार उसे उस मां से दूर न कर सका था।

इस प्रकार चन्द्रनाथ अपनी द्वितीया वधू से आयु में ढाई गुने अधिक, विद्या में अनन्त तक अधिक, गम्भीरता और अनुभव में सहस्र गुणा अधिक, शरीर-परिमाण में चतुर्गुण और विस्तार में त्रिगुण अधिक थे; किन्तु रूप में चतुर्थांश और हास्य-चापल्य में अष्टमाश तथा लाज में दशांश थे।

यह बालिका मेरी धर्मपत्नी है, सहधर्मिणी है, यह स्मरण करते ही और इस

तथ्य पर विवेकपूर्ण दृष्टि डालते ही प्रथम बार तो वे सहम गए थे। अब वे केवल चमक भर उठते थे।

इतना अधिक मूल्य चुकाकर एक बार उस मुख का दर्शन करने के बाद चन्द्रनाथ फिर उसे बहुत यत्न करने पर भी न देख सके। उसकी एक किरणमात्र देखने को उन्हे पचासो बार घर में व्यर्थ आना पडता, अनेक अस्वाभाविक चेष्टाए करनी पडती, विविध हास्य-कलाओ का आयोजन करना पड़ता, जो कुसमय और अनभ्यास के कारण बीभत्स बन जाती।

बालिका में और कुछ चाहे न हो, पर पति की इस चेष्टा को समझने की मानो दैवी शक्ति थी। वह अपने समस्त यत्न से अपने शरीर के अणुमात्र अंग को भी उनकी दृष्टि से बचाने के लिए सचेष्ट रहती। चन्द्रनाथ की साध्वी माता उसका दुर्ग थी, वह उन्हींके अचल मे प्राय. छिपी रहती थी।

ममता, त्याग और प्रेम के जिन उच्च गुणो का माता शब्द मे तात्त्विक अस्तित्व है, वह सब भौतिक रूप मे इस पवित्र और पूज्य माता मे था। अनाथा, मातृहीना बालिका ने अचानक उनकी गोद पाकर अपने अब तक के जन्म को कृतार्थ माना। उसे जन्म देकर जो मातृ-मूर्ति विलीन हो गई थी, वह उसे अनायास ही मिल गई। उसके लिए वही माता पृथ्वी पर उस समय सबसे अधिक घनिष्ठ और सुपरिचित थी।

परन्तु चन्द्रनाथ ? उसके धर्मपति ? वे तो उससे बहुत दूर थे। उसने उस समय घूघट के आवरण मे छिपकर गुरुजनो के आदेश-पालन से विवश होकर बड़ी कठिनाई, बड़े साहस से, अपना कण्टकित हाथ चन्द्रनाथ के हाथ न देकर विमूढ़ की नाई अग्नि-प्रदक्षिणा अवश्य की थी; पर वे उसके पति है, पति-पत्नी का सम्बन्ध क्या होता है, उसके शरीर और आत्मा पर उसके पति का हिन्दू-समाज की रूढ़ि के अनुसार असाध्य अधिकार है, यह उसे कुछ भी मालूम न था।

अलबत्ता, अपनी विवाहिता सखियो से उसने अस्पष्ट रूप मे सुना था कि पतिगण विवाह के बाद कैसे असाध्य और अश्लील व्यापार करते है। इस बात से वह बहुत ही भयभीत, चिन्तित और घबराई थी। परन्तु यहां माता को पाने पर वह बहुत कुछ निश्चिन्त हो गई थी। उसे विश्वास था—माता के रहते मुझपर कौन अत्याचार करेगा ? किसका ऐसा साहस है ? वह दिनभर माता के साथ रहती,

खाती और रात को उसीकी खटिया पर सो रहती। इस विषय मे उसने अपने हठ के आगे घर भर की महिलाओं को परास्त कर दिया था।

चन्द्रनाथ पूर्वपत्नी की मृत्यु के बाद बाहर की मर्दानी बैठक में अकेले सोते थे। रात्रि में अन्त'पुर मे आने का वे दिन की भाति साहस न कर सकते थे। उनका प्रबल विवेक फिर भी जागरित तो था ही, पर वे अतिशय व्याकुल, अनिद्र और सन्ताप से रात काटते थे। इस विवाह से पूर्व कभी उनकी ऐसी दुरवस्था नही हुई थी। वे सोचते थे, पन्द्रह वर्ष पूर्व जब मेरा प्रथम विवाह हुआ था, तब वह अवसर पाते ही कैसी चितवन से घूघट के बारीक आवरण मे मुझे देखा करती थी। वह हीरे के समान सतेज दृष्टि और दुर्दम्य आनन्द से उत्फुल्ल होठ आज भी मेरे मनो-मन्दिर मे वैसे ही ताजे रहते है। यह तो उस तरह नही देखती, सदैव छिपती है, जैसे हरिणी शिकारी से भय खाती है! क्या इसके हृदय मे मेरे लिए प्रेम नही? यह मुख उसकी अपेक्षा कितना सुन्दर है? वह मुख चौदह वर्ष के काल मे, सर्दी-गर्मी, दु ख-सुख, क्रोध-विराग प्राप्त करके कितना फीका, कितना साधारण बन गया था। उसकी अपेक्षा यह कितना नवीन, सुन्दर, मधुर, अमूल्य है! ओह! इसकी कभी सभावना नही थी। परन्तु विचारधारा और हृदय कहा दौड़ा जा रहा है। ओह—ओह! वहां अति दूर! अरे! यह तारुण्य, यह सौन्दर्य, यह तप्त स्वर्ण-कान्ति, अरे इसमे डूब। अभागे हृदय! किस अधेड़ को यह सौभाग्य प्राप्त होता है? सौभाग्य! चन्द्रनाथ तड़प उठे। सौभाग्य शब्द ठठाकर मानो प्रेत की तरह हंस पड़ा। वह निर्जीव, निस्पृह, निश्चेष्ट मुख अर्थहीन नेत्रों को खोलकर उन्हे देखने लगा। चन्द्रनाथ विकल होकर रोने लगे। रोते-रोते ही वे सो गए।

प्रातःकाल होते ही उन्होने हठात् हरिद्वार जाने का प्रस्ताव माता से कहा। वे कुछ कह भी न पाई थी कि उन्होंने कहा—झटपट उसके साधारण कपड़े ट्रंक मे रख दो, गाड़ी मे देर नहीं है। माता अवाक् रह गईं। वे पुत्र के और भी निकट आकर बोली। अकेली बहू को कैसे ले जाओगे, वह कैसे बोलेगी?

चन्द्रनाथ ने क्रुद्ध स्वर मे कहा—क्या वह गूंगी है!

क्रोध के प्रवाह को छितराकर माता ने कहा—बेटे! पराई बेटी है, नई आई है, बच्ची है, सीधी-सादी। एक दिन में तो सब बातें होती नही?

चन्द्रनाथ ने कहा—तुम भी चलो।

माता चुपचाप भीतर चली गई।

बालिका ने सुना। वह थर-थर कांपने लगी। उसने कहा—अम्मा जी ! तुम चलोगी ?

"न बेटी। तुम सैर-सपाटे में रहोगे, मेरे पैरो मे इतना दम कहा ? फिर मेरी तबियत भी ठीक नही। तुम मेरे नाम के दो गोते गगाजी मे जरूर लगा आना।"

वधू ने माता के पैरो मे गिरकर रोते-रोते कहा—अम्मा ! उनके साथ अकेले मुझे कही मत भेज देना !

"बेटी ! उनसे तुझे भय क्या है ? वे ही तेरे रक्षक, तेरे स्वामी, तेरे सब कुछ है। अब तू उन्हे पहचान; उन्हे सुखी कर और सुखी हो ! इससे मेरी आत्मा भी तृप्त होगी।"

बालिका कुछ भी न समझकर बोली—नही, मैं न जाऊगी।

चन्द्रनाथ ने सुनकर अपने असाध्य अधिकार का प्रयोग किया। उनकी आज्ञा की अवहेलना करने का घर-भर मे किसीका साहस नही, अधिकार भी नही था। घर के आबाल-वृद्ध सभीसे एक यही बात सुनकर बालिका को जाना पड़ा, जिस तरह पिता के घर से यहा आना पडा था। वह सोचने लगी : ओह ! स्त्री-जाति का भाग्य भी कैसा है ! वह अतिशय भयभीत, अतिशय निरानन्द और अति क्रुद्ध-भाव से पति के पीछे-पीछे चली।

पुण्य-सलिला जाह्नवी का सौदर्य हरिद्वार मे अद्वितीय है। वैसा मीठा, शीतल, स्वच्छ और पाचक जल गगा मे फिर नीचे कही देखने को नही मिलता। चन्द्रनाथ के लिए हरिद्वार नया नही, परन्तु बालिका आनन्दी के लिए तो सब कुछ नया था। सेकेण्ड क्लास की गद्दी-मण्डित सीट, बिजली का झर-झर चलता हुआ पखा, स्वच्छ पाखाना, चमचमाता डिब्बा, यह सब देखकर अबोध आनन्दी क्षणभर को अपना भय भूलकर देखती रह गई, पर जब गाड़ी चल दी और डिब्बे मे मुसाफिरों की भीड़ न घुसी तो वह घबराई। चन्द्रनाथ जैसे दीर्घकाय और अपरिचित पुरुष के साथ एकाकी रहना ही तो उसका सबसे बड़ा भय था, क्योकि वह जानती थी, इस व्यक्ति को मेरे शरीर पर असाध्य अधिकार प्राप्त है और यह उस सुँयोग की प्राप्ति के लिए ही मुझे अकेली ले आए हैं। ननद ने रहस्य मे यह बात उसे चलते-चलते कह भी दी थी।

फिर भी आनन्दी मार्ग भर सब भय को पी गई। वह बोली नही, उठी नहीं, खासी-खखारी भी नही, कुछ खाया-पीया भी नही। चन्द्रनाथ अपना सभी पाण्डित्य, प्रौढ़ ज्ञान और महत्त्व खोकर हर तरह उस बालिका की अनुनय-विनय करके थक गए। वह सिवा सिकुड जाने के और कोई चेष्टा न कर सकी। वह चन्द्रनाथ के बहुत अनुरोध करने पर भी पैर फैलाकर सोई नही। वस्त्रो को और अच्छी तरह समेटकर बैठी-बैठी ऊंघने लगी। हताश चन्द्रनाथ अपने बर्थ पर पड गए।

नववधू, विवाह, एकान्त और सुयोग सब कुछ, पर फिर भी कुछ नही। उन्होने वर्तमान आखें बन्द कर ली, वे अब भूत की अनेक खट्टी-मीठी स्मृतियो को सोचते-सोचते कभी जागरित, कभी निद्राग्रस्त होकर स्वप्न देखने लगे।

रात व्यतीत हुई, हरिद्वार मे हर की पैडी पर एक सजे हुए मकान मे चन्द्रनाथ का डेरा पडा। आनन्दी ने समझा, सचमुच यह तो घर है। मैं अकेली स्त्री इस घर की स्वामिनी और ये अकेले पुरुष इसके स्वामी।

अव उसे स्वामी के विषय मे सोचने का अपने जीवन मे प्रथम बार अवसर आया। यह स्वामी क्या वस्तु है? वही? सखिया रस-रग की चर्चा में जिसका जिक्र किया करती है? जो प्यार करता है, सुख देता है, वस्त्र-अन्न का दाता, रक्षक और पति है। वही है यह? इससे बोलना पड़ेगा? मुह खोलना पडेगा? अपनी आवश्यकता जतानी पडेगी! अरे! अरे! इनसे तो भय लगता है—कितने लम्बे-चौड़े आदमी है! कैसा भारी मुह है! कितना कम हसते है! बालिका सोच मे पड़ गई। उसने मधुर स्मृतियो को जाग्रत् किया। सहेलियों की रहस्यमयी मुस्कान उसे स्मरण हो आई। उसने प्रथम बार चाव की दृष्टि से पति को घूघट की ओट से देखा। परन्तु शोक! किस प्रबल बन्धन ने उसके हृदय को विकसित न होने दिया? वह देखती तो रही, पर दृष्टिपात के प्रारम्भ मे उसके मन मे जो माधुर्य था, उसे वह स्थिर न रख सकी।

चन्द्रनाथ थकित पड़े थे, पण्डे ने आकर कहा—यजमान, जोड़े से स्नान होगा? मै श्रीफल ले आया हूं!

चन्द्रनाथ ज़रा हसे। उन्होने आनन्दी की ओर देखा। पण्डे से कहा—बहूरानी को राज़ी करो। मैं इसे अकेली क्या साथ लाया, आफत हो गई। रास्ते भर न खाया, न पिया, मिट्टी की लोढ़ी की तरह बैठी रही है।

पण्डा वृद्ध और हंसमुख था। अपने पोपले मुंह पर हज़ारों सिकुड़ने डालकर

स्वर में अपनी इच्छा प्रकट करने, कभी-कभी उसी तरह स्नान का अनुरोध करने और छोटी-मोटी व्यवस्थाओं मे उनका हाथ बंटाने लगी। फिर जब वे सन्ध्या के समय खोमचेवालों की भरपूर भीड़ में थोड़े सकोच के बाद हर की पैड़ी के विशाल प्राङ्गण मे आनन्द के साथ फालूदा, कुल्फी की बरफ और दहीबड़े खाने लगे, तब चन्द्रनाथ की मानो हृद्वेदना कतई सो गई। वे एक बार उल्लास के साथ द्वितीया पत्नी के साथ प्रमोद मे लगे।

आनन्दी ने सोचा, भय की कोई बात नही है। ये देखने में खूब लम्बे-चौड़े अवश्य है, जैसे हमारे पडोस के वे सेठ जी थे, पर वैसे बुरे मिज़ाज के नही है। हंस-कर बात करते है, दस बार आवश्यक वस्तु की पूछताछ करते है, हर समय मन बहलाते है; फिर अपने पति तो हैं, गैर तो नही। वह मस्तक पर रेखा डालकर थोडी गम्भीरता से सोचती, और इस प्रकार साहस और गृहिणी के गाम्भीर्य का उसके मन मे धीरे-धीरे उदय होता। दो-तीन दिन बाद एक बार उसने कहा—बाज़ार की पूरियां आप कब तक खाएगे, सामान लाइए तो रसोई बन जाए।—चन्द्रनाथ ने चाद पाया। जिस समय वे प्रथम बार पत्नी के हाथ की रसोई खाने बैठे, कच्ची दाल और जली रोटियां सराह-सराहकर खाने लगे। धुएं के मारे बालिका की आखे अन्धी हो रही थी। अकेली, बिना सरो-सामान के रसोई बनाने का यह उसका प्रथम प्रयास और प्रथम साहस था। भोजन करके चन्द्रनाथ जब थाली को रुपयो से भरकर उठे, तो आनन्दी एकबारगी ही विह्वल हो उठी। वाह ! इनके बराबर प्रिय और कौन है ! उस दिन उसने पति की जूठी थाली मे भोजन करके एक अभूतपूर्व आनन्द अनुभव किया। और जब चन्द्रनाथ मीठी नीद ले रहे थे, वह चुपके से आई और पैरो के पास बैठकर धीरे-धीरे पैर दबाने लगी। चन्द्रनाथ की आंखें खुलीं। देखा, पत्नी पत्नी के स्थान पर उपस्थित है। उन्होंने अधीर होकर उसे खींचकर हृदय से लगा लिया। अतिशय आनन्दातिरेक से उनका शरीर बेसुध हो गया। और फिर वे थोड़ा सचेत होते ही किसी अतर्क्य शक्ति के प्रभाव से, उस वेदनास्थल पर शीतल स्पर्श-मरहम लगाकर फूट-फूटकर रो उठे। बहुत रोए, ज्यों-ज्यो उन्हे सुख मिलता था, उनका रुदन फूटता था। इस रुदन के अज्ञात कारण को न जानकर, आनन्दी बहुत घबराई। उसने फौरन प्रश्न किया—यह क्यों ?—इस प्रश्न में घूघट भी खसका, स्निग्ध नेत्रों ने प्रश्नों का तांता बांध दिया। फिर उसने अपने आंचल से पति के आंसू पोछ डाले। चन्द्रनाथ ने थोड़ा शान्त होने पर

पत्नी का चुम्बन किया। मुख्य विवाह तो उनका अब हुआ। सारी विषमता नष्ट हुई। अब दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के अति निकट, परस्पर एक-दूसरे के परम हितैषी, प्रेमी और अकपट बन्धु बने। अब वे वास्तव में पति-पत्नी थे; और आनन्दी अब इसका रहस्य समझ गई थी।

चन्द्रनाथ छुट्टी पूरी होने पर नौकरी पर आ गए। साथ मे अकेली आनन्दी थी। नौकरी बड़ी आसान थी। अधिकाश समय छुट्टी का रहता और वह पत्नी के पास कटता। चन्द्रनाथ ने देखा, इस पत्नी-पद पर यह जो बालिका आई है, उसमे नैसर्गिक सरलता को छोड़कर और कुछ योग्यता इस पद पर बैठने योग्य नही। रूप ? रूप एक पृथक् वस्तु है—पत्नीत्व से उसका क्या सम्बन्ध ? चन्द्रनाथ की गहन विवेचना-बुद्धि इस बात को ठीक-ठीक समझ गई थी। वे बड़े कर्मठ और धीर पुरुष थे। वे पत्नी की कमी दूर करने, उसे पूर्ण पत्नी बनाने के आयोजन में लगे। साधारण शिष्टाचार से लेकर सीना-पिरोना, रसोई बनाना, पढ़ाना-लिखाना एव गान-विद्या का भी शिक्षण देना उन्होने ठान लिया। वे आवश्यकता से ऊची उड़ान उडे। केवल कल्पना से नही, कर्म से भी। वे दो-दो घण्टे चूल्हे के आगे बैठकर सब प्रकार के पाकशास्त्र की स्वय शिक्षा देने लगे। पाक-विद्या की जितनी हिन्दी पुस्तकें मिल सकती थी, सभी उन्होने खरीद ली। फिर साधारण सिलाई से लेकर कसीदे तक के काम के लिए उन्होने शिक्षिकाए नियत कर दी। पढ़ाने के लिए दो अध्यापक प्रतिदिन बारी-बारी से आकर पढ़ाने लगे। एक केवल गणित और दूसरा हिन्दी भाषा। रात को स्वय चन्द्रनाथ हारमोनियम लेकर बैठते; परन्तु एकदम वे कल्याण, विहाग और सोरठ पर दौड़ पड़ते।

विवाह के बाद नववधू को ऐसी भयानक विपत्तियो का सामना करना पड़ता है, इतना कठोर परिश्रम करना पड़ता है, यह आनन्दी को ज्ञात न था। वह भौचक-सी सभीकी आज्ञा मानती, सभी कुछ सीखना चाहती, सभी तरह योग्य बनना चाहती। पर सबके बीच मे एक वस्तु बाधक थी। उसकी प्रकृति, आयु का विकास, यौवन का विकास और ठीक समय पर चन्द्रनाथ की, नहीं-नही पति की प्राप्ति। परन्तु पति में एक अद्भुतता थी। क्षणभर में तो वे उस नववधू के नवपति, आनन्द और उल्लास के देवता, प्यार और आदर के उद्गम थे; परन्तु दूसरे ही क्षण मे कठोर गुरु, नियन्ता, संरक्षक, शिक्षक और न जाने क्या-क्या ? अब बालिका समझे तो

क्या ? सोचे तो क्या ? कहे तो क्या ? और करे तो क्या ?

उसके प्रकृत हास्य और विनोद मे व्याघात पड़ने लगा। उसकी प्रत्येक चेष्टा की चन्द्रनाथ आलोचना करते, रहन-सहन में ऐब निकालते। इस तरह इस बात को मत बोलो, इतने जोर से मत हसो, इस तरह खड़ा होना सभ्यता नहीं, यह वस्त्र इस तरह नही पहना करते, अरे ! तुमने इस तरह पांव फैलाकर बैठने की आदत नही छोड़ी ? इन बातों से आनन्दी का खाना-पीना, सोना-जागना, यहा तक कि सास लेना भी हराम हो गया।

उसके हृदय में पति के प्रति प्रेम का पूर्ण स्फोट नहीं हुआ था। उसके हृदय की कली अविकसित थी। इसीपर उसपर दिन पर दिन कठोर होते हुए उसके पति के शासन ने उसे भयभीत और शंकित कर दिया। चन्द्रनाथ के अन्तस्तल को समझने की शक्ति उस अबोध में कहा थी ! जिस आयु में जीवन आंखों में होता है, उस आयु मे प्रौढ वासना का तत्त्व कैसे समझा जाए ? आनन्दी थकित, चिन्तित और पीड़ित-सी पति की बातो को यथासाध्य मानने का ध्यान करती, चेष्टा करती, परन्तु उससे सदैव भूलें होती। वह पति को क्रुद्ध देखकर जरा भयभीत होती, पर उन्हे हसता देखकर निश्शक देखने लगती। धीरे-धीरे उसे इस जीवन का भी अभ्यास हो गया। उसे ऐसा भास हुआ, ये तो इसी तरह क्षण में हंसते, क्षण में क्रुद्ध होते हैं, इसका ज्यादा विचार न करना चाहिए।

चन्द्रनाथ जब कड़े शासक बने थे, तब यदि शासक ही बने रहते तो वे अपने उद्देश्य मे सफल होते। परन्तु वे भावुक भी तो थे। पत्नी को प्यार भी करते थे, अपार दया भी उनकी उसपर थी। वे जानते थे कि इस उल्लसित कुसुम-कलिका को समवयस्क पति के साथ पूर्ण विकसित होने देने का स्वाभाविक अधिकार मैंने छीनकर, इसपर अन्याय भी किया है। पर किया क्या जाए ! उसे अति शीघ्र अपने पत्नी-पद के योग्य बनाने की बड़ी आवश्यकता भी थी। विवश हो वे उसे शासन में रखने के लिए केवल आवश्यक कड़ाई करते, परन्तु फिर यथासम्भव प्रेम और क्षमा का भाव भी रखते।

इसीका गलत अर्थ आनन्दी ने लगाया था। और वह अब अपने पति के क्रोध की उपेक्षा करने लगी थी। उसकी आयु का मद, और धीरे-धीरे प्राचीन बनना उसका सहायक था।

चन्द्रनाथ को जीवन का पूर्ण विकास प्राप्त था। उनकी आयु, शिक्षा और परिस्थिति ने उस विकास को सहायता दी थी। चद्रनाथ जैसे पुरुष अपनी स्त्री को सहधर्मिणी के रूप में अथवा कम से कम पत्नी के रूप मे अपने सन्मुख देखे बिना कैसे सन्तुष्ट रह सकते थे ? परन्तु आनन्दी पत्नी या सहधर्मिणी थी कहा ? खास कर चन्द्रनाथ जैसे व्यक्ति की ? वह अबोध, अज्ञानी बालिका हठात् विषम पुरुष की स्त्री बनाई गई और फिर हठात् उसे उसकी सहधर्मिणी और पत्नी बनाने के लिए कई अध्यापक, अध्यापिकाए, स्वयं चन्द्रनाथ और बहुत कुछ सरजाम धूम मचाने लगा। उसका जीवन प्रारम्भ था। विवाह और पति, इन दो मधुर शब्दो से यौवन के प्रारम्भ में जो लहरें उठती हैं, वह आनन्दी के मन मे उठती थी; स्वाभाविक रूप से भी और सखी-सहेलियो तथा पड़ोसिन समवयस्काओं के द्वारा उत्तेजन प्राप्त करने पर भी। परन्तु उन लहरों का किनारा तो एकमात्र पति है; वह पति यदि तिल बराबर पति था, तो पहाड़ बराबर बुज़ुर्ग, गुरु और शासक था। वह रत्ती भर यदि सखा था तो मन भर अधिकारी था ! जैसे वासन्ती वायु अपने झोको से कली को खिलाती है और दोपहर की धूप का प्रखर तेज उसे मुरझाकर झुलसा देता है, उसी प्रकार आनन्दी की दशा थी।

चन्द्रनाथ एक चुटीले हृदय के पुरुष थे। उनकी जीवन-सगिनी छिन चुकी थी, जिसके साथ उन्होने अपने नवीन यौवन के उल्लास और विकास के साथ यह प्रौढ़ पद प्राप्त किया था। उसकी मृत्यु के तत्क्षण बाद वे आतुर होकर एक स्त्री-शरीर के लिए विकल हो उठे। तब तक वे स्त्री-शरीर और पत्नी एव सहधर्मिणी में क्या अन्तर है, यह समझे न थे। अब पुराने शरीर की जगह नया शरीर, ढले यौवन की जगह उठता यौवन, विषाद की जगह उल्लास उन्हे मिला। पर नही मिली पत्नी, सहधर्मिणी, जीवन-सगिनी। उसे खोकर अब वे इतने दिन बाद जागरित हुए।

तारों से भरी रात थी। बड़े परिश्रम से थकित चन्द्रनाथ बाहर से आए थे। घर मे देखा, आनन्दी बेसुध पड़ी सो रही है; चन्द्रनाथ सोचने लगे, मेरा तो अभी भोजन भी नही हुआ, यह सो गई। एक वह थी, जो ऐसी अवस्था मे रात्रि भर खड़ी प्रतीक्षा करती थी। पत्नी और सहधर्मिणी बनने के लिए स्त्री को कितनी तपस्विनी, कितनी साध्वी, कितनी इन्द्रिय-विजयिनी बनने की आवश्यकता है—अब उन्होंने इसपर गम्भीर विचार किया।

ओह तपस्विनी ! तुमने भूख-प्यास, क्रोध-निद्रा को जीत लिया था; तुम अपने साधारण वेश और साधारण आकृति मे किस दायित्व को छिपाए मेरे जैसे प्रकांड पुरुष के साथ आधी आयु तक चली ! कैसी सरलता, कैसे सुख, कैसे आनन्द के साथ ! तुम इतने जोर से कभी न हसती थी; पर तुम्हारे साथ उतने ही जोर से मैं भी तो हसता था। वह कितना हंसती है, पर मै उस हसी से इतना भयभीत होता हूं, जितना बच्चे बिजली की तडप से। सदैव इसकी आत्मा हसती है और मेरी रोती है। मेरे जीवन मे घाव है, मेरे निर्वाह में किरकिरी है, पर इसका जीवन तो अभी सोकर उठा है अपने जीवन के प्रभात मे यह गरीब मुझ घायल के साथ कहा तक कृत्रिम वेदना सहन करेगी ! उन्होने शय्या पर सुख की नीद लेती आनन्दी के स्वर्ण-शरीर को देखा, फिर उनकी दृष्टि सुदूर आकाश में टिमटिमाते एक तेजस्वी तारे पर जाकर अटक गई। उन्होंने देखा वह शीर्ण मुख, वह शान्त मुद्रा करुणभाव से उन्हे देख रही है। वे दोनो हाथ आकाश की तरफ फैलाकर—क्षमा-क्षमा, ओ तपस्विनी, क्षमा ! कहकर उन्मत्त की तरह दौड़े।

आनन्दी हड़बड़ाकर उठ बैठी। नीद पर झुंझलाई। अपने पर मलामत की। वह अतिशय अपराधिनी की तरह भयभीत दीवार के सहारे खड़ी पति का उन्माद देखने लगी। बालिका मे उद्विग्न पति को सान्त्वना देने का साहस कहां था ? चन्द्रनाथ पृथ्वी पर गिरकर रोने लगे और वही सो भी गए। आनन्दी रात भर उनके पैरो को गोद मे लिए बैठी रोती रही।

दूसरे दिन दोनो ही चुप थे। चन्द्रनाथ नीची गर्दन किए चुपचाप भोजन कर गए। आनन्दी ने पति को भोजन कराकर स्वय कुछ न खाया। सन्ध्या समय चन्द्रनाथ ने घर मे आकर देखा, आनन्दी चुपचाप गृहकार्यो मे लगी है। रसोई प्रथम ही से तैयार है। पति को देखते ही उसने विनयपूर्वक पति से भोजन को कहा। चन्द्रनाथ ने पत्नी का वह स्वर प्रथम कभी न सुना था। उन्होने देखा, गम्भीर विषाद की रेखा और थकित भावना उन उत्फुल्ल नयनो को निर्जीव कर चुकी थी। पर वे स्वय बहुत गम्भीर थे। उन्होंने आनन्दी पर कुछ ध्यान न दिया; चुपचाप भोजन करके बाहर बैठक मे चले गए।

धीरे-धीरे रात्रि गम्भीर होने लगी। चन्द्रनाथ ने शयनागार मे जाकर देखा, दूध के समान शय्या पर फूलो से शृगार हो रहा है, परन्तु आनन्दी का वहां पता

नही। चन्द्रनाथ ने इधर-उधर देखा। घरभर देख डाला। आशका और भय से वे छटपटाने लगे—हे ईश्वर ! मामला क्या है ?—रसोई के भीतर की ईधनवाली कोठरी मे आनन्दी धरती पर पड़ी थी। उसे होश न था। चन्द्रनाथ ने बाहर लाकर उसे देखा—शरीर ठण्डा, और अकड़कर लकड़ी के समान बन गया है, आखे पथरा गई है, मुख से झागआ रहा है। चन्द्रनाथ सब समझ गए। उन्होने धैर्य से नाड़ी और हृदय के स्पन्दन को देखा और एक क्षण भी व्यर्थ न खो, डाक्टर के लिए दौड़े।

प्रभात की ऊषा-उदय के साथ ही साथ आनन्दी ने चैतन्य-लाभ किया। दीप की क्षीण रेखा मे उसने विपण्णमुख पति को अस्त-व्यस्त वेश मे पलग के सिरहाने खड़े देखा। उसके नेत्र-कोण से अश्रु-जल बह चला। धीरे से आनन्दी ने अपना हाथ ऊपर उठाकर पति का हाथ पकड़ लिया। चन्द्रनाथ झुककर बैठ गए। उन्होने कहा—यह तुमने क्या किया ?

आनन्दी के होठ फड़फड़ाकर रह गए। उसने अभिप्राय की दृष्टि से पति को देखा।

"क्या तुम्हें कुछ कष्ट था !"

"कष्ट ? मैं नवीन जीवन मे आई थी। परन्तु मै अयोग्य पूरी चेष्टा करने पर भी आपको सुखी न कर सकी। जीवन भर जो प्यार, सुख-आदर मुझे नसीब नही हुआ था, वह आपने मुझे दिया। हाय ! कहा मै अभागिनी तुच्छ बालिका और कहा आप ? ओह ! आपकी महिमा, वह भी मैं समझ नही सकती। मैं पढ नही सकती, सीख नही सकती। मैं जितना ही आपको सुखी बनाने की चेष्टा करती, उतनी ही मूर्खता करती। मै आपके जीवन मे किरकिरी हू—मुझे जाने दीजिए, मुझे चरणो की धूल दीजिए।"

चन्द्रनाथ को इस अवसर पर, इस प्रगल्भ भाषण के सुनने की आशा न थी। आनन्दी फिर बोली—मेरी जितनी योग्यता है, उतना ही मैं सीख सकती हू, आप मुझे जितनी बड़ी बनाना चाहते है, उतनी मै बन कैसे सकती हू ?

चन्द्रनाथ ने बात टालकर कहा—तुमने क्या खाया था ?

"अफीम !"

"कहा से मिली ?"

आनन्दी चुप रही।

चन्द्रनाथ कुछ देर स्तब्ध बैठे रहे। फिर उन्होने तीक्ष्ण दृष्टि से पत्नी को देखकर कहा—प्रिये, मूर्ख तो मै हू; तेज आच मे रोटी सिकती नही, जलती है। ठहरो, तुम इतना समझ सकती हो, यह मैं नही जानता था। तुम्हे अल्पवयस्क समझकर इधर तुम्हारी बुद्धि पर मै पूर्ण अविश्वास करता था, और उधर तुम्हारी बुद्धि से सहस्र गुणा भार उसपर लादता था। आज से मैं तुम्हारा गुरु नही, शिक्षक नही, शासक नही—पति हू, मित्र हू। आओ, मैं स्वार्थ का त्याग करूगा।

आनन्दी के नेत्रों मे एक और ही प्रभा थी। वह बालिका की नही, नारी की नही, पत्नीत्व के गहन उत्तरदायित्व को व्यक्त कर रही थी। चन्द्रनाथ ने देखा, वे कुछ कह न सके।

आनन्दी फीकी पडने लगी। उसकी मुट्ठी शिथिल हुई और चन्द्रनाथ का हाथ उसके कर-पल्लव से पृथक् हो गया। चन्द्रनाथ रोए नही, एक अतर्क्य वेदना एव मार्मिक आलोचना उनके मन में उठ रही थी। उन्होने अतिशय प्रेम और आदर से आनन्दी का चुम्बन लेने का इरादा किया। पर आनन्दी वहा थी कहा? चन्द्रनाथ ने उसे निर्जन प्रभात मे, आनन्दी के अभाव मे उसके शरीर को जी भरके एक बार प्यार किया और फिर उसके उन्मीलित नेत्रो को अनन्तकाल के लिए आच्छादित कर दिया।

# पुरुषत्व

पुरुष कामना का दास न हो और वह स्त्री के सौन्दर्य को अछूता प्यार और आदर करे, तो स्त्री के लिए वही वास्तव में पुरुष है। अपने चारों ओर भ्रमरों के मंडराने पर स्त्री अपने सतीत्व का मूल्य भूल जाती है। फिर एक वेश्या बाला भी सतीत्व की इच्छा तो रखती ही है। यह कहानी १९२६ में 'चांद' में प्रकाशित हुई थी। जिसे पढकर प्रशंसा-पत्रों का तांता लग गया था। पत्र ही नहीं, पाठकों ने लेखक के पास इनाम के तौर पर रुपयों के मनीआर्डर भी भेजे थे। 'चांद' की ख्याति इस कहानी से बहुत बढ गई थी। इसमें स्त्री-पुरुषों के शारीरिक सम्बन्धों का एक वैज्ञानिक वर्णन है जो अद्भुत और सत्य है।

राजेन्द्र अपनी करुण कहानी कह चुके, तब उसे सुनकर रामेश्वर ज़ोर से हंस पड़े। इस हास्य से अप्रतिभ होकर राजेन्द्र ने उधर से मुह फेर लिया।

रामेश्वर बोले—राजेन्द्र बाबू ! हिकमत सीखकर ही हकीमी करना उचित है। जिस विद्या को तुम जानते ही नहीं, उसमें टांग क्यों अड़ाते हो और फिर बेवकूफ बनने पर बिगडते क्यो हो ?

राजेन्द्र ने कहा—क्या यह भी कोई विद्या है, जो सीखनी पड़ेगी ?

"अवश्य।"

"और उसका कालेज कहां है ?"

"खुला हुआ विश्व ही उसका कालेज है, आत्मवेदना और सहृदयता तथा स्थैर्य उसकी पाठ्य पुस्तकें है। जीवन के सम्मुख हठात् आ जानेवाली छोटी-बडी घटनाएं उसके पाठ हैं, जिन्हे मनुष्य को संयमपूर्वक पढना उचित है।"

"यह खूब रही ! यह पाठ भी इसी तरह पढ़ा जाएगा, इसका तो कभी ख्याल भी नहीं किया था। अब कालेज छोड़ने और विद्यार्थी-जीवन को भूल जाने पर इस विस्तृत विश्व को किस तरह पढा जाए ! कोई जीता-जागता गुरु भी तो दृष्टि नहीं पड़ता।"

रामेश्वर ने गम्भीरता से कहा—ऐसी ही इच्छा है तो प्रारम्भिक पाठ तो मै ही पढा दूगा।

"अच्छी बात है, आज ही से सही। पर कुछ फीस-वीस······"

"समस्त आशा और अभिलाषाओ का बलिदान। क्या तुममे इतना साहस है?"

"साहस?"

रामेश्वर ने घूरकर मित्र को देखा—हा, साहस! इस दुरूह विद्या की फीस इतनी ही अधिक है।

"अच्छी बात है। अब पाठ शुरू हो, मुझमे बहुत साहस है।"

"न भी होगा तो करना पडेगा। अच्छा सुनो—पहले यही बात विचारनी चाहिए कि स्त्रिया पुरुषो से क्या चाहती है।"

"क्या चाहती हैं?" राजेन्द्र ने व्यग्र होकर पूछा। योग के गहन सूत्र की तरह रामेश्वर ने कहा।

"पुरुषत्व।"

"मै समझ गया।"

"मुझे भय है, तुम नही समझे। पुरुषत्व क्या वस्तु है, यह भी तुम्हे समझने की जरूरत है।"

"क्या मै पुरुषत्व को भी समझने की योग्यता नही रखता?"

"जो पुरुष पुरुषत्व को समझता है, वह कभी इन करुण कहानियो का दयनीय पात्र नही बनता।"

"तब वह पुरुषत्व क्या वस्तु है?"

"पुरुषत्व वह वस्तु है, जिसका स्त्री के शरीर, स्वभाव, जीवन-निर्माण और उसके स्त्रीत्व मे नितान्त अभाव है। और उसके बिना स्त्रीत्व उतना ही बेस्वाद है, जितना लवण के बिना रसोई।"

"किन्तु उसकी रूपरेखा क्या है?"

"केवल भावगम्य, और उसका प्रभाव अमोघ है। कोई स्त्री उसके सम्मुख सीधी खड़ी रह ही नही सकती।"

"किन्तु वह अत्यन्त निष्ठुर और बड़ी गर्वीली है।"

"यह सम्भव ही नहीं है।"

"वह निरी पत्थर या इस्पात की बनी हुई है।"

"स्त्रिया इन वस्तुओ की बनाई ही नहीं जाती ।"

"तुम निश्चय ही उसके सम्मुख जाकर लज्जित और विफल होओगे ।"

"यह प्रकृति के सर्वथा विपरीत बात है ।"

"तब मेरी तुम्हारी बाजी रही, अगर तुम उसका गर्व भजन कर सको, उसे वश मे ला सको, तो मैं दस हजार रुपये हारा ।"

"देखता हू, तुममे साहस का उदय हो रहा है । अस्तु, यद्यपि किसी स्त्री को वश मे लाने के लिए इतना आतुर होना 'पुरुषत्व' को न शोभा देनेवाली बात है, पर पुरुषत्व का अर्थ अब तुम्हे सप्रयोग समझाना पड़ेगा। मुझे तुम्हारी चुनौती स्वीकार है। मैं आज ही रात को वहा चलूगा, मगर तुम्हे मेरी आज्ञा के सर्वथा अधीन रहना पडेगा।"

"मुझे मंजूर है।"

दोनों मित्र विदा हुए।

उसका नाम था हीरा। रूप की हाट मे उसके चढते दिन थे। डेरेदार, ठिकाने की वेश्या थी। उसकी मा ने गाने-बजाने, अदब-कायदे की वेश्या-वृत्ति सबधी शिक्षा के सिवा उसे अग्रेजी और हिन्दी-उर्दू की भी कुछ शिक्षा दी थी। लाखो की सम्पदा उसकी मा कमाकर जवानी से उतरी थी। उसके बाद वह नायिका के पद पर तीन-चार यौवनो का सम्पूर्ण सौदा कर चुकी थी। शहर की हवेली बीच चौक मे अपनी शान नही रखती थी। नगर के बाहर की कोठी नवाबी ठाठ से सजी थी। हीरा जिस रंग की पोशाक पहनकर उतरती थी, उसी रग के जवाहरात से जडे गहने पहनती और उसी रग से रगी मोटर मे बैठती। नौकरो और ड्राइवरो की वर्दी भी उस रग की होती थी। सन्ध्या के समय हीरा के रूप और ठाठ पर नगर की आखें सड़को पर बिछी रहती थी। साधारण जमीदार तक वहा पहुचने की हिम्मत न करते थे, सर्वसाधारण की बात तो दूर है। वेश्या जरूर थी, असमत-फरोश जरूर थी, परन्तु कितनी महगी, कितनी दुर्लभ, कितनी नफीस कि शहर मे प्राय: सभी की जबान पर चाहे जब हीरा उछलने लगती थी।

हीरा की उम्र का सत्रहवा साल जा रहा था। उसका रग मोती के समान स्वच्छ और पानीदार था, गालो की सुर्खी, मानो छूते ही खून टपक पड़ेगा, होंठ और आखें मानो परस्पर स्पर्द्धा करती थी। अमृत और हलाहल विष का आखो मे अटट

झरना झरता ही रहता था। जो एक बार देखता था, मर जाता और क्षणभर मे ही जी जाता था। धवल दन्त-पक्ति की बहार उन रसभरे उत्फुल्ल होठो के अरुण वर्ण के बीच कैसी मोहक,कैसी प्यारी लगती थी! गर्दन और वक्षस्थल मानो इटली के किसी कारीगर की सगमरमर पर अमर करामात थी! बढिया ईरानी कालीन पर बैठकर बिजली के दहकते प्रकाश में, विजली के पखे के नीचे अपने महीन, सादे, उज्ज्वल परिधान मे जब वह गाने बैठती थी, और उस हस के समान शुभ्र कण्ठ से इन कव्वाली और गज़लो के स्थान पर जब विशुद्ध स्वर, ताल, लय, मूर्च्छना युक्त सगीत-लहरी का स्रोत बहता था, उस समय की बात क्या कही जाए! उस उमड़ते रस-समुद्र मे पहले वह स्वय डूबती, अर्द्ध-निमीलित नेत्र, कम्पित कण्ठ-स्वर, फडकते होठ और अलसता से अस्त-व्यस्त बिखरती हुई देह—किस मर्द को मर्द बना रहने दे सकती थी !

ऐसी ही वह अप्रतिभ रूप-गुण-सम्पन्ना, राजमहलो मे भी दुर्लभ स्त्री-रत्न, वह वेश्या-पुत्री थी, जिससे निराश होकर राजेन्द्र आत्मघात की अभिलाषा मन में सचित कर रहे थे और उनके मित्र जिसे विजय कर लेने का बीड़ा उठा चुके थे।

ये दोनों ही मित्र नगर के गण्यमान्य तथा अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। दोनो की ही सज्जनता मे कलाम न था, पर युवक राजेन्द्र बाज़ार के पत्ते चाटने के शौकीन थे। उनके मित्र रामेश्वर उनसे उम्र मे कुछ बडे थे, परन्तु विचारवान् गम्भीर और चरित्रवान् व्यक्ति थे।

एक चरित्रवान व्यक्ति, जो स्त्रियोंके सम्मुख अपने को पुरुष समझता हो, उस पुरुष की समझ मे आ ही नही सकता था, जो प्रतिक्षण स्त्रीमात्र के लिए दास बना रहने का अभिलाषी था। और यही दोनो के जीवन की विभिन्न दिशाए थी, जहा बहुधा दोनों मित्र टकराया करते थे।

इस बार रामेश्वर ने वेश्या के घर जाना स्वीकार करके राजेन्द्रको आश्चर्य-चकित कर दिया। वह यह कौतूहल भी देखना चाहता था कि समस्त नगर की स्पर्द्धा और अभिलाषा की वस्तु हीरा को यह व्यक्ति और ऐसी कौन वस्तु देकर वश करेगा, जो मै न दे सका था, और···और वह 'पुरुषत्व' की कैसी विचित्र व्याख्या करेगा। इसी विचार से एक प्रकार से प्रसन्नचित्त राजेन्द्र घर लौटा।

उसी ज्वलन्त प्रकाश मे हीरा साज़िन्दो सहित बैठी थी। सामने केवल दोनों

मित्र थे। राजेन्द्र के अनुरोध से कोठे के द्वार बन्द करा दिए गए थे।

हीरा को देखकर रामेश्वर के चित्त मे एक अपूर्व भाव उत्पन्न हुआ। हाय ! सर्प को यह सौन्दर्य ! उन्होने क्षणभर में उस रूप को हृदयंगम कर एक बार कमरे पर दृष्टि डाली, और एक मसनद के सहारे उढ़क बैठे।

सगीत-लहरी उठी और गिरी, जीवन आया और गया। राजेन्द्र लोटन कबूतर हो रहा था, मिनट-मिनट पर नोट फेंक रहा था। पर रामेश्वर अचल-निर्विकल्प प्रतिमा की तरह हीरा के मुख पर दृष्टि दिए सगीत-सुधा पी रहे थे। उनके नेत्रो मे कौतूहल नही, उन्माद नही, औत्सुक्य नही, विनोद नही, उदासीनता नहीं, मोह नही। साथ ही होठ मे हास्य नही, स्पन्दन नही।

बालिका वेश्या-पुत्री ने यह देखा-समझा, धीरे-धीरे वह इस वज्र-पुरुष की ओर आकर्षित हुई। वह उसके होठो मे एक मुस्कान देखने की अभिलाषा लेकर और भी यत्न, और भी कौशल, और भी मनोयोग से अपनी कलाओ का विस्तार करने लगी। उसके ललाट पर पसीना हो गया। वह थककर हाफने लगी। उसने लज्जित होकर गाना बन्द कर दिया। जीवन में उसे पहली बार ही ऐसा नवीन पुरुष दिखा, जो उसे देखकर मरा नही और सुनकर जिया नही।

वह अपने वस्त्र सभाल चादी की तश्तरी मे पान लेकर उठी, प्रथम रामेश्वर के सामने अदब से झुककर तश्तरी की। रामेश्वर ने पान उठाया और सौ रुपये का नोट तश्तरी मे फेंक दिया।

क्षणभर को हीरा अवाक् हुई। उसने एक ही क्षण मे रामेश्वर को, नायिका को और तश्तरी को देखा, एक बार वह झुकी और आगे बढ़ी।

रामेश्वर उठ खडे हुए। राजेन्द्र भी उठे। उस दिन फिर हीरा और नही गा सकी।

दो सप्ताह बीत गए। हीरा को नित्य ही गाना पड़ता था, परन्तु उसका उल्लास और मग्न होना कहीं चला गया था। उसका मन उदास और चचल रहता था। बहुधा वह गाते-गाते बहुत ही निरुत्साह हो जाती थी—कभी-कभी वह गाना बन्द कर एकदम ऊपर जाकर पड़ रहती थी। इस नई परिस्थिति का कारण वह स्वय नही जानती थी; मानो कोई एक नई ठोकर उसके हृदय को लगी थी। किसी अतर्क्य शक्ति से रामेश्वर की मूर्ति दिनभर मे लाखो बार उसके सम्मुख खड़ी हो जाती

थी। हीरा को उस मूर्ति पर कितना क्रोध, कितनी विरक्ति और कितनी अवहेलना थी। परन्तु वह मूर्ति मानो उसके नेत्रो मे तप्त शलाका की तरह घुस गई थी। वह कभी-कभी बहुत ही झुझला उठती थी। वह सोचती थी, कैसा वह आदमी था मानो गूगा और बहरा, बिल्कुल अन्धा, मूर्ख, गवार! किन्तु? किन्तु वह नोट? नोट न था, रद्दी कागज़ का टुकडा था। तब क्या वह कुछ और ही था? क्या वह इस रूप को सचमुच ठुकरा गया? मेरे पसीने पर भी उसकी मूछ का एक बाल न खिला? वह एक बार भी न हसा, न हिला, न बोला; वह मनुष्य न था, पत्थर था। निर्मम···हीरा सोचने लगी, क्या अब वह न आएगा? मै उसे भाई ही नही, यही तो बात है! न मेरा रूप, न संगीत, न और कुछ ही उसे पसन्द आया; पर फिर वह नोट क्यों फेक गया? और मैंने ही क्यो ले लिया? जिसे मै पसन्द ही नहीं, जो मुझपर, मेरी कला पर रीझा ही नही, उसका रुपया मैंने क्यों लिया? हाय! वह मुझे हरा गया, मेरा अपमान कर गया। हीरा गुस्से से होठ चबाकर उठी, पूरे कद्दे-आदम शीशे के सामने उसने एक बार अपने अनिंद्य यौवन की परछाई को देखा, और फिर वह रोती हुई कुर्सी पर बैठ गई। उसने निश्चय कर लिया कि बदला लूगी।

राजेन्द्र आते ही हीरा के अत्यन्त निकट बढ़ आए। उन्होने उसे उदास देखकर कहा—यह क्या? क्या आज बादल बरसने वाले है?

हीरा ने सिर उठाकर राजेन्द्र को देखा, सभलकर बैठी और बोली—आप क्या खेती बोकर आए हैं, जो बरसने की इतनी इन्तजारी मे हैं?

राजेन्द्र ठण्डे पड गए। उन्होने कहा—आज तो बहुत ही नाराज़ मालूम होती हो। क्या मेरी कुछ खता हुई?

"यह खूब, बरसते-बरसते आपको नाराज़ी की भी आंच लग गई?"

कुछ भी न समझकर राजेन्द्र ज़ोर से हंस पड़े। हाय! कितना पुरुषत्वहीन हास्य था वह! वे और नज़दीक खिसककर हीरा से सटकर बैठने लगे। हीरा ने दूर हटते हुए कहा:

हां, आपके उन दोस्त का क्या हाल है? फिर कभी तशरीफ नही लाए! शायद गाना पसन्द नही आया। आजकल के लोग गुणों की कद्र कम करते है, समझते भी कम हैं।" पिछली पंक्ति कहते-कहते हीरा की आंखो मे सौ रुपये का नोट आ

खडा हुआ, वह स्वय ही अपनी बात पर शकित हो गई।

राजेन्द्र का उधर ध्यान न था, वे बोले—उस दिन के बाद उन्होने कुछ चर्चा ही नही चलाई, मगर गाना वे नही समझते यह न कहना; वे स्वय बहुत अच्छे गवैये है, सितार और दिलरुबा बजाने मे शहर भर मे उनकी जोड का कोई नहीं। आज मैं उन्हे लाऊगा।

हीरा विकल हो उठी। आह! उस दिन के बाद फिर चर्चा ही नही! मुझे धिक्कार है; यह रूप, यह यौवन, सब धिक्कार-धिक्कार! हीरा इन तूफानी विचारो को ज़ब्त न कर सकी। वह उठ खडी हुई और सोचने लगी, तब उस आदमी को प्रतिक्षण स्मरण करके मैंने अपना ही अपमान किया। उसने घृणा-मिश्रित स्वर मे कहा—जिसकी मर्ज़ी हो वह आए या न आए, हमलोग किसीको बुलाने तो नहीं जाते?—राजेन्द्र फिर रात को उन्हे लाने का वादा करके चल दिए।

हीरा ने पक्का इरादा कर लिया कि आज वह उस मगरूर पुरुष का अवश्य अपमान करेगी। परन्तु ज्यों-ज्यों दिन ढलता गया, हीरा की अपने शृगार की चिता बढती गई। वह व्याकुल हो गई। वह कौन-सी पोशाक पहने, यह कुछ निर्णय ही न कर सकी। उसने कई पोशाकें पहनी और उतारी, कई ढंग से बालो का जूडा बाधा और खोला, कई इत्र लगाए और मुंह धोया; पर किस रूप मे, किस रग मे, किस साज में आज वह अपने यौवन को प्रकाशित करे—वह निर्णय न कर सकी। उसने हठात् मां से पोशाक का प्रस्ताव किया।

बुढ़िया अवाक् रह गई—पोशाक का क्या मतलब? आज क्या कही जाना है?

हीरा झेंप गई। वह अपनी कोठरी मे भाग गई।

सन्ध्या हुई। अन्धकार के हृदय को विदीर्ण करके हीरा ने बिजली का प्रकाश कमरे में फैलाया और ताज़े फूलो का एक बडा-सा गजरा गले मे डाल, वह उस छकड़ा भर रूप और यौवन को लेकर उस प्रकाश के हृदय मे सचमुच हीरे ही के समान विराजमान हुई।

दोनों मित्रो ने घर मे प्रवेश किया। मन्त्र-मुग्धा सर्पिणी की तरह हीरा खडी हो गई। मित्र बैठ गए। हीरा खडी रही, रामेश्वर ने क्षणभर उसके मुख की ओर देखकर कहा—बैठिए!

हीरा बैठ गई। गर्व और उल्लास उसके यौवन को अरक्षित छोड भागा;

वह विनय और संकोच से सकुचित यौवन को अपनी वेश्या-शक्ति के बल पर यथा-सम्भव चैतन्य करके गाने के आयोजन मे लगी।

रामेश्वर ने बाधा देकर कहा—कष्ट न कीजिए, मुझे आपकी माताजी से कुछ बाते एकान्त मे करनी है। क्षमा कीजिएगा।

हीरा अन्यमनस्का हो, उठकर बाहर चली गई। हाय रे आज का शृंगार !

नायिका ने सुना, चौकी और गम्भीर हुई। कुछ ही मिनट मे वह एकान्तवार्ता समाप्त हुई। हीरा दो हजार रुपये मासिक पर रामेश्वर की नौकर हुई।

बिना उससे पूछे ही उसका सौदा हो गया, यह सुनकर हीरा बहुत ही क्रुद्ध हुई। उसने धरती मे पैर पटककर कहा—वह पुरुष ! वह नीरस, गवार, गूगा, बहरा पुरुष ! उसकी यह हिम्मत ! मै इससे बदला लूगी, मै इसका हर तरह अपमान करूंगी। वह उसी क्रोध मे भरी नायिका के पास गई। नायिका ने वेश्या-धर्म की कठोर मर्यादा का विस्तृत वर्णन करके उसे शान्त किया। हीरा को उसी दिन मालिक की सेवा मे चली जाना पडा।

हीरा के लिए एक नये बंगले की आयोजना की गई। उसमे चार दासी, दो दास और एक प्रबन्धक रख दिया गया। पोशाक और खाने-पीने की वस्तुओ की गिनती न थी। कमरो में बहुमूल्य वस्तुओ की सजावट का पार न था। शृंगार और ऐश्वर्य के नाते अटूट सम्पदा जो कुछ खरीद सकती है, वह सब वहा प्रस्तुत था। हीरा की रुचि और अभ्यास के अनुकूल आभूषण, मोटर और अन्य सामान प्रथम ही से उपस्थित कर दिए गए थे। उस राजमहल सदृश बगले में आकर हीरा चकित, भीत, विमूढ़ बनी खड़ी रही। यह सब कुछ हो सकता है, इसकी उसे कल्पना भी न थी, परन्तु इस समस्त वैभव के पीछे जो मूर्ति छिपी हुई है, वह—वह—निर्मम, रसहीन मूर्ति ? अरे !······हीरा सोचने लगी, क्या वह मूर्ख, बेतमीज और नीरस है ? ना-ना, यह तो सम्भव ही नही, यह सब कुछ तो कुछ और ही मालूम होता है। परन्तु चाहे जो कुछ भी हो, मै उसका अपमान करूगी। मैं कभी उसके अधीन न होऊंगी।

सन्ध्या हुई। बिजली के आलोक से बगला इन्द्र-भवन हो गया। मानो अनगिनत आलोकित नक्षत्र के नीचे हीरा छिप रही थी। उसने सहसा मोटर आने का शब्द सुना। उसने बलपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया—न बोलूगी, न बोलूगी, न

बोलूगी।

स्वयं मान करना और औरो का मान भंजन करना हीरा का व्यवसाय था। वह पुरुष जो नारी-हृदय का नही, नारी-शरीर का भूखा है, हीरा के द्वार पर खड़ा होता है और धरती तक झुकता है ! यह दृश्य हीरा के नेत्रों को स्वाभाविक था। पुरुष की वह तस्वीर हीरा की चिरपरिचिता थी, जो हीरा के लिए प्यासी छटपटा रही थी। किन्तु उसी पुरुष-छाया के नीचे पौरुष का कुछ और भी रूप रहता है, यह हीरा को मालूम न था।

अपने अभ्यास के अनुसार उससे भी अधिक, बहुत अधिक तनकर हीरा उस शत्रु-पुरुष को, जिसने उसके स्त्री-शरीर की ज़रा भी परवाह न की थी, परास्त करने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लेकर तैयार हो गई। आधा घण्टा व्यतीत हो गया। हठात मोटर के जाने का शब्द सुनकर वह चौकी। उसने खिड़की से देखा, वही वज्र-पुरुष वीर की तरह उडा जा रहा है। हीरा क्रुद्ध सर्पिणी की तरह फुफकार मारकर, पैर पटक-पटककर ज़ोर से कमरे मे घूमने लगी। समस्त दर्प, शृगार किया हुआ रह गया, शत्रु सामने ही न आया। परन्तु हीरा पराजित योद्धा की तरह विचलित हो गई। उसने दासी को बुलाकर पूछा .

"क्या बाबू साहब आए थे ?"

"जी हां !"

"किसलिए ?"

"सरकार को कुछ चाहिए तो नही, यह देखने।"

"कुछ कहते थे ?"

"कहते थे कि मालकिन को कोई कष्ट न हो और उनका हुक्म फौरन तामील किया जाए।"

हीरा ने गुस्से से होठ चबाकर कहा—हुक्म फौरन तामील किया जाए ?

"जी हुज़ूर।"

"मेरा हुक्म है, यह शख्स बगले मे न घुसने पाए।"

दासी मुह ताकने लगी। हीरा ने डपटकर बाहर जाने का हुक्म दिया। दासी के जाते ही हीरा पलग पर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगी। उस दिन रातभर हीरा सो न सकी।

कई दिन बीत गए। रामेश्वर हीरा के आज्ञानुसार बगले में नही आते। वे प्रतिदिन नियमित समय पर मोटर मे आते और बगले के कम्पाउण्ड के बाहर मोटर ही मे बैठे-बैठे हीरा की कुशल ले जाते थे।

उस क्षण की बाट हीरा प्रातःकाल से सन्ध्या तक देखा करती। मोटर की शब्द-ध्वनि मानो जगत् मे एक ध्येय वस्तु थी। उनके आने से घण्टो प्रथम वह खिडकी मे, पर्दे की ओट मे, खडी हो जाती। प्रथम वह छिपकर खड़ी होती, धीरे-धीरे प्रकट होने लगी। अब वह बिल्कुल खुली खिडकी मे सामने खडी होती थी। प्रतिदिन नया शृंगार, नई पोशाक, नया केश-विन्यास होता था। पर हाय रे पुरुष-पाषाण ! एक क्षण को भी वह ऊपर दृष्टि करके उस जीवित आलोक को देखता न था। किस निर्जन वन मे हीरा ने रूप और यौवन की हाट लगाई !!

धीरे-धीरे हीरा को वहा रहना असह्य हो गया। यह भी कोई बात है ! वे आते हैं, खबर ले जाते है, रानियो के ठाठ और सुख दे रखे है। सब कुछ दे ही जाते है, मागते कुछ नही। हाय ! मैं इनका कब अपमान करू ? कैसे करू ? क्या इन्हे मुझसे कुछ भी नही लेना है ? मेरे पास क्या इस वज्रपुरुष को देने योग्य कुछ नहीं है ? यह रूप, यह यौवन, यह शरीर, यह शृगार—उफ ! नगर मे इसके कितने दाम हैं ! मगर दाम ? दाम, दाम, दाम की बात याद करके वह सोचने लगी। वह सोचने लगी, दाम तो इन्होने भी दिए है; इतना खर्च, इतना धन-व्यय, इतना यत्न ! तब फिर यह किसलिए ? इस सौन्दर्य को सुखाने या सड़ाने के लिए ? हीरा विचार-सागर में डूबने-उतराने लगी। पर थाह न मिली।

दस दिन और व्यतीत हो गए। हीरा के अस्वस्थ होने का समाचार पाकर रामेश्वर नगर के दो प्रमुख डाक्टरो को लेकर दौड़े। रामेश्वर बगले के बाहर ही मोटर पर बैठे रहे। हीरा पलग पर पड़ी थी। डाक्टरो ने आते ही यन्त्र सभाले।

हीरा ने उत्तेजित होकर कहा—आप लोगों के कष्ट की ज़रूरत नही है, कृपा कर आप जाइए !

डाक्टरो ने उसे समझाना चाहा। उसने झल्लाकर कहा—वे···वे कहा हैं ? हाय ! वे कहां है ?

रामेश्वर ने धीरे-धीरे कमरे मे प्रवेश किया। हीरा ने उधर से मुह फेर लिया।

रामेश्वर ने कहा—ज़रा आप इन्हे देख लेने दे।

"आप इन्हे विदा करे।"

"किन्तु…"

"विदा कर दें।"

रामेश्वर ने डाक्टरो को विदा कर दिया।

रामेश्वर ने पूछा—शायद आपकी तबीयत अब अच्छी है, जरा आराम करने से ठीक हो जाएगी।

हीरा बोली—नही ! वह आख भी न मिला सकी। उसके ज़रा होठ फड़ककर रह गए।

रामेश्वर चलने को उद्यत हुए।

हीरा ने उद्विग्न होकर कहा—ठहरिए !

रामेश्वर बैठ गए। वह उठ बैठी, फिर खडी हो गई। रामेश्वर एकटक उसके मुख को ताकते रहे। हीरा आगे बढी। रामेश्वर उठकर पीछे हटने लगे। हीरा मानो होश मे न थी। वह सोच रही थी—क्या पुरुष स्त्री को सम्पदा और ऐश्वर्य देकर पुरुषत्व से उऋण हो सकता है ? स्त्री को पुरुष से जो कुछ चाहिए, उसके लिए भी क्या कोई पुरुष नारी को इतना तरसा सकता है ? हीरा का कण्ठ अवरुद्ध था। वह टूटते शब्दो मे, अश्रु-धारा मे डूबती हुई बोली—आप…आप क्या थोड़ा विष मुझे नही दे सकते ?—रामेश्वर ने करुणा, स्नेह और उदारता से कहा—आप यह क्या कह रही हैं ? आपके प्राणों के लिए मेरे प्राण, और आपके जीवन के लिए मेरा जीवन अभी हाज़िर है।

"वही तो, वही तो, वही तो मुझे दो। ये समस्त ठाठ, कोठी, बगले, अटारी, महल…सबमें आग लगा दो। इस अधम शरीर के लिए आपने इतना किया; पर ये प्राण सूखे जाते है; जीवन मरा जाता है; वही मुझे दो : अपने प्राण और अपना जीवन। मैं उसीकी प्यासी हू, इतना क्यो तरसाते हो ?"

निर्दयी, निष्ठुर—हीरा ने आवेश मे ये शब्द कहे। वह रामेश्वर पर झुक पड़ी, ज़ोर से उसकी कमीज़ फाड़ डाली ! फिर अचेत होकर धरती पर गिर गई।

रामेश्वर धैर्यच्युत न हुए। उन्होने धीरे से हीरा को उठाकर कौच पर लिटा दिया। होश मे आने पर हीरा झपटकर रामेश्वर से लिपटने को दौड़ी। रामेश्वर ने ज़रा हटकर मधुर स्वर मे कहा—कृपा कर सावधान होइए आपको क्या कष्ट है ?

हीरा खिसककर रामेश्वर के पैरो मे आ पड़ी। वह रो रही थी। अनन्त रुदन

उमड़ रहा था, बांध टूट गया था। अब हीरा नहीं रो रही थी, नारी-हृदय रो रहा था।

रामेश्वर ने कहा—आप क्या चाहती है? कहिए तो, मैं शक्ति-भर आपकी सेवा करूंगा।

"मै क्या चाहती हू, यह आप पूछते है? स्त्रिया पुरुषो से क्या चाहती है, यह आप पुरुष होकर नही जानते? आप ऐसे निष्ठुर पुरुष···" हीरा बीच ही में रह गई। आवेश से उसके होठ काप रहे थे।

रामेश्वर ने सयत भाषा मे कहा—मैं अच्छी तरह जानता हू कि स्त्रियां पुरुष से क्या चाहती हैं। परन्तु आप स्त्री नही, वेश्या है, यह दुखद सत्य मुझे कहना ही पड़ा। वेश्या को जो मूल्य देना होता है, मै शक्ति-भर दे रहा हूं।

हीरा कुछ भी न समझी। वह बोली—क्या वेश्याए स्त्री नही होती?

"नही।"

"कैसे?" हीरा ने गर्दन उठाकर पूछा।

रामेश्वर कहने लगे—स्त्री जगत् की एक पवित्र स्वर्गीय ज्योति है। वह पुरुष-शक्ति के लिए जीवन-सुधा है। स्त्री के बल पर पुरुष असख्य उत्तरदायित्व का भीषण से भीषण भार सहन करके भी जीवित रह सकता है। वह स्त्री दया, प्रेम, पवित्रता, दान, करुणा और कोमलता की मूर्ति होनी चाहिए। त्याग उनका स्वभाव, प्रदान उनका धर्म, सहनशीलता उनका व्रत और प्रेम उनका जीवन है। परन्तु वेश्या जगत् की एक विकृत वस्तु है! देखने में मोहक और कोमल, किन्तु वास्तव मे हलाहल विष, अपहरण उनका व्यवसाय, छल उनका स्वभाव, पाप उनका जीवन और पतन उनका मार्ग है। स्त्री जिस वस्तु को शरीर के टुकडे-टुकड़े होने पर भी किसीको अर्पण नही कर सकती, वेश्या उसे खुले बाजार टके सेर बेचती है। जानती हो, वह क्या वस्तु है?

"क्या वस्तु है?"

"अस्मत; हाय! वह अस्मत, जिसका वास्तविक मूल्य इस पृथ्वी पर है ही नही, और विधाता ने स्त्री समझकर वह दी थी। उसे आप—वेश्याएं—कोढ़ी, कलंकी, पतित, चाहे जिसे भी बेच देती है। ताबे के टुकडो मे इतनी शक्ति हम स्वार्थी पुरुष भी कभी नही अनुभव कर पाते।"

इतना कहकर रामेश्वर क्षणभर चुप रहे। हीरा चुपचाप, निश्चल पैरो मे

सिर नीचा किए पडी थी। रामेश्वर ने अतिशय करुण स्वर मे हीरा के सिर पर प्यार से हाथ रखकर किंचित् आकाश की ओर मुख उठाकर कहा—अभागिनी नारी! इस शरीर का समर्पण तुम कमीने धन के बदले मे चाहे भी जिस व्यक्ति को कैसे कर सकती हो? हाय! जैसे विष-पुष्प के सूघते ही मृत्यु आती है, वैसे ही विष-पुष्प तुम हो! पुरुष जो महान् पौरुष के बल पर मनुष्य समाज के प्रारब्ध का निर्माता है, कैसे निकृष्ट होकर वेश्या का दास बन जाता है! तुम वेश्या···

हीरा ने नेत्रो से स्वच्छ मोती के समान दो आंसू टपकाकर ऊचा सिर उठाकर कहा:

"आप मुझे वेश्या न कहे।"

रामेश्वर अटककर बोले—तब क्या कहे?

"मैं स्त्री हू।"

रामेश्वर की आखो में आसू भर आए और टपक गए। वे चुपचाप कुछ देर तक हीरा के सिर पर हाथ धरे बैठे रहे। फिर बोले—मैंने तुम्हे देखते ही समझ लिया था कि तुम स्त्री-रत्न हो, पर तुम्हारी चाहना उस वस्तु की न थी, जो किसी स्त्री की होना चाहिए। वेश्या होना स्त्रीत्व से पतित होना है। वेश्या बनकर कोई स्त्री तो रह ही नही सकती। मैने यह सोचकर कि वेश्या-वृत्ति कभी तो मरेगी और नारीत्व उदय होगा, इस देव-तुल्य शरीर को वेश्या के लिए जो मूल्य देना था देकर ले आया। मैंने निश्चय किया था, वेश्या-पुत्री हो तो क्या, वेश्या कभी न बनने दूगा। पर क्या सचमुच तुम स्त्री बनना चाहती हो?

"अवश्य, परन्तु···"

"परन्तु क्या?" हीरा ने बड़ी-बड़ी आखे उठाकर देखा, फिर नीचे देखने लगी।

रामेश्वर बोले—बोलो, बोलो!—हीरा ने अपरिमित अनुनय नेत्रो मे भर-कर कहा—मालिक मेरे! क्या स्त्री बनकर मुझे पुरुष प्राप्त होगा?

रामेश्वर घबराए। हीरा ने रामेश्वर का पल्ला पकड लिया। उसने कहा—मैं पुरुष के लिए ही स्त्री बनती हू।

रामेश्वर तन न सके। उन्होने कहा—प्रिये! स्त्री ही के लिए पुरुष है।

# कन्यादान

कन्यादान कहानी मे आर्यसमाज के कमजोर सुधार-पक्ष पर एक व्यंग्य है। सुधार मे जहा रूढि का प्रभाव है, उसीपर एक करारी चोट है। आर्यसमाज हिन्दू-समाज का एक सुधरा हुआ रूप है। कुरीति-पोषण सम्बन्धी बहुत कम आरोप आर्यसमाज पर किए जाते हैं। पर यह एक अति महत्त्वपूर्ण आक्षेप आर्यसमाज पर है। यद्यपि यह कहना अब से तीस वर्ष पुराना है, और अब तो हिन्दू समाज का भी रुख बदला हुआ है, फिर भी कहानी का वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है। सोद्देश्य कहानी में लेखक कैसा तीखा व्यग्य करता है यह कहानी इसीका एक सजीव उदाहरण है।

आगरा मेडिकल होस्टल के बराण्डे मे दो व्यक्ति खड़े थे। इनमे एक स्त्री, दूसरा पुरुष था। स्त्री की अवस्था सोलह वर्ष और पुरुष की इक्कीस के लगभग थी। स्त्री वास्तव में बालिका थी। उसका रग चम्पे की भाति सुहावना था, और तनिक-सी ही बात से उसके गाल लाल हो जाते और उसकी सरस आखे धरती मे झुक जाती थीं। यह उसकी लजीली प्रकृति के कारण था। वह धानी रग की साडी और ऊची एडी के बूट पहने, सिर नीचा किए खड़ी थी। युवक उत्सुकता से उससे किसी सुखद और अनुकूल उत्तर की प्रतीक्षा मे खड़ा था। दोनो ही व्यक्ति मेडिकल स्कूल के छात्र थे। बालिका ने सिर उठाकर कहा :

"आप इस तरह बार-बार न आया करें, सब लोग हसते है।"

"सब लोग हसते है, इसमे तुम्हारा क्या दुखता है?"

"मैं चाहती हू, आप यहा न आया करे।"

"और मैं यह चाहता हू कि सदा यही घूमा करू।"

"आपको बदनामी का भय नही?"

"रत्ती भर भी नही।"

"आपको सब्र भी नही?"

"नही, बिल्कुल नही।"

"मै आहके हाथ जोड़ती हूं, आप इधर न आया करें। न हो, लिखकर खत डाक में डाल दिया करें।"

"मगर दोनो ही इल्लतों से तुम्हारा पिण्ड छूट जाए, तो कैसा ?"

"वह किस तरह ?"

"उस बात का जवाब दे दो।"

बालिका लजाकर हस पड़ी। वह फिर धरती की तरफ देखने लगी। युवक ने कहा—बस यही तो बात है। देखो, आज मैं कब तक यहा खड़ा रहता हू।

"अब मुझे क्लास में जाना है, जाने दीजिए।"

"बिना जवाब दिए तो जाने न पाओगी, आज मैं हाथापाई भी कर डालूगा।"

"ईश्वर के लिए बेवकूफी न करो।"

"बेवकूफी का कोई समझदार बुरा नहीं मानता, तुम भी न मानोगी।"

"अब मुझे जाने दो।"

"जवाब दे जाओ।"

"किस बात का ?"

"उसी बात का।"

"मैं क्या जवाब दे सकती हू ? पिताजी को लिखिए।"

"मै तुम्हारा जवाब चाहता हूं। पिता जी से मैं निबट लूगा।"

"मैं कुछ नही कहती, अब मुझे जाने दीजिए।"

"मैं भी कुछ नही सुनता, हरगिज़ न जाने पाओगी।"

"बालिका ने रिस भरे नयनो से एक बार युवक को देखा, और हस दी। युवक ने कहा—लो, अब मैं तुम्हे छूता हूं।

"ना-ना, ईश्वर के लिए।"

"तब बताओ।"

"अच्छा पूछो।"

"बस, बता दो।"

"कुछ पूछो भी !"

"क्या तुम मेरी होगी ?'

युवती चुप हो गई। उसके गाल लाल हो आए, वह कापने लगी। उसने बोलना

चाहा, पर होंठ कापकर रह गए।

युवक ने कहा—बोलो-बोलो।

"क्या ?"

"सुना नहीं ?"

"नही।"

"फिर सुनो, क्या तुम मेरी होगी ?"

"हा।"

युवती भाग गई। युवक खड़ा निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा।

कन्या का नाम था इदु और युवक का देशराज। कन्या लाहौर के आर्यसमाज के मत्री की पुत्री थी, और युवक डेरा गाजीखां के आर्यसमाज के प्रधान का पुत्र। दोनो ही को घुट्टी मे आर्यसमाज की भावना पिलाई गई थी। दोनों के पिताओं में वाग्दान हो चुका था। घटना-क्रम से दोनों ही आगरा मेडिकल कालेज मे भरती हुए और घटनावश कन्या के पिता दक्षिण अफ्रीका व्यापार-संबंधी कार्यों से चले गए। घटनावश युवक की भी पैतृक संपत्ति अचानक सिंधु में बाढ आ जाने से डूब गई। यह घटनाओ का घटाटोप भी क्या बला की वस्तु है !

अस्तु। हम नही कह सकते कि भीतर ही भीतर मनुष्यों और गृहस्थों की भावना मे क्या-क्या परिवर्तन होते रहते है, फिर भी यह तो अवश्य कहा जाएगा, वह सिर्फ भीतर छिपी नही रहती, बाहर फूट पड़ती है।

दोनों ही युवक-युवती परस्पर प्रेम करते थे। यह तो आप समझ गए होगे। अब यदि उपर्युक्त गुप्त संभाषण सुनकर आप कहें कि कन्या शायद प्रेम नही करती, तो आप कहिए, हम आप जैसे अनाड़ियों को समझाए कैसे ? पर इस बात का हम विश्वास दिलाते है कि बातचीत मे कन्या ज़ितनी ज़बान-चोर थी, उतनी कलमचोर नही। वह किताब की किताब चिट्ठिया युवक को लिखती और युवक पोथों में उनका उत्तर देता। ईश्वर जाने दोनो कालेज मे पढ़ते-लिखते भी थे, या महज़ पत्रों ही मे दिल और दिमाग को हल करते थे। इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गए। कन्या के पिता ने विवाह का कुछ भी निर्णय नही किया। युवक विकल हो गया। उसने अनेक चिट्ठियां लिखी। अन्तिम चिट्ठी से झुंझलाकर कन्या के पिता ने युवक को लिख दिया—तुम अपने विवाह के संबध में मुह फाड़कर हमें

चिट्ठी लिखते हो, इससे तुम्हें शर्म नहीं आती, जबकि तुम्हारे पिताजी इस काम के लिए उपस्थित है ?

क्यों जी, भला शर्म किस बात की आनी चाहिए ? अंग्रेजी पढ़ा-लिखा जवान भी अपने जीवन-भर के मुख्य विषय पर न सोचे ? पर कहू किससे ? वे ठहरे आर्य-समाज के मन्त्री। उन्होंने साफ लिख दिया, इस विषय मे हमे पत्र न देना।

उधर कन्या को लिख दिया, तुम परीक्षा देकर छुट्टी होते ही फौरन जालन्धर कन्या-महाविद्यालय मे चली जाओ। वहां के लाला देवराज को मैंने लिख दिया है। वे पुत्री की भांति तुमको घर में रखेंगे।

कन्या चली गई। युवक देखता रह गया। वह सोचता था, यह कैसा सुधार ? कैसी शिक्षा ? कैसा नया जीवन ? हृदय में ज्ञान, तेज और स्वाधीनता का दीपक तो जला दिया, मगर इससे काम नही लिया जा सकता। खास कर ऐसे प्रश्न का तो विचार नही किया जा सकता। विवाह करेंगे माता-पिता। अच्छी बात है, ये आपापंथी बूढ़े अपना आपस में ब्याह करें, मैं कदापि अपनी इच्छा के विरुद्ध न करूंगा।

आर्यसमाज, आगरा भी कोई साधारण आर्यसमाज नही, और इसीलिए वहा के आर्यसमाज के प्रधान भी ऐरे-गैरे नही। उनका नाम बताने मे तो कुछ सार है नही, इतना कह देते हैं कि ठेकेदार थे। पजाब से भूखों मरते आए थे। यहां ईश्वर ने दोनो हाथों से उन्हे ढाप लिया। घोड़ागाड़ी, मकान, जायदाद सभी हो चुके। नही हुए तो पुत्र। अलबत्ता, कन्या हुईं तीन। एक-दो-तीन।

अच्छा पाठक महोदय, आप आर्यसमाज के प्रधानों को क्या समझते हैं ? जरा बताइए तो। उचित है कि आप उन्हे इज्ज़तदार और प्रतिष्ठित पुरुष समझें, यह भी उचित है कि आप उन्हें देखते ही 'नमस्ते प्रधान जी' एकबारगी ही कह उठे, और उनके तनिक से सिर हिला देने पर सन्तुष्ट हो जाएं। देखिए, वे है प्रधान, ठेकेदार, धनी। ऐसे आदमी न जाने कब काम आ जाएं।

अस्तु। अब काम की बाते सुनिए। प्रधान जी को भी समय पर कन्या से विवाह की हाजत हुई। आपने सभी प्रमुख आर्यसमाजी अखबारों मे उसके विवाह का विज्ञापन छपवा दिया। विज्ञापन में कन्या की आयु लिखी, रूप लिखा, गुण लिखे, वह स्वयंवरा होगी, यह भी लिखा, और उसके पिता आर्यसमाज के प्रधान हैं, यह

भी लिखा। विवाह जाति-पाति को तोड़कर होगा, यह भी लिख दिया। सब छपा दिया। एक ही चीज छपने से रह गई। वह था कन्या का चित्र। पर यह पंक्ति नीचे बढ़ा दी गई कि योग्य वरो के पास कन्या का चित्र भेज दिया जायगा, और अन्तिम निर्णय तो वर-कन्या स्वयं मिलकर ही करेंगे।

अब आप कहिए पाठक, योग्य वर कौन है। खास कर उस हालत में, जबकि जाति-पांति की कैद नही। अजी, ठेकेदार साहब की जाति क्या है, इससे आपको कोई वास्ता नहीं। जो चीज तोड़ दी गई उसकी बात ही क्या? अलबत्ता, अगर आप भंगी-चमार, धुनिए-जुलाहे या ऐसी ही सटर-पटर जाति के है, और आप विद्या और गुणों को प्राप्त करके ही उम्मीदवार बनकर जीभ चटकाने लगे, तो हम साफ कहेगे कि यह आपका दुस्साहस है। आपकी अक्ल यदि बिल्कुल ही मोटी धार की नही, तो आपको समझ लेना चाहिए कि आर्यसमाज के प्रधान यदि जाति-पांति तोड़ेंगे, तो नीचे गिरने के लिए नहीं, बल्कि ऊचे उठने के लिए। अभिप्राय यह कि वर ब्राह्मण होना चाहिए, और उसे ठेकेदार साहब की जाति-पांति की परवाह न कर उनकी 'पडिता' कन्या को ब्याह लेना चाहिए। हा जी, 'पडिता'; आप चौके क्यो? कन्या ने विद्याविनोदिनी पास कर लिया है, और सन्ध्या-हवन के मन्त्र उसकी जीभ के अगले भाग पर धरे रहते हैं। इच्छा होते ही वे फर-फर निकल पड़ते हैं। अलबत्ता, वर को 'ब्राह्मण-वंश' का होने के साथ धनी, विद्वान्, सुन्दर और ठेकेदार साहब का भक्त होना भी लाजिमी है। अब कहिए, हैं आपमें ये गुण? नही, तो आप अपना रास्ता नापिए। पंडिता जी से आप विवाह नही कर सकते।

प्रधान जी और देशराज जी बैठे बाते कर रहे थे। प्रधान जी ने कहा—देखो देशराज जी, तुमने कन्या का रूप तो देखा ही है, गुण में भी वह किसीसे कम नहीं। उसने विद्याविनोदिनी पास कर लिया है। वह नित्य सन्ध्या-हवन करती है, यह तो तुमने देखा ही है?

"जी हां, देखा है।"

"देखने में भी बुरी नही।"

"जी नहीं," देशराज ने झेंपकर कहा।

"अच्छा, अब तुमने डाक्टरी पास कर ही ली। यही काम शुरू कर दो। खूब चलेगी।"

"जी हां, मैं इस विषय पर विचार कर रहा हूं।"

"विचार क्या, जब मैं यहां हूं, तब चिता क्या ? तुम कोई गैर थोड़े ही हो। तुम्हारे पिता डेरा गाजीखां के प्रधान थे। हमारी-उनकी दांत-काटी रोटी थी।"

"बेशक।"

"तो मैं चाहता हूं कि तुम्हे स्वीकृत हो, तो यह रिश्ता हो जाए। लड़की तुम्हारे हर तरह योग्य है।"

"जी, मैं इसपर ज़रा विचार लूं।"

"विचारना क्या है ?"

"फिर भी।"

"वह कुछ नही। अच्छा क्या विचारना चाहते हो, ज़रा मुझे भी तो बताओ।"

"वास्तव मे मेरी विवाह-चर्चा अन्यत्र चल रही है, और पिता जी ही उस सम्बन्ध का वाग्दान कर गए थे। जब तक उस मामले मे कुछ हेस-नेस न हो जाए, मैं कुछ नहीं कह सकता।"

"शोक की बात है कि तुम आर्य होकर भी पिता के अधीन हो। भाई, विवाह तो स्वयं विचारने के है। वेद मे क्या लिखा है, जानते हो ? 'युवान विन्दते पतिम्,' समझे ? विवाह अब गुड्डे-गुड़ियो के खेल पोपो के हाथ मे तो नही हो सकते न!"

"आपकी बात ठीक है, परन्तु···"

"अब परन्तु क्या···अच्छा, तुम भीतर चलो, ज़रा काता से बात तो करो। वह तुम्हारे खयालात पलट देगी।"

ठेकेदार साहब उठे। युवक भी सकुचित होकर भीतर चले। ठेकेदार साहब ने कहा—बेटी, ये डाक्टर देशराज आए हैं। आओ, तुम्हारा परिचय कराऊं। ज़रा अपनी भजनों की पुस्तक लेती आना। हां, वह भजन हारमोनियम पर सुनाना, जो वार्षिकोत्सव पर गाया था। तुमने सुना था देशराज ?

"जी नही।"

"ज़रा सुनाना कांता ! हारमोनियम उठा लो।"

कांता ने निकट आकर युवक को नमस्ते किया। फिर उसने पिता की तरफ देखकर कहा—कौन-सा भजन बाबूजी ?

"वही—धरम पर तन-मन-धन कुर्बान···"

काता गाने लगी। उसकी अंगुलिया हारमोनियम के पर्दे पर इस भांति पड़ती

थी, जैसे तख्ते में कीले ठोकी जाती हो। स्वर निकलता था, मानो हाय-तोबा मच रही है। गाना क्या था, चीखना-चिल्लाना था। युवक चुपचाप सुनता रहा। समाप्ति पर उसने ज़रा मुस्कराकर ठेकेदार साहब से उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की।

ठेकेदार साहब फूलकर कुप्पा हो रहे थे। कन्या की स्वर-लहरी मे वे डूब-से गए थे। गद्‌गद कण्ठ से बोले—देखो भाई देशराज, अब देर का काम नही, तुम्हें हा या ना करना होगा।

"पर मैने अर्ज़ की कि बिना उधर से कोई जवाब आए कुछ कहा नही जा नकता।"

"तुम कहते हो, उसका पिता अफ्रीका में है?"

"जी हां।"

"और उसने लिखा है कि अगले साल आकर तब कुछ निर्णय करेगा?"

"जी हा।"

"यदि उसका निर्णय बदल गया?"

"हो सकता है, मगर···लड़की ने वचन दिया है।"

"लड़की ने?"

"जी हा।"

"तुम कहते हो, वह जालन्धर में है?"

"जी हा।"

"तुम वहा जाकर एक बार पक्का जवाब ले जाओ। न मिले, तो कह दो, मै शादी करता हू। अफ्रीका को भी तार दे दो। तुम द्विविधा में क्यों रहते हो?"

बहुत इधर-उधर करने पर युवक राजी हो गया। ठेकेदार साहब ने खड़े होकर घड़ी निकालकर कहा—मुझे एक मीटिंग में जाना है—दो घण्टे में आ जाऊंगा, तब तक खाना भी बन जाएगा, खाकर जाना। कांता से बातें करो—सत्यार्थप्रकाश इसने पढ लिया है, तुम इसकी परीक्षा लो। कांता, ज़रा उठा तो ला सत्यार्थप्रकाश।

युवक ने एक बार जाने की इच्छा प्रकट की, पर ठेकेदार साहब ने न माना। वे चले गए। चलते-चलते काता से कह गए, डाक्टर साहब को नाश्ता-वाश्ता करा देना।

जालंधर में इन्दु की सोलह कैलाए फली। वह परीक्षा दे चुकी थी, और लेडी डाक्टर के पद की अधिकारिणी हो गई थी। हिन्दू-बालिका के लिए यह पद अब से पन्द्रह वर्ष पूर्व असाधारण था। वह ज़मीन पर पैर न रखती थी। उसके लिए पृथक् बगला रहने को, फिटन सैर करने को, सेवक खिदमत के लिए नियत किए गए थे। इतना आदर, इतना वैभव ही उस बालिका के लिए यथेष्ट था। वह गर्व से फूलकर धरती मे ठोकर मारती और समझती थी कि धरती उसकी चोट से हिल उठी है। लाला गोवर्धनदासजी उसके अभिवावक बन गए थे। सुना है, वे उसके पिता के मित्र थे। और, पिता ने पुत्री को उन्हीकी देख-रेख मे रहने का आदेश किया था।

हम नही कह सकते कि देशराज को यह कन्या भूली या नही। बाह्याडबर, रूढ़ि और धर्म के पचडे मे प्रकृत प्रेम तो खो ही जाता है। अस्तु। ऐसी ही दशा में युवक देशराज जालधर जा धमके। इतना हम कह सकते है कि प्रकट कारण उनके वहा पहुचने का चाहे भी कुछ रहा हो, पर सच्चा कारण, जिसने इन्हे इतने शीघ्र वहा जाने को राज़ी कर लिया था, था एक बार उस रूप को देखना। उन होठों से निकलते हुए वाक्यो का सुधा-रस पीना और यदि सभव हो तो कर-स्पर्श करना। उन्हे पूर्ण आशा थी कि वह अपनी पुरानी प्रतिज्ञा दृढतापूर्वक दुहराएगी।

परन्तु वहा हुआ क्या, यह सुनिए। दो घण्टे विद्यालय के दफ्तर मे बैठने के बाद प्रबन्धकर्ता महाशय बडी-सी पगड़ी सिर पर लपेटे और मोटे पट्टू का भद्दा-सा कोट पहने आए, और बोले—आप कहा से आए है ?

"मैं आगरा से आया हू।"

"आपका नाम ?"

"मेरा नाम देशराज है।"

"आप क्या चाहते है ?"

"मै इन्दुकुमारी से मिलना चाहता हू।"

"आप उसके क्या लगते है ?"

युवक झेप गया। क्या जवाब दे, कुछ भी न सोच सका। कुछ ठहरकर बोला—उससे मेरी मगनी हुई है।

"फिर इस समय उससे आप क्यो मिलना चाहते है ?"

"उससे कुछ खास बातें करनी है ?"

"किस विषय पर ?"

युवक को क्रोध आ गया। उसने कहा—वह मैं आपको नही बता सकता।

"क्यों ?"

"आपको कोई अधिकार नही।"

"मैं उसका अभिभावक हूं, मुझे पूर्ण अधिकार है कि मैं किसी फालतू आदमी को उससे न मिलने दू।"

"मैं फालतू आदमी नही हूं।"

"यह मैं कैसे समझू ?"

युवक डाक्टर क्रोध के मारे हांफने लगे। बोले—आप जाकर मेरा नाम लीजिए। उनकी इच्छा मिलने की न होगी, तो मैं चला जाऊगा।

"पर जब तक मैं अपनी तसल्ली न कर लू, उसे इत्तिला नही कर सकता।"

"क्या वह कैदी है ?"

"चाहे जो कुछ भी समझें।"

"मैं उससे अवश्य मिलूगा।"

"यहां आप नियम के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते।"

"तुम्हारे नियम जहन्नुम मे जाए।"

"अभी आप अहाते से बाहर चले जाइए।"

"क्या, मैं ?" युवक ने घूसा ताना। एक शिष्ट पुरुष ने कमरे मे प्रवेश करके कहा—मामला क्या है ?

"यह महाशय मुझे अहाते से बाहर निकाल रहे है, शर्म नहीं आती। जब चंदा मांगने जाते है, भिखारी से ज्यादा बेगैरत, निर्लज्ज और ढीठ बन जाते है। हमारे ही रुपये से अहाता बनाकर हमें ही बाहर निकालते हैं—दो कौड़ी के टुकड़-गधे। अफसर बने है, धौस से बातें करते है, जैसे बाप का घर है।"

युवक एक ही सांस मे कह गया। आगंतुक ने कहा—अजीज़, मैं अधिष्ठाता हूं, मेरा नाम देवराज है। तुम चाहते क्या हो, मुझे बताओ।

"मैं इन्दु से मिलना चाहता हूं।"

"बिना इस बात का निश्चय हुए कि किसी कन्या से किसी युवक का मिलना उचित है—नही मिलाया जा सकता। या तो तुम उसके रिश्तेदार होते या···।"

"मेरे साथ उसकी मंगनी हुई है।"

"मगनी ? क्या तुम डेरा गाज़ीखां के आर्यसमाज के प्रधान लाला धर्मराज के पुत्र हो ?"

"जी हां।"

"देशराज ?"

"जी हा।"

देवराज जी ने युवक के दोनो कंधो पर हाथ रखकर कहा, "ओहो, तुम इतने बड़े हो गए ! ऐसे तगडे जवान ! मैने तुम्हे ज़रा-सा देखा था। यहा आए कब ?"

"अभी।"

"मुझे लिखा क्यो नही ?"

"ज़रूरत क्या थी ?"

"अच्छा, स्नान-भोजन करो। शेप वाते फिर होगी।"

"मुझे अभी लौटना है। जिस काम से आया हू, उसे करके लौट जाऊगा।"

"तुम इन्दु से क्यो मिलना चाहते हो ?"

युवक फिर क्रोध मे भरकर देवराज जी को घूरने लग गया। देवराज जी ने कहा—तुमको एक वात शायद नही मालूम !

"वह क्या ?"

"इन्दु के पिता ने अपना विचार बदल लिया है, और इन्दु मे तुम्हारी मुलाकात न हो सके, इसकी हिदायत कर दी है।"

"पर मैं इन्दु की सम्मति जानना चाहता हू।"

"उसकी सम्मति से क्या होगा ?"

"इन्दु बच्ची नही, वह अपना हानि-लाभ स्वय सोचेगी।"

"पिता के रहते यह कैसे हो सकता है ?"

"आप जो यह कहते है कि हमें युवक-युवतियो के स्वयवर करने है, सो क्या इसी भांति करेंगे ? स्वाधीनता भी देते है, युवावस्था तक क्वारा भी रखते है, विवाह-विषय पर सोचने का उन्हें अवसर भी देते है, पर निर्णय करते हैं आप अपनी ही इच्छा से। जैसे बच्चो का विवाह हिन्दू करते है, वैसे बचपन ही मे क्यो नही आप ब्याह करते ?"

"सब बातें धीरे-धीरे होगी।"

"खैर, मैं इन्दु की सम्मति लूगा। वह चाहेगी, तो मै उसके पिता की बिना

मर्जी ही ब्याह करूगा।"

"यह संभव नही। उसके पिता की बिना मर्जी हम तुम्हे उससे मिलने नही दे सकते।"

"यह तो अत्याचार है। खैर, आप उससे पूछ लीजिए कि क्या वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है। यदि ऐसा होगा, तो मैं आगे कुछ उपाय सोच लूगा।"

"ऐसा नही हो सकता। उसके इच्छानुसार काम नही हो सकता।"

"तब आप उससे यह बात न पूछेगे?"

"नही।"

"न मिलने ही देगे?"

"नहीं।"

"यदि मैं एक पत्र लिखू, तो उत्तर मगा देंगे?"

"कुमारी कन्या को इस विषय पर पत्र लिखना अनुचित है।"

"पर वह बालक तो नही?"

"फिर भी कन्या है।"

"दुनिया भर की कन्याए भी इस विपय पर स्वय ही विचार करती है।"

"भारत मे वह समय नही आया।"

"आप उसे आने भी न देगे, बल्कि भयानक परिस्थिति पैदा कर देंगे। बहुत अच्छा, मै जाता हू। आप उसके पिता को लिख दें कि वह अपनी कन्या का चाहे भी जहा विवाह कर दें। मेरी प्रतीक्षा न करें।"

युवक उठकर चलने लगा। लाला देवराज ने ठहराने की बहुत चेष्टा की, पर युवक चला ही गया।

आगरा पहुचकर देशराज सीधे स्टेशन से ठेकेदार साहब के यहा पहुचा। उसने छूटते ही कहा—मैने आपका वचन स्वीकार करने का निर्णय कर लिया है। वहां मैं जवाब दे आया हू, और रास्ते-भर मैंने सोचकर विचार पक्का कर लिया है।

ठेकेदार साहब अपनी बैठक मे बैठे थे। उनके सामने और दो व्यक्ति थे. एक युवक और एक दाढ़ी-मूछों से भरपूर साधु-वेषधारी।

ठेकेदार जी ने गंभीर मुद्रा से कहा—देशराज जी, आपने देर मे निर्णय किया। मै इन युवक से कन्या का सम्बन्ध तय कर चुका। ये गुरुकुल के स्नातक पडित

रुद्रचन्द्र विद्यालंकार हैं। आपने इनका व्याख्यान तो सुना होगा, सभा को कम्पायमान कर देते हैं। शायद आप पिछले शास्त्रार्थ में न थे। इन्होंने सनातनियों के दांत खट्टे किए थे। मेरी तो इनसे पहले जान-पहचान न थी। ये स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज हैं, इन्होंने अभी परिचय दिया। कांता ने भी इन्हें पसन्द कर लिया है, मैंने इन्हें वचन दे दिए। अब ये दोनों पंडित स्त्री-पुरुष धर्म-प्रचार में जीवन व्यतीत करेंगे।"

देशराज हक्का-बक्का खड़े रहे। बड़ी देर तक उनके मुंह से बात ही न निकली। कुछ ठहरकर वे कांपते-कांपते बोल उठे—आप ऐसा नहीं कर सकते। यदि आप ऐसा करेंगे, तो मैं आपको जान से मार डालूंगा।

ठेकेदार साहब के सामने ऐसी गुस्ताखी करनेवाला यही प्रथम व्यक्ति था। उन्होंने एकदम खड़े होकर कहा—निकल जाओ, इसी वक्त निकल जाओ!

"निकलना क्या, मैं आपका खून पी जाऊंगा। आपको शर्म नहीं आती, जवानों को बुला-बुलाकर लड़की से मिलाते हैं, गाना सुनवाते हैं, सौदा पटाते हैं, और दूसरा अच्छा मिलने पर राय बदल देते हैं, यह क्या मजाक समझा है?"

"क्या मैंने तुमसे पक्का वादा किया था? तुम भी सोच रहे थे, मैं भी सोच रहा था।"

"आपकी लड़की ने पक्का वादा किया था।"

"मेरे सामने लड़की क्या कर सकती है?"

"लड़की बालिग है! वह अपना लाभ-हानि सोच सकती है। आपका फ़र्ज़ उसके इच्छानुसार काम करने का है, न कि अपनी मनमानी करना।"

"मुझे तुम्हारी सलाह की ज़रूरत नहीं।"

"मैं अभी आपकी लड़की से पूछना चाहता हूं।"

"तुम उससे नहीं मिल सकते।"

"उससे मिलने की मुझे ज़रा भी इच्छा न थी, आपने ही मिलाया था, अब मैं उससे अवश्य मिलूंगा।"

"यह हो नहीं सकता।"

"आप रोक नहीं सकते।"

युवक देशराज तीर की भांति बाहर निकल गया।

स्नातक पं० रुद्रचन्द्र विद्यालंकार, आयुर्वेदनिधि, तर्कशिरोमणि स्थानीय आर्य-समाज मदिर में ठहरे थे। देशराज ने वही पहुंचकर उनसे कहा—मैं आपसे कुछ बातें एकान्त में किया चाहता हूं।

"आप वही सज्जन है, जो प्रधान जी के घर लाल-पीले हो रहे थे?"

"जी हां।"

"और आप बातें भी उसी ढग की करेंगे?"

देशराज ने गुस्सा पीकर कहा—मगर आपके फायदे की।

"तब कहिए।"

देशराज ने चिट्ठियों का एक गट्ठा जेब से निकालकर कहा:

"ये चिट्ठियां आपकी भविष्य धर्मपत्नी की हैं। ये सभी प्रेम-पत्र है जो उसने समय-समय पर मेरे पत्रो के उत्तर मे लिखे है। वह मुझसे प्रेम करती है। मैं भी उसे पसन्द करता हूं। फिर इस सम्बन्ध के लिए उसके पिता ने मुझे महीनो हठ करके राजी किया है, और मैंने इस सम्बन्ध के लिए अपना पूर्वनिश्चित रिश्ता भी तोड़ दिया है। आप विद्वान है, और गुरुकुल के स्नातक है। आपको उचित नही कि ऐसे मामले में पैर बढ़ाए।"

"परन्तु जब उसके पिता की इच्छा है, तब मै क्या कर सकता हूं?"

"कैसी अद्भुत बात है! सभी एक स्वर अलापते हैं। अजी, कन्या क्या पिता की ज़रखरीद जायदाद है, या उसकी मेज़-कुर्सी, कलम-दवात या कोई रद्दी-सी किताब है, जिसे वह चाहे जिसे दे सकता है? आखिर लड़की भी एक जीव है, उसके मन है, आत्मा है, शरीर है, दिमाग है, अपना भला-बुरा सोचने की तमीज़ है। जीवन का सगी जैसा व्यक्ति उसे स्वेच्छा से तलाश करने, पसन्द करने का भी हक नही, खास कर जवान लडकियो को, जो आर्यसमाज के प्रधान की पुत्रियां हों और पढी-लिखी हों, जिन्हे उनके पिता ने स्वय विवाह की आज़ादी दी हो, युवकों से मिलाया हो, और एक-दूसरे को पसन्द करने, प्रेमालाप करने, पत्र-व्यवहार करने के महीनों सुभीते दिए हों?"

युवक देशराज झोक मे एकबारगी ही उपर्युक्त व्याख्यान बखान गया।

स्नातक महाशय ने ज़रा आंख-भौ चढ़ाकर कहा—मैं तो पहले ही से जानता था कि आपका बातें करने का ढंग तूफानी है। महाशय जी, पिता जिसे चाहता है, उसे ही कन्यादान करता है। यह विलायती कोर्टशिप नहीं, वैदिक विवाह है,

इसमें पवित्र वेद-मन्त्रों के द्वारा अग्नि को साक्षी करके पिता कन्या को जिसे देता है, वही उसका पति बनता है। आप अंग्रेजी सभ्यता और शिक्षा के भूत को सिर पर सवार करके विलायती कोर्टशिप करते है। शोक है ! सुना है, आपके पिता…"

"मेरे पिता से आपको कोई सरोकार नही। आप ज़रा बता सकते हैं, किस वेद-मंत्र मे लिखा है कि पिता को कन्यादान का अधिकार है ?"

"साफ लिखा है—ओं अमुक गोत्रोत्पन्नामिमाममुक नाम्नीमलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्—यह आपने नही पढ़ा ?"

"नही, यह किस वेद का कौन-सा मंत्र है ?"

"सस्कार-विधि में लिखा है।"

"संस्कार-विधि कौन-सा वेद है—पाचवां या छठा ?"

"सस्कार-विधि वेद नही है, परन्तु उसमे वेद से मंत्र लिए गए हैं।"

"यही मैं पूछता हूं, किस वेद से यह मंत्र लिया गया है।"

"स्नातक जी घबरा गए। वे इधर-उधर करके बोले—सारे प्रमाण तो स्मरण नही। परन्तु शोक है, आप आर्यसमाज के प्रधान के पुत्र होकर भी ऋषि-ग्रंथ पर शंका करते हैं !"

"शोक आपपर है कि आप आंख और अक्ल दोनों के अंधे हैं। आपको बताना होगा कि उपर्युक्त वाक्य किस वेद-मंत्र मे है।"

"मान लीजिए, वह वेद-मत्र नहीं है।"

"तब कन्यादान किस वेद-मत्र मे है, यह बताइए।"

"मनुस्मृति मे है।"

"मनुस्मृति कौन-सा वेद है ?"

"स्मृति सदैव ही श्रुति के अनुकूल होती है।"

"मनुस्मृति किस श्रुति के अनुकूल है ?"

"चारो वेदों के।"

"तब चारो वेदो में से कन्यादान का अधिकार कहीं एक स्थान पर ही दिखा दें !"

"अथर्ववेद मे लिखा है—'कोऽदात् कस्मै आदात…'।"

"इसमे कन्या देने का विषय कहा ? ज़रा इस मत्र का भाष्य तो निकालिए।"

"आप कुतर्क करते है।"

"और आप बगलें झांकते है। मैं वेद मे कन्यादान का पिता का अधिकार देखकर उठूगा।"

"वरना ?"

"वरना मैं आपका भाजना बिगाड़ दूगा। आपको शर्म नही आती, दूसरों के काम मे दाल-भात मे मूसलचन्द की तरह टपकते है। बात-बात पर वेद-वेद चिल्लाते है। समाज-सुधार का दम भरते है, मगर पुराने ढकोसलों के गुलाम हैं। गजों लम्बी डिग्री की दुम लगाए फिरते हैं, मगर इतना भी नही मालूम, वेद क्या हैं, और सस्कार-विधि या मनुस्मृति क्या है ? यही आपकी गुरुकुल की योग्यता है ?"

"आप क्या मेरी परीक्षा लेते हैं ?"

"मुझे इस व्यर्थ काम की फुर्सत नही। आप वेद में से यह बताइए कि किस वेद-मत्र में लिखा है कि पिता को कन्यादान का अधिकार है ?"

"मैं देखकर बताऊंगा।"

"कब ?"

"मैं आपको खबर कर दूगा।"

"और जब तक आप न बताएं या वेद में आपको कन्यादान का विधान न मिले, तो आप प्रतिज्ञा कीजिए कि आप जब और जहा विवाह करेंगे, कन्या से करेंगे, उसके पिता की इच्छा से नही।"

"मैं किसी प्रतिज्ञा के लिए बाध्य नहीं।"

"तब मैं इन चिट्ठियो को अदालत मे पेश करूगा, और उस लड़की को भी। तब अदालत यह फैसला करेगी कि वह स्वयं ही अपने विवाह की अधिकारिणी है या उसका पिता ?"

"आप यदि उससे प्रेम करते है, तो आप उसे इस प्रकार ज़लील करेंगे ?"

"और आप उस स्त्री से विवाह करेगे, जो दूसरे युवक से प्रेम करती है, जिसके प्रमाण ये पत्र हैं ?"

"क्या आपको यह शोभा देता था कि उस कन्या की यह गुप्त बात औरो पर प्रकाशित करते ?"

"मैं जानता हूं, आप और उसके पिता उसपर उसकी इच्छा के विपरीत अत्याचार कर रहे हैं, तब मैं आपको वस्तुस्थिति दिखाने आया था। पर देखता हूं,

आपने इन पत्रों को देखकर भी अपना मत नहीं बदला।"

"नही, मैंने तो मत नही बदला।"

"क्या वह आपसे प्रेम करती है ?"

"विवाह होने पर स्वयं करेगी।"

"आप उससे प्रेम करते है ?"

"मुझे करना पड़ेगा।"

"यदि वह न करे ?"

"यह उसके लिए पातक है।"

"यह क्यों ?"

"पति की मन, वचन, कर्म से उसे विश्वासिनी होना चाहिए। पर-पुरुष का ध्यान उसे न करना चाहिए।"

"तब, जब कि उसने पति को स्वेच्छा से चुना हो।"

"स्त्रिया कभी स्वतन्त्र नही हो सकती। मनुस्मृति में लिखा है—न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।"

"और वेद में लिखा है—ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।"

"खैर, मैं आपसे इस विषय पर बहस नही किया चाहता।"

"तो आप उस स्त्री से विवाह करने को राज़ी हैं, जो अन्य व्यक्ति से प्रेम करती है ?"

"इसके लिए आपके सम्मुख मै जवाबदेह नहीं।"

"आप शायद तभी ऐसी विधवाओ से भी विवाह आसानी से कर लेते हैं, जिनके तीन बच्चे हो गए हों या जिन्होने पति को त्याग दिया हो।"

युवक देशराज घृणापूर्वक एक बार स्नातक महाशय को देखकर तेज़ी से चला गया।

"जल्दी कहो, क्या कहना है ? माताजी कही देख न ले।"

"क्या उन्होने कभी देखा नही है ?"

"पर तब मे और अब मे भेद हो गया है।"

"क्या भेद है ?"

"आपको सब मालूम है।"

"तुम्हारे दिल में भी भेद हो गया है ?"

"मै क्या कर सकती हू ?"

"तुम एक बार कह दो कि मैं इस विवाह को पसन्द नही करती। बाकी काम मै कर लूगा।"

"यह नही हो सकता। मैं पिता के विरुद्ध कुछ भी नही कर सकती।"

"उस सूखे-रूखे गुरुकुल के मूढ़ के पल्ले पड़ोगी ?"

"ईश्वर की जो इच्छा।"

"ईश्वर इसमें क्या करेगा ?"

"मै ही क्या कर सकती हूं ?"

"तुम कहभर दो। फिर मैं देख लूगा।"

"यह मुझसे न होगा।"

"तब तुम उसे ही चाहती हो ?"

"इस चर्चा को न छेड़ो।"

"क्यो न छेडू, मैं तो बर्बाद हुआ, यार लोग आबाद हुए।"

"आपको विवाह की क्या कमी है, जो इतना गिरकर उनके पीछे पड़ते हो ?"

युवक ने देखा, कान्ता का स्वर बदल गया है। वह भीतर छिपे प्रेम को देखकर बोला—कान्ता, तुम्हारे लिए मैंने एक परम सुन्दरी लड़की ठुकरा दी।

"ईश्वर इसका तुम्हे बदला देगा।"

"पर तुम पराई हो जाओगी ?"

"मैं कुछ भी नहीं कर सकती, जो भाग्य में होगा, भोगूगी। पर मैंने सुना है, आपने मेरे पत्र उन्हे दिखाए थे, यह सच है ?"

"सच है।"

कान्ता चुप रही। फिर वह रोने लगी। रोकर उसने कहा—पुरुष ऐसे ही प्रेमी होते है ? क्यो ?

युवक लज्जित हुआ। पर उसने कहा—मेरे कलेजे में आग जल रही है।

"सिर्फ तुम्हारे कलेजे मे ही ?"

"और की मै क्या जानू ?"

"अच्छी बात है, अब जाओ। उन खतो का क्या करोगे ?"

"अदालत मे दावा दायर करूंगा।"

कांग्रेस-कमेटी के भी प्रधान है । आज उनकी गिरफ्तारी की भी ज़ोरो की अफवाह है । बहुत दिन बाद आज डाक्टर साहब भी सभा देखने आए है । भीड बीस-पच्चीस हज़ार से कम नही ।

सभा समाप्त हो गई । स्त्री-पुरुष उठ-उठकर तितर-बितर हो गए । डाक्टर साहब धीरे-धीरे जा रहे थे । एक कोमल कण्ठ ने पुकारा—डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब ने लौटकर देखा, बिजली का कुछ प्रकाश वहां था । आगन्तुक स्त्री थी, उसकी उगली एक बच्ची पकडे थी । पहले उन्होने पहचाना नही, पर फिर पहचाना, कान्ता है । वे मन के आवेग को रोककर बोले—ओह ! आप !

कान्ता पास आकर खड़ी हो गई । बालिका से कहा—डाक्टर साहब को नमस्ते करो बेटी ।

बालिका ने नमस्ते किया ।

डाक्टर साहब ने बच्ची को गोद मे उठाकर पूछा—तुम्हारा नाम क्या है बेटी ?

"सुशीला ।"

"वाह ! सचमुच सुशीला हो ।"

बालिका ने स्थिर नेत्रो से डाक्टर को देखकर कहा—आपका नाम क्या है ?

डाक्टर विचलित हुए । सभलकर बोले—हमारा नाम डाक्टर साहब ।

"आप हमारे घर नही आते ?"

"तुम बुलाओ तभी तो आएं ।"

"अच्छा आना ।"

"क्या दोगी ?"

"पूरी और मिठाई ।"

"बहुत अच्छा, आएगे ।"

कान्ता चुप खड़ी थी । अब उसने कहा—डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब चौके । वे कान्ता को देखने लगे ।

कान्ता ने कहा—डाक्टर साहब ! अब भी आप कभी रोते है ?

डाक्टर साहब की छाती मे एक घूसा लगा । उन्होने जोर से बच्ची को छाती से लगा लिया, वह कान्ता की तरफ देख भी नही सके ।

कान्ता ने फिर कहा—डाक्टर साहब ! अब उतना भय नही है, सकोच भी

नही है, कभी सुशीला को देख जाया कीजिए। विधवा अभागिनी आपको देखकर प्रसन्न होगी।

डाक्टर टप-टप आसू गिराने लगे। उन्होने बालिका को चुपचाप गोद से उतार दिया। उधर से एक खोचेवाला आ रहा था, उसे पुकारकर बालिका को कुछ दिलवाने लगे।

काता का भी गला रुध गया था। वह बोल ही न सकी।

डाक्टर ने कहा—जाता हूं।

"सुशीला बेटी, डाक्टर साहब को कब बुलाएगी?"

"कल आप आएगे डाक्टर साहब? मै तुम्हें अपनी एक चीज दिखाऊगी।"

डाक्टर ने फिर उसे उठाकर छाती से लगाया, प्यार किया, और तेजी से चल दिए।

कांता खडी देखती रही।

क्या वह रो रही थी?

# बाहर-भीतर

विवाह के लिए स्त्री की सुन्दरता ही आज भी प्रधान मानी जाती है, और उसके दूसरे गुण-दोषो को पीछे डाल दिया जाता है। इस कहानी में अत्यन्त मोहक रीति से इसी प्रश्न का व्यावहारिक और मनोरजक वर्णन है। यह कहानी भी आचार्य की समाज-समस्या पर अब से तीस वर्ष पूर्व की विचार-शृखला की द्योतक है।

उसे देखते ही नैन विद्रोही हो उठे। मै दशहरे की छुट्टियो मे कॉलेज से बड़ी उमग से घर आया था। ब्याह के बाद वह पहली ही बार घर आई थी। इसकी खबर भाभी ने मुझे बडे ही रसभरे शब्दो मे दे दी। ब्याह में मैने उसकी एक झलक भर देखी थी, उसी झलक की याद में मैने ये तीन साल के एक हज़ार दिन उंगली पर गिन-गिनकर काटे थे।

पाठको, आपमे क्या कोई भी ऐसा है, जो मेरी तरह नई दुलहिन से पहली बार मिलने की प्रसन्नता मे अपना आपा न भूल जाए? इस दुनिया मे युवक के लिए दुलहिन से बढकर कौन चीज़ मीठी हो सकती है? मैने दर्जनो हिन्दुस्तानी और विलायती काव्य, नाटक तथा उपन्यास पढे थे। कालिदास की शकुन्तला की मूर्ति तो मेरे मानस-नेत्रो मे बस रही है। जैसे ओस से भीगा हुआ गुलाब का फूल वसन्त की हवा मे झूम रहा हो, वैसे ही लज्जा, कोमलता और सुन्दरता की मूर्ति-सी शकुन्तला मेरे मन मे झूमती रहती है। मैंने शेक्सपियर की रोज़ालिंड और जूलियट भी अपनी आखों के हिंडोलों मे झुलाई है। मैं क्या मनुष्य नही, युवक नही, मेरी रगों में गर्म खून नही? अजी, मैंने नई दुलहिन पाई थी तीन साल पहले। पर हिन्दू-जाति मे जन्म लेने के कारण ब्याह से पहले उसे नही देख सका; पसन्द करने, प्यार करने, हृदय और आखों का सौदा करने का सुभीता न पा सका तो भी क्या हुआ? भारतीय स्त्रियों जैसा रूप, सच्चा प्यार! भाभी ही को लो। दुनिया में कौन फूल ऐसा सुन्दर और कोमल हो सकता है! वह ईश्वर का दिया

हुआ आशीर्वाद-सा है, ससार को सुखी बनाने के लिए वही काफी है। भैया तो जैसे भाभी मे घुल गए है। मै जब उन्हे याद करता हू, उन्हे प्रणाम करता हूं।

ऊषा कैसा प्यारा नाम है। जब से मैंने ऊषा से ब्याह किया है, हमेशा ऊषा-काल में जाग उठता हू। मै एकटक देखता रहता हू। कितनी प्यारी सुनहरी किरणो को धरती पर बिखेरती है! पूर्व के आसमान पर पीली लगती है। वह ऊषा—पीली, शात, उजला आलोक। वह कैसी प्यारी लगती है, किस तरह आनन्द देती है!

ऐसे ही मेरी ऊषा भी मेरे जीवन के अधेरे को छूते ही उज्ज्वल आलोक करेगी।

उसके पिता रायबहादुर है, सेशन जज है, प्रतिष्ठित नागरिक है। वह फार्वर्ड घराने की शिक्षिता कन्या है। ऐसे उच्च घराने की शिक्षिता कन्याएं क्या मैंने देखी नही? मेरी ही क्लास मे लगभग आधी दर्जन ऐसी कुमारिया पढ़ती है। जब वे क्लास मे आकर बैठती है, क्लास जैसे जगमगा उठती हैं, देखकर प्राण हरे हो जाते हे, ससार सुन्दर हो जाता हैं। उन शिक्षा-सगिनियों का वह क्षणभर का सग मेरी नस-नस को जवान बना देता है। लीला की गहरी आसमानी साडी, चन्द्रमा-सा मुख और हथिनी के समान मस्तानी चाल! प्रोफेसर भी देखते ही रह जाते हैं। नलिनी जब आती है, आधी की तरह; उसके मोती-से दात और उभारदार सीना। देखकर कलेजे मे हिलोरे उठने लगती है। लीला की चश्मेदार आखो से जो हंसी बिखरती है, उसपर क्लास-भर के लडके लोट-पोट हो जाते है। कहा तक कहू? लेकिन मै तो तीन साल तक यही सोचता रहा कि मेरी ऊषा इन सबसे बढ़-चढकर होगी। जब-जब मेरा मन इन स्वदेशी मिसों की ओर मचला, जो बीसवी सदी मे लापरवाही से सडकों पर अपना रूप छितराती फिरती है, तो मैने समझा-बुझा-कर काबू मे ही रखा। तीन साल इसी तरह मैने पूरे किए। भीतर ही भीतर मै ऊषा को अपने बिल्कुल नजदीक खीच लाया। मैंने उसे देखा नहीं, समझा भी नहीं। पर इससे क्या? वह मेरी दुलहिन है। मै इस बात को नही मानता कि जिन स्त्री-पुरुषो मे प्रेम हो वे ही ब्याह करें। मै तो इस उसूल का कायल हू कि जिनसे ब्याह हो जाए, वे स्त्री-पुरुष आपस मे प्यार करे। इसलिए ऊषा को न पाकर भी मेरे प्यार का पौधा तो बढता ही गया।

अब मै एम० ए० पास कर चुका। मेरी पढाई पूरी हो चुकी। ऊषा भी घर आ गई। भाभी ने मुझे दौड आने को लिखा था, सो मै तूफान-मेल से दौड़ा हुआ

घर आ पहुंचा। पहली मुलाकात थी, इससे मेरा कलेजा धड़क रहा था; लेकिन खुशी मे मेरे रक्त की एक-एक बूद नाच रही थी। दिन इन्तजारी और इधर-इधर की खट-खट मे बीता, रात को ज्यो ही वह मेरे कमरे मे आई, उसे देखते ही मेरी आखें जल उठी।

क्यों ? सो कहता हू, सुनिए। मैंने सोचा था, वह धीरे से ज्यो ही मेरे कमरे मे आएगी लेवेंडर और सेंटो की लपटो से कमरा महक उठेगा। उसकी रूप-ज्योति से मेरे कमरे मे चांदनी हो जाएगी। जैसे मेरे क्लास मे मेरी सुघड, सुन्दरी सहपाठिनियो के आने से हो जाता था। वह उन्हीकी तरह छिप-छिपकर, नयनबाण चला-चलाकर मेरे सोए हुए हृदय को जगाएगी, और उन्हीकी तरह मन्द मुस्कान से मेरे मन को सुख-सागर में डुबोएगी। वह आकर धीरे-धीरे लाज से नीचा मुह कर मेरे पास खड़ी हो जाएगी। इसके बाद क्या करना होगा, सो क्या मैं जानता नही ? अनाड़ी नहीं हूं, मैंने सब सोच रखा है। मैं उसे खीचकर पास बिठा लूगा, घूघट दूर करूगा, और उस चाद-से मुख को चूम लूगा। बार-बार चूमूगा। इतने ही से मेरा जीवन सफल हो जाएगा। जिस दिन की याद मे मैने दुनिया की सुन्दरियो को हेच समझा था, वह समय आज आ गया। अहा ! मै कितना भाग्यवान् हू ! उसके सदुपयोग के सब साधन मै जुटाए बैठा हू। भाभी ने बहुत-सी मिठाई, फूल-मालाए, इत्र, सेट और न जाने क्या-क्या मेरे पास रख दिए थे। फिर मै भी तो ऊषा के लिए बहुत-से उपहार लाया था। वे सब मेरे पास थे। इन सबका किस तरह उपयोग करना होगा, यह सब मैंने सोच रखा था।

हा, तो मैं कह रहा था कि वह ज्यो ही मेरे निकट आएगी, उसका घूघट हटा, लज्जावनत मुख उठाकर मधुर चुबन लूगा। ओह, पति का प्रथम चुबन नववधू के लिए कैसा अमिट स्नेह-चिह्न होगा ! वह फिर धीरे-धीरे मेरे पास आएगी, मैं उसे अकगत करूगा, मीठी बातो से सकोच दूर करूंगा, उसे प्रेम मे डुबो दूगा; वह मेरे चरणों को चूमेगी, मुझे पाकर धन्य होगी, चिरवियोग के लिए रोएगी। अरे, वह साक्षात् कालिदास की शकुतला की भाति प्रेम-विह्वला होगी। उस दिन मै शकुन्तला को कई बार पढ़ गया।

पर जब वह आई तो मैंने अपनी आशा के बिल्कुल उल्टा पाया। लेवेंडर और सेंट का नाम न था। वह एक साधारण, किन्तु उज्ज्वल साडी पहने थी। पैर मे

चप्पल थे। बाल बिखरे तो न थे, परन्तु बहुत टीमटाम से सवारे भी न थे। उसका वेश बिल्कुल सीधा-सादा था। हा, उसे उज्ज्वल और सोफियाना कह सकते हैं। उसने न नमस्ते किया, न हाथ जोड़े। वह सिकुड़कर पलग के पास भी खड़ी नही हुई, आकर धीरे से कुर्सी खीचकर उसपर बैठ गई। इसके बाद तनिक मुस्कराकर उसने कहा—कहिए, आप प्रसन्न तो है ?

भई वाह ! यह कैसी नई-नवेली वधू ? मैने आख फाड़कर उसकी ओर देखा। देखते ही आखे जल उठी। वह न तो वैसी सुन्दर ही थी, और न उसका रंग ही गोरा था। मैं क्षणभर ही में अपने क्लास की सब युवतियो से उसका मिलान कर गया। भला कहा वे परियां और कहा यह ! मेरा हृदय तिलमिला उठा। मैंने ताने के तौर पर कहा—क्या आप ऊपारानी की कोई दासी हैं? क्या सदेश लाई हैं आप ?

"यही कि ऊषारानी के स्थान पर आप मेरा स्वागत-सत्कार करे।"

"आप है कौन ?"

"ऊषारानी मेरी दासी है।"

"आपकी ?"

"जी हा, और उसका यह फैसला है कि मै उनके पति महाशय को अपना दास समझू। आप ही शायद उनके पति है ?"

उस साधारण प्रतिभाहीन मुख से ऐसी करारी-चुटीली बात सुनकर मैं दंग रह गया। वह नई-नवेली की मुलाकात का पुराना डिजाइन हवा हो गया। मैं न गुस्सा कर सका, न मेरे मुह से कोई बात ही निकली। मै चुपचाप उस मुहजोर बालिका के मुस्कराहट-भरे, फड़कते होंठो को देखने लगा। उसे देखकर मैं खड़ा नही हुआ, उसका स्वागत नही किया, उसके साधारण रूप की अवहेलना की, इसके कारण उसकी आखो मे एक चमक—जो उन चुभती हुई तीखी बातों के साथ निकली थी—देखकर मैं उसके रुआब मे आ गया। मैं सोचने लगा : इसी तरह क्या स्त्रियो का आदर किया जाता है ? यही क्या मेरी शिक्षा और सभ्यता है ?

ऊषा ने फिर कहा—समझे आप ? क्या आपको श्रीमती ऊषारानी के आज्ञा-पालन मे कुछ आपत्ति है ?

"कुछ भी नही !" अनायास ही मेरे मुह से निकल गया।

"तब आप पलंग से खड़े हो जाइए। आपने एम० ए० तक शिक्षा पाई, उच्च

सस्कृति के लोगो मे रहे, पर आपको इतनी तमीज न आई कि स्त्रियो का मान कैसे किया जाता है।"

बाप रे, नई दुलहिन से डाट खाकर, मै सचमुच लज्जित-सा होकर उठकर खड़ा हो गया; पर फिर भी अपनी अकड़ तो कायम रखी।

मैंने कहा—अब क्या करना होगा ?

उसने एक कुर्सी की ओर सकेत करके कहा—बैठिए, घबराते क्यो है ?

यह खूब रही, नववधू को देखकर मै घबराता हू ! मैंने कुर्सी पर बैठकर कहा—घबराता क्यो हू ?

वह खिलखिलाकर हस पड़ी। फिर उसने परीक्षा की, कालेज की, कालेज के जीवन की, भविष्य की, स्वास्थ्य की, न जाने क्या-क्या बातें करनी शुरू कर दी।

मैं तो जैसे खो गया। उस रात्रि के धीमे प्रकाश में मैंने देखा, मै किसी अत्यन्त स्नेही मित्र से—जो अत्यन्त बुद्धिमान, कुशाग्रबुद्धि, वाक्पटु और मृदुभाषी है—बातें कर रहा हूं। मेरा विद्रोह तो गायब हो चुका था। थोड़ी ही देर मे मैंने डरते-डरते उसका हाथ पकड़कर कहा—ऊषारानी, मुझे क्षमा करो।

वह मुस्कराकर मेरी ओर देखने लगी। मैंने फिर कहा—क्षमा करो देवी !

उसने फिर कहा—किस अपराध की क्षमा ?

मैंने कहा—मेरी आखे तुम्हें देखते ही जल उठी थी। मैने तुम्हारा बाहरी रूप देखना चाहा था। अब से कुछ मिनट पहले तक मैं नहीं जानता था कि स्त्री के भीतर एक और चीज रहती है। मैं तो कुछ और ही सोच रहा था।

उसने हसकर कहा—एक गुड़िया-सी सुन्दर दुलहिन, जिसकी एक नाक, दो कान, एक मुह, दो आखें, सफेद चमड़ी, नन्हा-सा शरीर, यही न ?

"लगभग यही, ! पर थोडा और भी कुछ।"

"वह कालेज की संगिनियों का प्रदर्शन ?"

मैं चौका, मेरे मन की बात यह कैसे जान गई ? वह मुस्कराने लगी।

मैंने कहा—ऊषा मुझे क्षमा करो। अपने इस दास को क्षमा करो।

उसने कहा—दास को क्षमा कर सकती हू, पर पति को नही। वह धीरे से अपनी कुर्सी से उठी, और एक मुग्धा बालिका की तरह मेरी गोद में आ बैठी। उसके शिथिल बाहु मेरे गले में आ गए, मैं उस जीवन-सगिनी सखी को—जिसने मेरे विद्रोह को विद्रोह से विजय किया था—इस प्रकार विजित देख फूला अग नही

समाया। मैंने उसे हाथों-हाथ उठाकर हृदय से लगा लिया।

कुछ देर तक हम दोनो दुनिया को भूले बैठे रहे। उसने मेरे गले मे बांहे डालकर हसते-हंसते कहा—मैने तुम्हारे पिछले तीन वर्षों की सौ बातें पूछ डाली, पर तुमने मेरी एक भी नही पूछी। तो क्या मैं यह समझू कि तुम मेरी तरफ से बेफिक्र हो ?

मैं लज्जित हुआ। मैने कहा—प्यारी, तुमने तो आते ही युद्ध छेड दिया, और इस दास को ऐसा पछाड़ा कि मन सिट्टी-पिट्टी भूल गया।

"अच्छा, लाओ, इस सुहाग-रात के उपलक्ष्य में मेरे लिए क्या लाए हो ?"

मैं बहुत कुछ लाया था—सोने की चेन, घड़ी, एक कीमती बनारसी साडी, एक-दो जड़ाऊ गहने, पर वे सब क्या इस महामहिमामयी, गौरवशालिनी पत्नी के योग्य थे ?—मैंने लज्जित होकर कहा—तुम्हारे योग्य तो कुछ नही है ऊषा, देते लाज लगती है।

"देखू तो।"

उसने एक-एक वस्तु को देखा, हसी। उन्हें आदर और उछाह से पहना, फिर प्यार-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा—सुहागरात तो तुम्हारी भी है, कुछ मुझसे उपहार न लोगे ?

"मैंने तुम्हे पा लिया, अब और कुछ न चाहिए।"

"मैंने भी तो तुम्हें पा लिया, फिर भी मुझे उपहार मिले ही। तुम्हारे लिए मैं भी कुछ लाई हू।"

मैंने सोचा : राजासाहब ने कुछ रुपये दिए होंगे, या कोई चीज़। मैंने कहा—रहने दो, मुझे अब और कुछ न चाहिए।

"हा, वह कुछ उतनी कीमती चीज़ नही है, पर वह मैं तुम्हारे लिए लाई हू।" उसके मानी चेहरे पर फिर वही तेज और नेत्रों मे चमक उत्पन्न हो गई। मैंने जल्दी से कहा—तो मेरी रानी, दो न, मै उसे पाकर कृतार्थ हो जाऊ।

उसने धीरे से आचल से एक कागज़ निकालकर मेरे हाथ मे दे दिया। मुझे कौतूहल हुआ। क्या रायसाहब ने मुझे दान-पत्र दिया है ? रोशनी तेज़ करके देखा तो दंग रह गया। यह ऊषा के बी० ए० आनर्स में प्रथम श्रेणी मे पास होने का सर्टिफिकेट था।

मैंने सपने मे भी नही सोचा था कि ऊपा इतनी उच्चशिक्षा प्राप्त है। मैं पागल

की भाति ऊषा की ओर दौडा। मैंने कहा—ऊषा, मेरी रानी, मेरी मालकिन, तुमने मेरा जीवन सफल कर दिया !

ऊषा ने धीरे से कहा—इन तीन वर्षों में यही कर सकी।

उसका स्वर काप रहा था। दूसरे ही क्षण हम दोनो एक थे। हम लोग प्रेमी ही नहीं, गम्भीर दम्पति है। हमारे प्राणो से प्राण और शरीर से शरीर घुलकर एक हो गए है। हम भीतर तक स्त्रीत्व और पुरुषत्व को देख चुके है, बाहर के लिए हम अधेड़ है।

# विधवाश्रम

इस कहानी में बहुत तीव्र व्यंग्य और असन्तोष की भावना में लेखक ने 'विधवाश्रमों' के भीतर कुत्सित जीवनों का भण्डाफोड किया है—जिनकी स्थापना आर्यसमाज ने उसकी अत्यन्त आवश्यकता समझकर की थी; और वे अन्त में सच्चे अर्थों में कुढनखाने बन गए। लेखक को कुछ दिनो तक बिल्कुल निकट से ऐसी संस्थाओ को देखने का अवसर मिला है इसलिए इनके ये रेखाचित्र काल्पनिक नही सच्चे है।

•

एक गन्दी और तग गली के भीतरी छोर पर, पुराने पक्के दुमंज़िले मकान के भीतरी हिस्सो मे, एक कोठरीनुमा कमरे में चार मूर्तिया एक टेबिल पर बैठी धीरे-धीरे बाते कर रही थी। यह मकान वास्तव में विधवाश्रम था और यह मनहूस कमरा था उसका दफ्तर।

टेबिल पर कुछ मैले रजिस्टर, पुरानी पुस्तके, दो-एक साप्ताहिक पत्र, कुछ कागज़ और कुछ चिट्ठिया अस्त-व्यस्त पड़ी थी।

चारो व्यक्तियो मे जो प्रधान पुरुष थे, उनकी उम्र कोई पचास वर्ष की होगी। उनका रग कतई ताबे की भाति, चेहरा साहबनुमा सफाचट, बदन गठीला, कद ठिगना, चाल बिजली के समान, दृष्टि साप के समान थी। हृदय कैसा था, इसका भेद वह जाने जो वहा की सैर कर आया हो। आप विशुद्ध खद्दर पहनते थे और किसीको सम्मुख देखते ही मुस्कराकर तिरछी गर्दन करके दोनो हाथ जोडकर नमस्ते करते थे। आपका असली और पुराना नाम तो था सुखदयाल, परन्तु आप बहुतायत से डाक्टर साहब के नाम से ही पुकारे जाते थे। आपने कब, कहा और कितनी डाक्टरी पढ़ी, यह जानने का अब कोई उपाय नही। एक युग हो गया तभी से आपका यह नाम पेटेण्ट हो गया है। सुना है, बहुत दिन हुए—आप किसी गुरुकुल मे कम्पाउण्डर थे। वहा के रसोइए, कहार और कोई-कोई ब्रह्मचारी भी आपको डाक्टर ही कहकर पुकारते थे, तभी से आपका यह नाम पड़ गया।

आश्रम मे आने पर आपको तीन नाम और पेटेण्ट करने पड़—पिता जी, अधिष्ठाता जी और सरक्षक जी।

चारो धर्मात्मा बैठे धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे कि भीतर से एक स्त्री ने आकर कहा—पिता जी! लुगाइयां तो दोनो बहुत बढिया है।

"अच्छा!"

"दोनो की उठती उम्र है, रंग भी खूब निखरा हुआ है, पर दोनो बुरी तरह रो रही है।"

"अच्छा, उन्हे कुछ खिला-पिलाकर बातचीत से खुश करो, और अलग-अलग कोठरियो मे सुला दो।" इतना कहकर पिता जी, उर्फ डाक्टर जी, उर्फ अधिष्ठाता जी ने बूढे बकरे की तरह दात निकाल दिए और अपनी मनहूस आखो को क्षणभर के लिए सामने बिखरे हुए कागजो पर से उठाकर बात करनेवाली धरमपुत्री (?) की ओर घूर दिया। धरमपुत्री उसी तरह कटाक्ष फेक और दातो की बहार दिखाती हुई चल दी।

इस धरमपुत्री की उम्र लगभग तीस वर्ष, रंग कोयले के समान, जिस्म लम्बा, बदन छरहरा और चेहरा पानीदार था। दात चमकीले, आखे तेज़ और चचल तथा वाणी साफ और लच्छेदार थी। यही आश्रम की सरक्षिका, इस छोट-से स्त्री-जेलखाने की सुपरिण्टेण्डेण्ट, और इस पाप-महल की सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महारानी थी। नाम था प्रेमदेवी।

•

उसी दिन, दिन के तीन बजे विधवाश्रम के बाहर बैठकखाने में, चारो मूर्तिया एक टेबिल पर विराजमान थी। चारों पुरुषों मे जो प्रधान पुरुष थे—वे वही हमारे डाक्टर जी थे। वे अपने स्वभाव-सिद्ध ढंग पर गर्दन टेढी किए पेसिल से लिखते हुए कुछ भुनभुनाते जाते थे। उनकी बाई ओर जो व्यक्ति थे, उनका मुह पिचका हुआ, आखे गढ़े मे घुसी हुई, लम्बी गर्दन और बडी-सी नाक थी, सिर पर मैली खद्दर की टोपी थी। ये बड़े ध्यान से डाक्टर जी की बात में दत्तचित्त हो रहे थे। असल में ये आश्रम के सेक्रेटरी थे और सिर्फ पच्चीस रुपये आनरेरियम पाते थे। उनके बराबर तीसरे व्यक्ति एक नवयुवक थे। इनकी घिनौनी मूछे बड़े भद्दे ढग से मुख पर फैल रही थी। आंखो मे शरारत और चेष्टा में बदमाशी साफ झलक रही थी। ये डाक्टर जी के हुक्म के मुताबिक सामने रखे हुए, खुले कागज़ों की फाइल

मे कुछ काट-छाट कर रहे थे। उन्हे आश्रम से तीस रुपये महीना वेतन भी मिलता था। बेचारों के ऊपर रात-दिन का, आश्रम और उसमे रहनेवाली स्त्रियो की रक्षा का असह्य भार था। विवश उन्हे रात को भी नौकरी से फुर्सत नही मिलती थी, हालाकि आप बहुत कुछ शिकायत किया करते थे। पर इस गैर-फुर्सती मे आप कितने खुश थे, सो भगवान जानता है। ये एक तौर से इस मंडली मे गुड़ के चिउटे हो रहे थे। इनका नाम था गजपति।

इनकी बगल मे लाला जगन्नाथ बैठे थे। इनका स्याहफाम चेचक से गुदा मुह, भद्दी-सी आंखे, नाटा कद और बात-बात मे सनक-सी उठना—इनके व्यक्तित्व को सबसे पृथक् कर रहा था। आपकी उम्र पचास के लगभग थी। आप मुख पर गम्भीरता और भक्ति-भाव लाने के लिए जो चेष्टा प्राय किया करते थे, उससे ऐसा प्रतीत होता था, मानो आप अभी रो पडेगे। शायद इसी चेष्टा के फलस्वरूप आपका होठ नीचे को लटक गया था और चेहरा कुछ लम्बा हो गया था।

लेख को ठीक करा डाक्टर जी बोले—बस, अब हिसाब मे जो थोडी-सी भूल है, उसे तुम ठीक कर-करा लेना। परन्तु सुनो, कल ही तो अन्तरग मीटिग है। सब कागजात आज ही रात को तैयार और साफ हो जाने चाहिए। पीछे का बखेडा रहना ठीक नहीं।

"बहुत अच्छा! परन्तु वे दो सौ रुपये, जो कुन्ती की शादी मे वसूल हुए हैं, किस मद मे डाले जाएं?"

"किसीमे भी नही, अभी उनकी बात छोडो, उनका हिसाब मै पीछे दूगा। तुम्हे अपना हक तो मिल गया न?"

"कहां, सिर्फ पच्चीस मिले है।"

"तब यह लो पाच और, यह हिसाब तो साफ हुआ। आप लोगो को भी तो इस विवाह का हिस्सा मिल गया है?"

दोनो अन्य पुरुषों ने भी स्वीकृति दे दी। इसपर डाक्टर जी कुछ कहना चाहते थे कि एक वृद्ध स्त्री ने द्वार मे घुसकर मूर्ति-चतुष्टय को धरती में माथा टेककर प्रणाम किया।

गजपति ने कहा—माई, क्या है?

"महाशय जी! मेरी यह फुफेरी बहिन की लड़की है। बेचारी बाल-विधवा

है, न कोई आगे न पीछे। मैं अन्धी-धुन्धी बुढिया हू, इसकी कहा तक देख-भाल कर सकती हू। घर में इसका मन नही लगता। सदैव द्वार पर खडी रहती है। कहती हू—सधवाओ जैसा बनाव-सिंगार क्या इसको रुचता है ? पर यह एक नही सुनती। आपकी मैंने तारीफ सुनी है, खराव औरतो को आप सुधारते है, उनकी रक्षा करते और उन्हे सन्मार्ग पर लाते है। महाराज, आप कृपा कर इस लडकी का उपाय कीजिए।"

इतना कहकर उसने अपने पीछे सिकुड़ी खडी बालिका को धकेलकर आगे किया और माथा टेकने का आदेश दिया। वालिका आगे दो कदम बढकर ठिठक गई। बोली नही, न उसने माथा ही टेका। केवल एक बार भयभीत नेत्रो से मडली को देखा। एक क्षीण हास्य-रेखा उसके मुख पर आई और वह चुपचाप खडी धरती को निहारने लगी।

तीनो आदमी उस शर्माई हुई बालिका को एकटक देखने लगे। मण्डली विचलित-सी हो गई।

गजपति ने कहा—बुड्ढी मां, तुमने अच्छा किया इसे यहा ले आई। यहां इसकी हमजोलिया बहुत है। अच्छा, इसे जरा आने-जाने को कहो। क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है ?—इतना कहकर गजपति ने उसके कन्धे पर हाथ धर दिया।

डाक्टर जी ने कहा—ठहरो, उसे सामने वाली कोठरी मे बैठने दो, मै इससे अभी बात करूगा।—बालिका तत्काल कोठरी की ओर चली गई। वृद्धा बैठी रही, राजा जगन्नाथ उसे उपदेश देने लगे।

बालिका वास्तव मे यहा की घूराघूरी देखकर घबरा उठी थी। वहा से वह जान बचाकर कोठरी मे भाग गई। और चाहे कोई न जाने, परन्तु स्त्रिया बदमाशो की पापदृष्टि को खूब पहचानती है।

इसके बाद डाक्टर जी उठकर कोठरी मे घुस गए, दरवाज़ा उढ़का दिया। यह देखते ही गरीब बालिका सूख गई। वह वहा से उठकर बाहर को जाने की चेष्टा करने लगी। डाक्टर जी ने हाथ पकड़कर कहा—बेटी ! डर क्या है, घबराने की बात नही।

इतना कह वे कनखियो से देखने लगे। बालिका सिकुड़कर बैठ गई और उनकी बात की प्रतीक्षा करने लगी।

डाक्टर जी ने कहा—तुम्हारा नाम क्या है ?

"चन्दन !"

"बहुत सुन्दर नाम है। अच्छा, यह तो बताओ—तुम्हारे मन में कभी किसी तरह की उमंग तो नही उठती ?"

बालिका समझी नही। वह बडी-बड़ी आंखें उठाकर डाक्टर जी की ओर देखने लगी।

"आह ! समझी नही, (कन्धे पर हाथ धरकर और पास खिसककर) अभी नादान बच्ची हो। मन के भाव समझती नही। खैर देखो, तुम चाहो तो यहां आश्रम मे रहो, चाहे कभी-कभी आया करो। कुछ रुपये-पैसे की जरूरत हो तो मुझसे कहो। देखो, भेद-भाव मत रखना। अब मैं तुम्हारा रक्षक हुआ। क्यो, हुआ न ? बोलो !"

बालिका बिना हाथ-पैर हिलाए चुपचाप बैठी रही। उसके बदन पर पसीना आ रहा था।

डाक्टर जी ने उसकी कमर मे हाथ डालकर अपनी ओर खीचते हुए कहा—जवाब तो दो !

बालिका ने तिनककर कहा—आह ! यह क्या करते है, अपना हाथ खीच लीजिए।

"क्रोध मत करो। जब मैं रक्षक हुआ तो जो पूछूगा बताना पड़ेगा, जो कहूंगा करना पडेगा, किसी बात मे उज्र न करना। देखो, तुम्हारी यह साड़ी कितनी पुरानी और गन्दी हो गई है। ये रुपये ले जाओ, नई ले लेना।"

इतना कहकर डाक्टर जी ने पाच रुपये का एक नोट उसके हाथ पर धर दिया। बालिका नोट देखकर घबरा उठी, ले या न ले—न समझ सकी। उसके मन मे नई साडी पहनने की लालसा जागरित हो उठी। वह उत्सुक होकर डाक्टर जी के सफाचट मुख को देखने लगी।

डाक्टर जी ने कहा—नोट को सम्हालकर रख लो। जेब तो है न ? चोली मे रख लो, गिर न जाए। ठहरो मैं रखे देता हू।

बालिका न रोष, न निषेध कर सकी। डाक्टरजी ने उसकी चोली में हाथ घुसेड दिया। एक पैशाचिक आवेश से डाक्टर जी का लाल चेहरा और भी लाल हो उठा।

बालिका घबराकर उठ बैठी, और उसने धडाम से किवाड खोल दिए। डाक्टर जी हड़बड़ाकर उठ बैठे। उन्होंने धीरे से कहा—अच्छा, बाकी बातें फिर

होगी, परसों इसी समय आना। पर देखना, रुपयो की बात किसीसे न कहना; समझी ?"

"पर जब खर्च करूंगी, तब तो भेद खुलेगा ही ?"

"कह देना किसी सहेली ने दिया था, या पड़ा पा गई थी।"

"खैर, आप वेफिक्र रहे मै सब ठीक कर लूगी।"

अब डाक्टर जी दुलार से बालिका के गाल पर चुटकी लेकर बाहर चले आए। हसकर बुढिया से कहा—लड़की बड़ी सीधी है, दो-चार बार आने से समझ जाएगी। न होगा तो यहां कुछ दिन रख लिया जाएगा।

बुढ़िया ने कहा—भगवान् आपका भला करे। आपने बडा भारी धर्म का बीडा सिर पर उठाया है।—इतना कह और धरती मे माथा टेक बुढ़िया रवाना हुई।

डाक्टर साहब आश्रम के भीतरी कक्ष मे एक शतरजी पर बैठे थे। सामने एक नवयुवती सिकुड़ी हुई बैठी थी। डाक्टर साहब मन लगाकर उसे सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होने कहा—देखो बेटी, मै तुम्हारा धर्म का पिता हूं और रक्षक हू। समझती हो न ?

"जी हा, आपने पत्र मे भी यही लिखा था इसीसे आपपर विश्वास करके चली आई हूं। आपकी धर्म की पुत्री हूं। आह, मैं बड़े दुष्टो के फन्दे मे पड़ गई थी। कहने को समाजी, पर परले दर्जे के लुच्चे, औरतो का व्यापार करनेवाले।"

"अच्छा, तुम कहा जा फसी थी ? खैर, जाने दो इन बातो को। तो देखो, जब मैं तुम्हारा रक्षक और धर्मपिता हुआ, तब तुम्हे मेरे कहने के अनुसार काम भी करना होगा। तुम जानती हो, मैं सदैव तुम्हारी भलाई की बात ही सोचूगा।"

"मुझे आपका भरोसा है।"

"अच्छी बात है, तुम्हे तीन दिन यहां आए हुए। कहो, कोई कष्ट तो नहीं है ?"

"जी नही।"

"खाने-पीने की दिक्कत ?"

"जी, कुछ नही।"

"कपड़े-लत्ते तुम्हारे पास काफी हैं न ?"

"जी हा ?"

"खैर, मैं दो जोड़ा साड़ी तुम्हें आज ही और भिजवाए देता हू। तुम कैसी

साडी पसन्द करती हो, रेशमी कोर की न ?"

"जी, जैसी मिल जाए।"

"जैसी चाहोगी वैसी ही मिल जाएगी ! खैर, तुम्हे कुछ जेब-खर्च भी चाहिए ?"

"जी नही, मेरे पास कुछ रुपये है।"

"अच्छी बात है। हां, एक बात—यहां ज़ेवर पहनने का नियम नही है ! तुम्हारे गहने सब कोष मे जमा होगे।"

"कोष क्या है ?"

"आश्रम का कोष—यानी खज़ाना। जब तुम्हारा विवाह होगा, तब वापस दे दिए जाएगे।"

"मगर मै विवाह तो कराने की इच्छा ही नही करती।"

"यह कैसी बात है ? फिर यहां आई क्यों हो ?"

"मैं तो विद्या पढ़कर केवल अपना धर्म सुधारना चाहती हूं।"

"परन्तु जवान लड़कियो का धर्म सिर्फ विद्या से ही नही बचता।"

"तब ?"

"उन्हे ब्याह करना चाहिए।"

"ब्याह तो एक बार हो चुका, वही तकदीर मे होता तो तकदीर क्यो फूटती ?"

"यह ससार के कारखाने हैं, सब दिन एक-से नही रहते। कहा है, बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेहु।"

"मै तो विद्या पढने ही आई हू।"

"विवाह कराके विद्या भी पढना।"

"विवाह कराना मैं नही चाहती।"

"तुम्हे अवश्य विवाह कराना चाहिए।"

"मै धर्म-काज मे जीवन व्यतीत करना चाहती हू !"

"तुम्हारा विवाह किसी धर्मोपदेशक से करा दिया जाएगा।"

"पर यह मुझे पसन्द नही, मुझे विवाह से घृणा है।"

"यह तुम्हारी नादानी है।"

"आप मेरे पढ़ने-लिखने का बन्दोबस्त कर दे।"

"परन्तु यह विधवाश्रम है, कोई कन्या पाठशाला नही।"

"आपने लिखा था कि पढ़ने का प्रबन्ध हो जाएगा।"

"पर विवाह के बाद।"

"विवाह के बाद आप क्या यहां रख सकेंगे ?"

"यहा रखने ही से क्या, जो विवाह करेगा वह पढ़ाएगा।"

"और यदि मैं विवाह न करू ?"

"अवश्य करना पडेगा।"

"मै विवाह नही करूगी।"

"कह चुका, अवश्य करना पडेगा।"

"तब मुझे चली जाने दीजिए, मैं यहा न रहूगी।"

"यह भी असम्भव है।"

"असम्भव क्यो ?"

"नियम है।"

"यह तो धीगामुश्ती है।"

"तुम चाहे जो कुछ समझो।"

"मैं यहा एक मिनट भी नही रह सकती।"

"तुम यहा से जा नही सकती।"

"देखू कौन रोकता है ?"

डाक्टर ने सकेत किया। गजपति और जगन्नाथ अधिष्ठात्री देवी के साथ आ हाजिर हुए। डाक्टर ने कहा—इस बेवकूफ को समझाकर राज़ी करो।—औरवे चले गए।

युवती ज़बरदस्ती बाहर जाने लगी।

गजपति ने कहा—जोर क्यो करती हो, ज़ोर हममे भी है। बात समझो-समझाओ, ज़ोर से कुछ नहीं बनेगा।

"मैं कुछ नही सुनती, मैं अभी जाऊगी।"

"जा नही सकती।"

"क्या मैं कैदी हू ?"

"जो कुछ समझो।"

"तुम सब लोग एक ही से पिशाच हो, धर्म की टट्टी मे शिकार खेलते हो।"

"जो जी में आए सो बको।"

"क्या तुम जबरदस्ती शादी करना चाहते हो ?"

"और आश्रम हमने किसलिए खोला है?"

"मैंने समझा था कि विधवाओं को शिक्षा मिलती है। रोटी-कपड़ा मिलता है, वे स्वावलम्बिनी बनाई जाती है।"

"और तुम्हे यह नही मालूम कि उनकी शादियां भी होती है?"

"मैं समझती थी, जो शादी कराना चाहे उसीकी शादी होती होगी।"

"बस यही गलती है। इस तरह यहां पछियो का बसेरा बसाया जाए तो आश्रम का दिवाला दो दिन मे निकल जाए। यहा तो नया माल आया—इधर से उधर चालान किया, आश्रम का भी खर्च निकला और तुम लोगो का भी भला हुआ।"

"मैं अपना भला कर लूंगी, तुम अपना खर्च ले लो और मुझे जाने दो।"

"खर्च कहा से दोगी?"

"और कुछ मेरे पास नहीं, जो दो-चार गहने हैं उन्हें ले लो।"

"लाओ, ये तो कोष मे जमा होंगे।"

युवती ने गहने उतार दिए। उन्हे गजपति ने हाथ में लेकर कहा—हमने तार देकर तीन आदमी पजाब से तुम्हारे लिए बुलाए हैं। वे आज रात को आ जाएगे। एक तो आ भी गया है, अब यह तुम्हारी पसन्द पर है, जिसे चाहो पसन्द करो।

इतना कह और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए, उसने उसे पीछे को ढकेल दिया। जब तक वह सम्हले, गजपति ने बाहर निकलकर सांकल चढ़ा दी और कहा—भागने की चेष्टा के भय से ऐसा किया गया है, बुरा न मानना। अभी विवाह को ना-नू करती हो, जब सुन्दर जवान देखोगी तो खुश हो जाओगी। दिनभर पड़ी-पड़ी सोच लो।

इतना कहकर तीनों चल दिए। युवती भौचक-सी खड़ी रह गई। फिर वह ज़ोर-ज़ोर से किवाड़ पर हाथ मारने और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी।

"देखो सावित्री, आज तुम्हारी शादी फिर निश्चित हो गई है। और इस बार भी तुम्हें वही चालाकी करनी होगी। तुम कुछ नई तो हो नही, सब बातें जानती हो।"

"अब इस बार मुझे कहा जाना होगा?"

"दूर नही, करनाल के पास एक कस्बे मे।"

"हे ईश्वर, वहा मेरा दिल कैसे लगेगा?"

"दिल की एक ही कही, दस-पन्द्रह दिन नही काट सकती हो ?"

"माल-मलीदे तो खूब मिलेगे ?"

"खूब !"

"और वह उल्लू ?"

"वह एक बूढा खूसट है, खूब बनाना ।"

"कुछ झगडा-बखेडा तो खडा न होगा ?"

"झगडा क्या होगा ?"

"खैर, मुझे क्या मिलेगा ?"

"सैर-सपाटा, माल-टाल और बढिया साड़ी, जूता, मोज़ा और तीन-चार अदद नये गहने ।"

"और रुपये ? रुपये इससे न जमा कराए जाएंगे ?"

"पांच सौ तो बधी बात है, उसका क्या कहना !"

"पर इस बार सब रुपये मै लूगी ।"

"वह कैसे हो सकता है, पहले की भांति अद्धम-अद्धा पर सौदा होगा ।"

"अच्छी बात है, मुझे मजूर है ।"

"तब नहा-धोकर सिगार-पटार कर लो । उल्लू को सामान का पर्चा उतरवा दिया है, लेकर आता ही होगा । साडी तुम स्वयं पसन्द कर लेना ।"

उपर्युक्त बातचीत विधवाश्रम की अधिष्ठात्री देवी और एक युवती मे हो रही थी । बातचीत करके अधिष्ठात्री जी चली गई और युवती कुछ सोचकर हस पडी । उसने उगली पर गिनकर आप ही कहा—एक-दो-तीन ! यह तीसरा उल्लू है । ।इसमे भी खूब मज़ा है ।—थोड़ी देर तक वह अपने भूतकाल को सोचने लगी। वह वर्तमान जीवन से उसका मुकाबला करने लगी—क्या यह अच्छी बात है ? पति के घर में कैसी सुखी थी ! ज़रा-सी बात पर लड़कर निकल भागी, और ये दुष्ट मुझे फांस लाए । अब यहा अजीब शादियां होती हैं, रुपया गाठ मे करो, दुलहिन बनो, ब्याह करो और फिर चकमा देकर भाग आओ । फिर ब्याह कर लो । पकड़ी जाओ, तो कह दो कि जुल्म करता है, मारता है । जय गगाजी की !

युवती फिर जरा हस दी । फिर कुछ सोचने लगी । थोड़ी देर में उसने एक महरी को पुकारकर कहा—ज़रा बलवन्त को तो बुला दे ।

बलवन्त एक तीस वर्ष का हट्टा-कट्टा, किन्तु मैला-कुचैला आदमी था। उसकी

आखें छोटी, नाक पतली और लम्बी, माथा तग और पीला था। उसके दांत बडे गन्दे थे, और मूछें बडी बेतरतीब थी। वह ठिगना, मोटा और बेहूदा-सा आदमी था। उसने आकर जरा हसकर कहा—क्या हुक्म है ?

"वही मामला है, बस समझ लो।"

"सब समझ चुका हूं, सुन लिया है।"

"बताओ फिर क्या करना होगा ?"

"करना-धरना क्या है, ज़रा शर्मीली नवेली बनकर चली जाओ। दस-पांच दिन खूब शर्मीली बनी रहना, बूढे को अच्छी तरह सुलगाना। पात-सात गहने वसूल करना, उसे रिझाना। मौका पाकर चिट्ठी मे भागने की तारीख लिखना; समय भी लिख देना। समय वही सन्ध्या का ठीक है। मै गली में मिल जाऊगा, सवारी तैयार रहेगी। हम लोग अगले स्टेशन से सवार होगे। पांच-सात दिन पहले की भाति सैर करेंगे, फिर यहा आएगे।" बलवन्त ने युवती को घूरकर हंस दिया। युवती ने नटखटपने से हसकर कहा—बस, इस बार तुम्हारे चकमे मे मै नही आने की, सैर-सपाटा नही होगा, मै सीधी यही आऊंगी।

"कैसी बेवकूफ हो, जब वह यहां ढूढ़ने आएगा, तब क्या होगा ?"

"मैं क्या जानू ?"

"बस, तो जब ऐसी अनजान हो तो जैसा हमारा बन्दोबस्त है, वही करो। तुम्हारे गायब होते ही वह सीधा यहीं दौड़ेगा। और आश्रम का कोना-कोना छान-कर चला जाएगा। बस आश्रम की ज़िम्मेदारी खतम। फिर दूसरा उल्लू देखेंगे।"

"और इतने दिन तुम अपनी मनमानी करोगे ?"

"देखो प्यारी, मेरे विषय में ऐसी बात मत कहो। दो-दो बार तुम्हारे लिए मै जान हथेली पर धर चुका हूं। तुम्हे मैं दिल से चाहता हूं। अन्त मे तो और दो-चार खेल खेलकर तुम मेरी होगी।"

"चलो हटो, मैं तुम्हारा मतलब खूब जानती हूं। तुमने जानकी से भी ऐसे ही कौल-करार किए थे। आखिर जब झगड़ा पडा तो साफ बच गए, बेचारी को जेल जाना पड़ा।"

"नही प्यारी, ऐसा न कहो; कसूर उसीका था।"

"खैर, जाने दो। तो अब क्या बात पक्की रही ?"

"वही, जो मै कह चुका हू।"

"मैं तुम्हे खत लिखूगी।"

"हा, उसमें इशारा-भर कर देना कि कौन तारीख।"

"अच्छी बात है।"

"बाकी सब काम मैं स्वय कर लूगा।"

"बहुत अच्छा।"

"पर, आज···"

"चलो हटो, आज मेरी शादी है, ऐसी बाते मत करो।"

"अच्छा देखा जाएगा।"—यह कहकर दुष्टतापूर्ण सकेत करके वह चला गया।

"महाशय जी, पांच सौ रुपये तो मैं जमा कर चुका, अब ये दो सौ किसलिए मागे जाते हैं?"

"महाशय जी, वे पाच सौ रुपये तो स्त्री-धन है। यदि तुम उसे त्याग दो, उस-पर जुल्म करो, उसे दगा दो, तो वह क्या खाएगी? वह तो कही की न रही न? इसका तुम्हे अभी इकरारनामा लिखना पड़ेगा।"

"खैर, वह मै लिख दूगा, कही घर-गृहस्थी में ऐसा भी होता है? महाशय जी, मै गृहस्थ आदमी हूं, लुच्चा-लुङ्गाड़ा नही।"

"तभी ऐसी देवी आपको दी गई है, दुनिया में चिराग जलाकर भी देखोगे तो ऐसी लड़की नही मिलेगी।"

"यह आपकी मेहरबानी है।"

"तब लीजिए, यह रहा इकरारनामा; दस्तखत कीजिए। आओ जी तुम बल-वन्त, गवाही कर दो। एक गवाही और चाहिए। अधिष्ठात्री देवी जी को बुला लो, वे कर देंगी। हा, वे दो सौ?"

"वे दो सौ किस मद में जाएगे?"

"आश्रम की मद मे। महाशय जी, आश्रम का खर्चा कहां से चलता है, यह तो सोचिए। लड़कियों को महीनो रखकर उनपर कितना खर्च किया जाता है! उनकी शिक्षा, परवरिश, उनके कुसस्कारो को दूर करके उनके विचारो को शुद्ध करना, उन्हे आदर्श गृहिणी बनाना—यह सब मामूली बात थोड़े ही है। ये दो सौ रुपये आश्रम को दान समझिए, इनकी आपको रसीद मिलेगी। खातिरजमा रखिए।"

"मगर मै आश्रम को तो पचास रुपये प्रथम ही दे चुका हू।"

"वह तो दाखिला फीस थी महाशय जी ! यह तो आश्रम का नियम है कि जब कोई विवाहार्थी आए तो फीस दाखिल लेकर तब विवाह की चर्चा चलाई जाए।"

"मगर महाशय जी, ये दो सौ रुपये तो भार मालूम देते है।"

"यह आप क्या कहते है ? सस्था को देने मे आप इधर-उधर करते हैं। सोचिए, यदि सस्था न होती तो कितनी देविया धर्म-भ्रष्ट होतीं, और आपकी सेवाए भी कैसे हो सकती थी ?"

अधिष्ठाता जी, उर्फ पिता जी और वर में उपर्युक्त घिस-फिस बड़ी देर तक होती रही और तब उन्होने दो सौ के नोट गिन दिए। इसके बाद ही, स्वस्ति-वाचन, शान्ति-प्रकरण का जोर-शोर से पाठ हुआ। अग्नि प्रज्वलित हुई, दुलहिन आई और पवित्र वैदिक रीति से विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह होने पर अधिष्ठाता जी बोले—पन्द्रह रुपये और दीजिए !

"यह किसलिए ?"

"पाच पण्डित जी की विवाह-दक्षिणा; पांच की साडी अधिष्ठात्री देवी के लिए और पांच की मिठाई सब लड़कियों के वास्ते।"

कुछ अनमने होकर पन्द्रह भी दे दिए। इसके बाद उन्होने घड़ी देखकर कहा—अब आप विदा की तैयारी करा दीजिएगा। गाड़ी जाने में अधिक देर नही है

' पर अभी तो प्रीति-भोज होगा।"

"बस प्रीति-भोज रहने दीजिए।"

"ऐसी जल्दी नही। सब तैयार है। भला बिना भोजन विवाह कैसा ?"

"प्रीति-भोज का आयोजन हुआ। पुरोहित, अधिष्ठाता और अल्लम-गल्लम, जो वहा उपस्थित थे, सभी बैठे। भोज समाप्त होते ही हलवाई ने बिल अधिष्ठाता जी को दे दिया। उन्होने एक नजर डालकर वर महाशय की तरफ संकेत करके कहा—आपको दो।

वर महाशय ने घबराकर कहा—अब यह क्या है ?

"अभी प्रीति-भोज हुआ न, उसीका बिल है।"

"यह भी मुझे चुकाना पड़ेगा ?"

"वाह महाशय जी, यह खूब कही ! विवाह आपका होगा तो क्या बिल और कोई चुकाएगा ?"

"इसका पेमेण्ट तो आश्रम को करना चाहिए।"

"वाह, आश्रम तो आप ही की संस्था है, वह यह भार कैसे उठा सकती है ? सोचिए तो।"

वर महाशय ने ज़रा गुनगुने होकर बिल चुका दिया और कहा—अब आप जरा जल्दी कीजिए, गाडी के जाने मे वक्त बिल्कुल नही रहा है।

"बस, अब विलम्ब कुछ भी नही है। विवाह आपका शुभ हो।"

इसके थोड़ी देर बाद ही वर-वधू विदा हुए। वधू ने हस-हंसकर सबसे हाथ मिलाए। किसी-किसीसे घुस-फुस बाते की और पतिदेव के साथ खट से कूदकर तागे पर चढ़ गई।

यह असल वैदिक विवाह का प्रताप था कि वधू रोई नही, चिल्लाई नही, घूघट किया नहीं, शर्माई नही। बोलो वैदिक धर्म की जय ! !

"कहिए, आपका क्या काम है ?"

"मुझे आपसे एकान्त मे कुछ कहना है।"

"यहा एकान्त ही है, नि संकोच कहिए। इन लोगो से कुछ छिपा नही।"

"आपसे मै एक सहायता लेना चाहता हू।"

"कहिए भी, क्या सहायता ?"

"एक लडकी का उद्धार करना है।"

"कहा से ?"

"वेश्या के घर से।"

"वह लड़की कौन है ?"

"उसी वेश्या की कन्या।"

"आप क्यो उद्धार किया चाहते है ?"

"वह वहा रहना और कुकर्म कराना नही चाहती। उसकी मा उसे मजबूर कर रही है, पर वह पसन्द नही करती।"

"वह क्या चाहती है ?"

"किसी भले आदमी से ब्याह करना चाहती है।

"वह भले आदमी शायद आप हैं ?"

"जी नही, मैं तो ऐसा कर ही नही सकता। आप जानते हैं, जात-बिरादरी का मामला है।"

"तब फिर आपको उसकी इतनी चिंता क्यो है ? लाखो वेश्याओ की लड़कियां यही करती है।"

"मै सिर्फ इसका उद्धार चाहता हूं, और आपकी सेवा से भी बाहर नही।"

"आप किस तरह काम करना चाहते है—खुलासा कहिए।"

"सुनिए, मै किसी तरह उसे वहा से निकाल लाऊंगा, बाज़ार मे सौदा खरीदने के बहाने। उसकी मा मुझपर विश्वास करती है, भेज देगी। फिर मै उसे डिप्टी कमिश्नर के पास भेज दूगा। वहा वह कह देगी कि मेरी मा मुझसे बुरा काम कराना चाहती है; उससे मुझे बचाया जाए। जब उससे पूछा जाएगा कि तू कहा जाना चाहती है, तब वह आश्रम मे आने को कह देगी। उसे आप यहा रख ले, और हम जिस आदमी से कहे उसकी शादी उसी रात को कर दे। ये दो सौ रुपये आपकी नज़र हैं।"

"और वह आदमी कौन है ?"

"मेरा नौकर है।"

"समझ गया, इस ढग से आप उस लड़की पर अधिकार करना चाहते है। मगर वह नौकर शादी होने पर आपके हत्थे क्यों लडकी को चढने देगा ?"

"वह आठ रुपये माहवार पाता है। उससे हमने ज़बानी तय कर लिया है कि लडकी पर उसे कोई दखल नही होगा इकरारनामा भी लिखा लिया है कि इसकी मर्ज़ी के माफिक अगर मै इसका भरण-पोषण न कर सकू, तो लड़की को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। वह इकरारनामा मेरे पास है।"

"बडे उस्ताद हो। दो सौ रुपये लाए हो ?"

"ये हाज़िर है।"

"जाओ अपना काम करो, लडकी को यहा भेज दो। मगर देखो, वह इस शादी में ना-नू तो न करेगी ?"

"ज़रा भी नहीं।"

"तब ठीक।"

"विधवाश्रम का आज वार्षिकोत्सव था। सभास्थान खूब सजाया गया था। लाल-पीले कपडों पर वेद-मन्त्र लिखकर लटका दिए गए थे। धर्म और सत्यकर्म का प्रवाह बह रहा था। 'नमस्ते' की गूज आसमान को चीर रही थी। बहुत-सी स्त्रिया

और पुरुष एकत्रित थे। सभास्थल खचाखच भर रहा था। थोडी देर बैण्ड बज चुकने के बाद सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। भीतरी ओर का एक छोटा-सा दरवाज़ा खुला और उसमे से पाच-छह आदमी निकले। ये सब अन्तरंग सभा के सदस्य थे। इन्हीमे हमारे पूर्वपरिचित डाक्टर साहब तथा अन्य सत्पुरुष भी थे।

उनके आते ही सभा मे तालियो की गड़गडाहट से सभा-भवन गूज उठा। इसके बाद ही लाला जगन्नाथजी ने चिल्लाकर कहा—मै प्रस्ताव करता हू कि आज की सभा मे हमारे परम श्रद्धास्पद, आदरणीय श्री डाक्टर साहब सभापति का स्थान ग्रहण करे।—गजपति ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया। अब डाक्टर साहब भाति-भाति के मुह बनाए, उसी प्रकार टेढ़ी गर्दन किए, विविध रीति से शिष्टाचार प्रदर्शन करते हुए अति दीन-भाव से सभापति के आसन पर जा बैठे, मानो उन्हे फासी लगाई जा रही थी। उनके आसीन होते ही फिर तालिया बजी। अब एक महाशय जी बडा-सा साफा सिर पर लपेटे उठ खडे हुए और बडे गर्वीले ढग से खड़े होकर एक भजन गाना प्रारम्भ किया। भजन क्या था, गद्य-पद्य का सम्मिश्रण था। न सुर, न ताल। वे खूब चीख-चीखकर गाने लगे और साथ ही हारमोनियम भी बजाने लगे। हारमोनियम खूब चीख रहा था। अन्तत. लोगो के कानो के पर्दे फटने लगे और वह गायन समाप्त हुआ। इसके बाद डाक्टर साहब ने खड़े होकर वक्तृता देनी प्रारम्भ की :

"भाइयो और देवियो! आज आपके आश्रम का द्वितीय वार्षिक उत्सव है। इस अवसर पर इतने आदमियो को एकत्रित देखकर मै फूला नही समाता हू। अभी मन्त्रीजी आपको रिपोर्ट सुनाएगे। उससे आपको मालूम होगा कि अधोगति के मार्ग मे पतित भ्रष्टा स्त्रियो को पतन के महापक से उद्धार करने मे आश्रम ने समाज की कितनी सेवा की है। ईश्वर की कृपा और आप लोगो की सहानुभूति से सस्था खूब सफल हो रही है (हर्षध्वनि)। परन्तु अभी लाखों-करोड़ो अनाथ विधवाए है, जिनका उद्धार होना बाकी है (सुनो-सुनो)। काम बड़ा कठिन है, और उसे यह आश्रम ही पूरा कर सकता है। सज्जनो, आर्यपुरुषो, क्या आप इस आश्रम से सहानुभूति नही रखते हैं? (हर्षध्वनि) क्या आप इसकी हस्ती को कायम रखना चाहते हैं? (अवश्य-अवश्य) तब मैं आशा करता हू कि आप अपनी जेबो मे जो हाथ आश्रम के नाम पर डालेगे, वह खाली बाहर न आएगा। आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि जो-जो महाशय चन्दा देंगे, उनका नाम-ठिकाना सब

समाचारपत्रों मे छपा दिया जाएगा।" इसके बाद आपने लम्बे भाषण मे यह साबित कर दिया कि यह संस्था कितनी पवित्र है और आर्यसमाज के सिद्धान्तो की रक्षा के लिए ऐसी संस्थाओ की बडी भारी आवश्यकता है।

आपके बैठते ही प्रबल ताली की घोषणा से सभामण्डप गूज उठा। इसके बाद मन्त्री महोदय वार्षिक रिपोर्ट पढने के लिए उठ खड़े हुए :

रिपोर्ट पढने पर पता लगा कि गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष १५००) की अधिक आय हुई है (हर्षध्वनि)। इस वर्ष कुल ५५७५॥-)॥ आमदनी हुई है। और ५५७५।)॥ खर्च हुए है। रोकड़ ।-) बाकी बचा है। इनमे कर्मचारियों का वेतन ३२००) और मकान-भाडा और स्टेशनरी खाते १३००), मुकदमे खाते ८००), छपाई खाते २००) रुपये खर्च हुए है। ७५।)॥ फुटकर खर्च खाते में आए है। यद्यपि ।-) की रकम जो हाथ मे बची है, बहुत कम है, फिर भी वह बचत तो है। ईश्वर की कृपा से हमारी सस्था को कर्ज़ नही लेना पडा है।

रिपोर्ट खतम होते ही फिर तालियोकी ध्वनि से सभा-भवन गूज उठा। इस बीच मे एक आदमी ने खड़े होकर कहा—मुकदमे मे ८००) की बडी रकम खर्च होने का कारण क्या है? सभापति ने कहा, "कृपा कर बैठ जाइए, सभा के काम में गड़बडी न कीजिए।" पर उसने एक न सुनी। कड़ककर कहा, "महाशय, मैने गत वर्ष ५००) दान दिया था, और बीच-बीच मे भी मैं संस्था को सहायता देता रहा हूं। सो क्यामुकदमेबाज़ी मे खर्च करने के लिए? मै यह जानना चाहता हू कि जनता के धन का दुरुपयोग तो नही किया जा रहा है।"

मन्त्री जी ने कहा—हमारे पूज्य प्रधान जी—डाक्टर साहब पर एक मामूली औरत के भगाने का मुकदमा खडा किया गया। इसके सिवा हमारे विश्वासी कर्मचारी गजपति के विरुद्ध भी दो ऐसे ही झूठे मुकदमे खड़े कर दिए गए थे। यह बात सभी जानते है कि उक्त दोनो सज्जन सस्था के कितने सहायक है। इसलिए विवश हो हमे पैरवी करनी पड़ी और यह रुपया खर्च करना पड़ा।

इतने मे एक दूसरे आदमी ने खडे होकर कहा—और वेतन खाते जो आपने तीन हज़ार से अधिक रकम डाली है, इसका ब्योरा क्या है? जितने उच्च अधिकारी हैं, वे तो सभी अवैतनिक है, फिर इतनी रकम क्या की जाती है?

यह सुनते ही सभापति ने खड़े होकर कहा—महाशय, यह तो सभा के काम मे पूरा विघ्न हो रहा है। कृपा कर आप बैठ जाइए।

चारो तरफ शोर मच गया—बैठा दो, निकाल दो, चुप कर दो।—उक्त महाशय गुस्से से आग-बबूला होकर उठकर बाहर चले गए।

सेक्रेटरी महाशय फिर रिपोर्ट पढने लगे। इसपर एक और आदमी उठकर कुछ कहने लगा।

सभापति ने कड़ककर कहा—महाशय ! इस भाति बारम्बार बेहूदे ढग से सभा के काम मे विघ्न करना अनुचित है। मैं उपस्थित भाइयो से पूछता हू : क्या आप इस बात को पसन्द करते है ?

चारो तरफ 'नही-नही' का शोर मच गया और वह आदमी भी उठ गया।

इसके बाद आश्रम के कार्यो के कुछ उदाहरण सुनाए गए :

रजवंती एक तेलिन थी। उसकी उम्र बाईस वर्ष की थी। उसका पति उसे अच्छी तरह नही रखता था। उसे आश्रम में आश्रय दिया गया, और सरकार से लिखा-पढी करके पति से उसे बेदखल कर दिया गया। फिर उसका विवाह एक अच्छे युवक से कर दिया गया। उसने २००) आश्रम को दिए।

एक मुसलमान स्त्री अजीमन स्टेशन पर कही जा रही थी। उसकी गोद मे एक बालक भी था। उसे हमारे उत्साही कार्यकर्ता गजपति जी आश्रम मे ले आए, और समझा-बुझाकर, उसे शुद्ध कर उसका विवाह एक युवक से कर दिया। उसके पति ने मुकदमा चलाया, पर जीत हमारी हा हुई।

गुलाबो वैश्य-कन्या थी। उसका पति कमाऊ न था। उसे खाने-पीने का कष्ट था। उसने हमारे परम श्रद्धास्पद डाक्टर साहब को पत्र लिखा कि मुझे कहीं ठिकाना करवा दो। बस, उसे वहा से किसी तरकीब से मगवा लिया गया और उसका विवाह उसकी पसन्द के आदमी से कर दिया।

राजो नामी एक तेईस वर्ष की स्त्री थी। वह व्यभिचारिणी हो गई थी। उसे कोई उपदेशक फुसला लाया था। कुछ दिन वह उसके घर मे रही। पीछे न जाने कैसे उसे शराब पीने की आदत पड गई। वह वहां से भाग आई और आश्रम में पहुचाई गई। यहां हमारे आदरणीय डाक्टर साहब ने उसे एकान्त में बहुत कुछ धर्मोपदेश दिया और उसे सुशिक्षा दी। पर वह दुष्टा डाक्टर साहब के ऊपर ही कुकर्म का दोषारोपण करने लगी। इसके बाद वह स्थिर हुई और उसका ब्याह एक योग्य पुरुष के साथ कर दिया गया। उसने उसके साथ असद्आचरण किया, तो वह फिर आश्रम मे आ गई। आश्रम की तरफ से उस पुरुष पर मुकदमा चला दिया

गया। उसने एक हजार रुपये देकर डरकर सुलह कर ली। आधा उसमे से आश्रम को दिया गया। अब फिर उस स्त्री का विवाह किया जाएगा।

इन उदाहरणो को सुनकर सभा मे हलचल मच गई, और लोग बारम्बार धन्यवाद देने लगे। सभापति की प्रशसाओं के पुल बंध गए; और सस्था की सदुपयोगिता की भूरि-भूरि प्रशसा की गई। इसके बाद ही चन्दे की वर्षा शुरू हुई और मेज पर रुपयो और नोटों का ढेर लग गया।

दो आदमी चुपचाप बातें करते सडक से जा रहे थे। सन्ध्या का समय था। एक ने कहा—बस, ठहर जाओ। यही वह घर है। वह खिड़की देखते हो, वही है वह।

"वह तो बन्द है।"

"अवश्य वह खोलेगी, मै तीन दिन से देखता हू। वह बार-बार इशारा करती है।"

"यार, क्यो बेपर की उड़ाते हो? ऐसे खूबसूरत भी नही हो, जो कोई औरत तुमपर मरे; फिर वह महलों मे रहनेवाली।" इतने मे खिड़की खुली और एक औरत उसमे दीख पडी।

उस आदमी ने मित्र की बात खतम होते ही कहा—देखो, वह देखो।

दोनो ने देखा—वह कुछ सकेत कर रही थी।

अब कुछ देर उधर देख, एक बगल खड़े होकर उनमें से एक ने संकेत किया। सकेत का उत्तर सकेत मे दिया गया। अब दोनो को सन्देह नही रहा। परन्तु एक ने कहा—भाई देखो, यह मामला कुछ और ही ढग का मालूम देता है, प्रेम का नहीं। वरना वह औरत दो आदमियो को सकेत न करती।—यह कहकर उसने फिर उस स्त्री को सकेत किया। स्त्री का सकेत पाकर उसने कहा—ठहरो, सब ठीक हुआ जाता है। अभी हमे एक पुलिस कान्स्टेबिल बुलाना पड़ेगा।—वह लपककर एक कान्स्टेबिल को बुला लाया। कान्स्टेबिल ने खिड़की की तरफ देखा, वह स्त्री वही खडी थी और सकेत कर रही थी। उसने कहा—जरूर यह औरत बदमाशों के अड्डे मे कैद है। ठहरो, पहले यह देखना है कि यह मकान है, किसका।

कान्स्टेबिल ने तुरन्त ही पता लगा लिया और उन आदमियो से कहा—तुम लोग यही रहो, मै थाने से मदद लेकर आता हूं, मकान पर धावा बोलना पड़ेगा।

थोडी ही देर मे दो कान्स्टेबिलो को लेकर पुलिस इन्स्पेक्टर आ गया, और सब लोग आश्रम के द्वार पर जा धमके। द्वार पर धक्के देने पर एक आदमी ने द्वार खोला। पुलिस को देखकर वह घबराकर बोला—आप क्या चाहते है ?

"मैनेजर साहब कहा है ?"

"डाक्टर जी है, वे भीतर है।

"उन्हे ज़रा बुलाओ !"

चपरासी भीतर गया। सुनकर डाक्टर साहब की फूक निकल गई। वे बाहर आए और बिलैया-डण्डौत करते हुए कहा कि कोई वारदात नही है।

"मगर मै मकान की तलाशी लेना चाहता हूं।"

"आप ऐसा नही कर पाएगे।"

इन्स्पेक्टर ने डाक्टर को पीछे ठेल दिया और वे घर में घुस गए। वे सीधे उसी कमरे मे पहुचे। बाहर ताला बन्द था। उन्होने कहा—इसमें कौन है ?

"इसमे एक बाबू साहब का सामान बन्द है।"

"वे कहां है ?"

"बाहर गए है।"

"इसकी ताली कहा है ?"

"वह उन्हीके पास है।"

"अच्छी बात है," इन्स्पेक्टर ने कान्स्टेबिल से कहा—ताला तोड़ दो।

डाक्टर साहब के विरोध करने पर भी ताला तोड़ दिया गया। देखा, उसमे तीन कोठरियो मे तीन स्त्रिया कैद थी। उन्होने बयान दिए कि हमे फुसलाकर लाया गया है और शादी करने को राजी न होने पर बन्द कर दिया गया है।

अधिष्ठाता जी उर्फ डाक्टर जी, उर्फ पिता जी, और धर्मपुत्री जी उर्फ अधिष्ठात्री देवी जी तथा गजपति जी और बलवन्त तथा उक्त तीन स्त्रियो को साथ ले पुलिस-इन्स्पेक्टर थाने को चल दिया। धर्मात्मा हवालात की शोभा-वृद्धि करने लगे।

कई स्त्रियो के गायब होने की रिपोर्ट पुलिस में प्रथम ही पहुची हुई थी। पुलस ने स्त्रियो से पूछकर उनके वारिसों को बुला लिया और सब सबूत तैयार होने पर मैजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा दायर किया गया।

मैजिस्ट्रेट के सामने पहुंचकर डाक्टर साहब ने गम्भीर धर्म-भाव धारण कर लिया। 'धर्मपुत्री' जी बडी सीधी गऊ बन गई। गजपति ने रोनी सूरत बना ली। तीनो स्त्रिया लज्जा से सिकुडी खडी थी। आखिर औरतो को उडाने, उन्हे बेचने और ज़बरदस्ती बन्द कर रखने का मुकदमा चला।

मैजिस्ट्रेट ने बारी-बारी से तीनो स्त्रियो के बयान लिए।

एक ने कहा—मेरा नाम रामकली है। मै हैदराबाद दक्खिन से आई हू। पर मेरा असली वतन कानपुर है। जात की ब्राह्मण हूं। मेरा पति हैदराबाद मे नौकर था, वह वही मर गया। तब एक पडौस के भले घर मे मै मिहनत-मजदूरी करके गुज़र करने लगी। उस घर के मालिक की मेरे ऊपर बुरी नज़र पडी, उन्होने मुझे तग करना शुरू कर दिया। अन्त मे उन्होने मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया। उन्होने बडे-बडे सब्ज़ बाग दिखलाए थे। पर थोडे ही दिनो मे उनका बर्ताव बदल गया। उन्होने मुझे पढने की सलाह दी, मुझे वह पसन्द आ गई। उन्होने कहा कि हम तुझे दिल्ली आश्रम मे भेजे देते है, वहा बहुत अच्छा बन्दोबस्त है। मैने स्वीकार किया। वे मुझे मन्त्री आर्यसमाज के पास ले गए। उन्होने मुझे लिखा-पढी करके यहा पहुचा दिया। यहा इन लोगो के रग-ढंग देखकर मै घबरा गई। मन्त्री जी ने कहा था कि वहां आर्यदेविया रहती है—विद्या पढाई जाती है, और सन्ध्या, हवन नित्यकर्म होते हैं। पर यहा देखा तो कुट्टनखाना है, गुण्डो का राज्य है। वे भले घर की बहन-बेटियो को फुसलाकर लाते है और दस-पाच दिन खिला-पिलाकर बेच देते हैं। मेरा भी सौदा होने लगा। दो-तीन आदमी भी बुलाए गए। रुपये भी वसूल कर लिए। पर मैं मर्दो की दुष्टता को जान चुकी हू। मै इनपर विश्वास नहीं करती, न उनकी दासी बनना चाहती हूं। फिर मेरी किस्मत मे जो होना था, हो गया। मै विद्या पढकर कही अध्यापिका की नौकरी करना चाहती थी, जिसमे गुज़र हो जाती। परन्तु ये लोग तो बेचने को पागल हो रहे थे। मुझे बहुत डराया-धमकाया, पर जब मैं राज़ी न हुई, तब बन्द कर दिया। मै सात दिन बन्द रही। दो बार मुझे पीटा भी गया। एक बार यह गजपति ज़बर्दस्ती करने को मेरी कोठरी मे घुस आया था, उससे बडी कठिनाई से जान बचाई। मैंने उसकी बाह मे काट खाया, उसका निशान अवश्य होगा। वह अधिष्ठात्री देवी कहाती है, पर पूरी चुडैल है। ये उसका जुल्म आंखो देखती और खिलखिलाकर हसती थी। नित्य ही यहा ऐसा होता है। उस दिन से मुझे खाना भी नही दिया गया था और मार

डालने की धमकी दी जाती थी।

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारी उम्र क्या है?

रामकली—बाईस वर्ष हुजूर।

मैजिस्ट्रेट—तुम्हारे पास कुछ गहना और दूसरा सामान भी था, जब तुम आई थी?

रामकली—जी हा हुजूर, दो अदद सोने तथा चार अदद चादी के गहने थे, सबकी कीमत दो सौ रुपये होगी। वे सब इन्होने छीन लिए। वहां कोष मे जमा होगे।

मैजिस्ट्रेट—और कपड़े वगैरह?

रामकली—वह सब छीन लिया।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा, तुम इधर बैठो। दूसरी लड़की को लाओ।

दूसरी लडकी ने आकर बयान किया :

"मेरा नाम चम्पा है। उम्र अठारह वर्ष की है। जाति की वैश्य हू। मेरे पिता बरेली मे पुलिस-इन्स्पेक्टर थे। मै सात-आठ वर्ष की थी, तब कुछ लडकियो के साथ खेल रही थी। इतने मे एक आदमी आया, वह फुसलाकर हमे तमाशा दिखाने के बहाने थोडी दूर ले गया। हम तीन लड़किया चली। थोडी दूर पर उसने एक तागा रोककर कहा—लो इसपर बैठकर चलो, जल्दी पहुच जाएगे।—हम लोग तांगे पर बैठ गए। उसने एक मकान मे हमे छोड़ दिया, वह बहुत बड़ा मकान था और उसमे बहुत-सी लडकिया थीं। हम कुछ दिन घर की याद मे रो-पीटकर वहा रहने लगीं। बहुत दिन बीत गए और हम घर को भूल गई। एक बार एक पजाबी-सा मोटा-ताजा आदमी मेरे पास लाया गया। वह मुझे घूर-घूरकर देखने लगा। पीछे पता लगा कि इससे मेरी शादी होगी। मै डर गई। उस आश्रम मे एक कहार का लड़का नौकर था, उसने कहा कि मेरे साथ शादी करो तो मै तुझे यहा से निकाल दू। मैं राजी हो गई और वह वहा से एक दिन शाम को मुझे निकालकर, रेल में बैठाकर मथुरा ले आया। हम लोग धर्मशाला में ठहर गए। न जाने कैसे पुलिस ने भाप लिया कि यह भगाकर ले आया है। पुलिस उसके पीछे पड़ी। वह भाग गया, मै अकेली रह गई। कहा जाऊ, यह कुछ न बता सकी। पिता का स्मरण भी न था। कहां हैं, कौन है। लाचार कुछ लागों ने मुझे वहा के विधवाश्रम मे भेज दिया। फिर वहा रहने लगी।

"पर यहां के हालात बडे गन्दे थे। खुला व्यभिचार होता था। पुलिसवाले आते और उन्हे लडकिया रात-भर को सौप दी जाती थीं। एक बार पुलिस इन्सपेक्टर को मेरे कमरे मे भेज दिया। मैं भय से थर-थर कांपने लगी। पेशाब का बहाना कर छत पर से कूदकर भागी। कुछ देर तो जमुना किनारे घाट पर छिपी रही, पीछे स्टेशन पर आई। वहां यह आदमी गजपति मुझे मिला। इसने मेरी सब कहानी सुनकर कहा कि तेरे बाप को मैं जानता हू। चल मैं तुझे वहा पहुंचा दूं। यह मुझे दिल्ली ले आया और यहा आश्रम में रख दिया।

"यहा भी वही हाल देखा। पर इस बार मैं अपने को न बचा सकी। इस गजपति ने मेरा धर्म बिगाड़ दिया। यह रात-दिन वहीं रहता है और बिना इसकी इच्छा पूरी किए कोई लड़की अपनी इच्छानुसार काम नही कर सकती। यह बडा निठुर नर-पशु है, नित्य ही दो-चार शिकार पकड लाता है। डाक्टर बूढा घाघ है, बेटी-बेटी करके ही सब कुकर्म करता है। उस दिन मुझसे कहा कि मेरे यहा रोटी पकाने के लिए आ जाना। जब गई तो बुरी-बुरी बातें कहने लगा। मैं वहा से अकेली ही भाग आई। अधिष्ठात्री देवी उनकी पुरानी चुड़ैल हैं। उन्होने सब्ज बाग दिखाकर मुझे शादी करने को लाचार कर लिया। मैं राज़ी हो गई। गहने, कपड़े, रुपये मिलने की आशा थी। वह आदमी मेरठ के पास किसी देहात का बनिया था। लोहे का काम करता था। उसकी औरत मर चुकी थी और उसे गर्मी की बीमारी हो गई थी। मुझे उससे बड़ी घृणा थी। पर वह मेरी बडी आवभगत करता था। यह बात तय हो गई थी कि गजपति अमुक दिन वहां जाएगा और मौका पाकर उड़ा लाएगा। यही हुआ, और फिर मै यहा लाई गई। वह भी आया। झगड़ा हुआ तो उसे डरा दिया कि तुमने लडकी को मार डालने की कोशिश की है, तुमपर फौजदारी चलेगी। बेचारा भाग गया।

"फिर दूसरी जगह मेरा ब्याह कर दिया गया। और वहां से भी उसी भांति भगा लाई गई। पर इस बार जिससे ब्याह हुआ था, वह आदमी मुझे पसन्द था; पर ये लोग ज़बरदस्ती ले आए। मैंने अपने गहने, कपड़े, रुपये मांगे और पति के पास जाना चाहा तो इन्होने मुझे मारा और बन्द कर दिया। छह दिन से मैं बन्द हूं। गजपति रोज़ रात को मेरा धर्म नष्ट करता है, उससे मेरी पार नही बसाती।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे गहने, कपड़े, रुपये कहां हैं?

चम्पा—हुज़ूर, इन्हीके पास हैं।

मैजिस्ट्रेट—डाक्टर को मालूम है ?

चम्पा—हुजूर, उसीके हुक्म से वे छीने गए है।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा हटाओ, तीसरी को बुलाओ।

तीसरी ने आकर बयान दिया :

"मेरा नाम गोमती है। आयु पच्चीस वर्ष, जात वैश्य, रहनेवाली ज़िला अलीगढ की हूं। मेरे पति है, ससुर है और परिवार के लोग है। मैं राजघाट स्नान करने आई थी, वहा साथवालियो से भटक गई। यह गजपति मुझे माता-माता कहकर साथ ले आया। कहा—हम स्वयसेवक है। चलो घर पहुचा दे।—इसके साथ दो औरतें और थी। कहा—इन्हे पहुचाकर तब तुम्हे पहुचाएगे।—मै क्या करती, चुप हो रही। यह मुझे दिल्ली ले आया। यहा रख दिया। यहां का हाल देख-देखकर मै रोती और तकदीर ठोंकती थी। पर डाक्टर ने कहा—देखो, हमने तुम्हारे पति को तार दिया कि इसे ले जाओ, तो जवाब आया है कि वह अब हमारे की नही। कहो, अब क्या कहती हो ?—मै खूब रोई और मरने को तैयार हो ग तब इन्होने धीरज दिया और एक महीने बाद मुझे मजबूर करके ब्याह कर दिया मैने समझा, जो तकदीर मे होना था, वही हुआ। मै चली गई। पीछे यहा एक आदमी दौडा गया और बुलाकर फिर ले आया। यहां आने पर पता लगा कि मेरे पति को पता लग गया था और वे पुलिस लेकर यहा आए थे, पर लौट गए ये मुझसे एक लिखे हुए कागज़ पर दस्तखत कराना चाहते है, पर मै नही करती मैं वहा भी नही जाना चाहती, जहा इन्होने मेरा ब्याह किया था। मै अपने जाना चाहती हूं। इसलिए इन्होने मुझे बन्द कर रखा है। मुझे बन्द किए दस दिन हो गए। मैं खिड़की से नित्य राह चलतो को इशारे करती थी कि कोई छु आखिर पुलिस ने आकर हमे छुड़ाया।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे साथ भी कुछ गहना आदि था ?

गोमती—जी हुजूर, मेरे पास दो हजार के लगभग गहना था, वह सब इसने जमा करने के बहाने ले लिया।

"अच्छी बात है।" मैजिस्ट्रेट ने उसे बैठाकर कहा—अब गवाहो को बुलाओ।

पुलिस-इन्स्पेक्टर ने गवाही दी :

"मैं अमुक थाने मे इन्स्पेक्टर हूं। अमुक नम्बर के कान्स्टेबिल के कहने से आश्रम के मकान पर धावा मारा। ये लड़किया ताले मे बन्द मिली। तलाशी

ह नकदी, जेवर और कागजात मिले। इन्हे लड़कियो ने शिनाख्त से अपना बताया है।"

इसके बाद और भी दो-तीन गवाही लेकर मैजिस्ट्रेट ने कहा—अच्छा, अभियुक्त क्या कहना चाहते हैं ?

डाक्टर ने बयान दिया :

"हुजूर, मैं पुराना आर्यसमाजी हू । सब लोग मुझे जानते है। मैं कभी झूठ नही बोलता। नित्य सन्ध्या-हवन करता हू । ये लड़किया और गवाह झूठे है। विधवाश्रम बड़ी पवित्र सस्था है। स्त्रियो का उद्धार करना उसका उद्देश्य है। ये देखिए, छपे हुए सर्टिफिकेट हैं, जो बड़े-बड़े लोगो ने दिए है। मैं सबको धर्मपुत्री समझता हू। विवाह उनकी राजी पर ही होते है। गहने-कपड़े मैं सब देने को तैयार हू। मेरा उद्देश्य अधर्म का नही, धर्म का है! धर्म की जय होती है! यही ऋषि दयानन्द का मिशन है।"

गजपति ने कहा—मैं इस मामले मे कुछ नही जानता, सिर्फ क्लर्की करता हू!—अन्य अभियुक्तो ने भी इन्कार कर दिया।

मैजिस्ट्रेट ने फैसला लिखा :

"इस मुकदमे के सम्बन्ध मे मेरी मुख्तसिर राय है कि ऐसे ही पाखण्डियो से सच्चे धर्म का अनिष्ट होता है। धर्म चाहे सनातन हो, चाहे आर्यसमाजी, या कोई भी समाजी—यदि उसमे सरलता, सत्यता और श्रद्धा तथा विश्वास है, तो वह प्रशसनीय है। मै यह जानता हू कि प्रत्येक मत में कुछ सच्ची लगन के सत्यवक्ता धर्मिष्ठ आदमी है, जो वास्तव मे प्रशसा के योग्य है। इसके सिवा सभी सम्प्रदायो मे कुछ पाखण्डी लोग भी होते है, जो भीतर कुछ और बाहर कुछ और होते र अभियुक्तो जैसे पेशेवर अपराधियो की श्रेणी तो पृथक् ही है। ये न केवल र अपराधी ही हैं, प्रत्युत उसे किसी समाज या धार्मिक सस्था की आड़ मे पाकर, उस सस्था का गौरव भी नष्ट करते है। निस्सन्देह समाज के लिए ऐसे आदमी कलकरूप हैं।

"यह बात सच है कि हिन्दू-समाज मे स्त्रियो की दुर्दशा का अन्त नही है और वे चारो तरफ से प्रताडित होकर असहाय हो जाती हैं। उनकी सहायता के लिए ऐसे आश्रमो की स्थापना एक उच्चकोटि के अस्पताल से कम पवित्र सस्था नही। मै यह भी स्वीकार करता हू कि ऐसी सस्थाओं का सम्पर्क बहुधा भयानक,

पतिता स्त्रियो से पड़ना बहुत कुछ स्वाभाविक है और उनके साथ थोडा अनैतिक व्यवहार होना भी असम्भव नही। विधवाओं के विवाह की उपयोगिता का कौन बुद्धिमान समर्थन नही करेगा ! परन्तु अच्छी-बुरी सभी स्त्रियो को अवैध उपायो से फुसलाकर इकट्ठा करना, उनके आचरण सुधारने तथा उन्हे शिक्षिता करने का कोई उद्योग न करके, रुपया लेकर लोगो को बेच देना, यही नही, उन्हे फुसलाकर वापस बुलाना और दुबारा-तिबारा बेचना भयानक अपराध और जघन्य पाप है, खास कर जब वह ऐसे आदमियो के द्वारा किया जाए, जिनपर जनता विश्वास करती और सत्पुरुष समझती है ! यह सम्भव है कि सस्था को गुण्डो और दुष्ट स्त्रियो से साबका पड़ता रहे, पर यह उचित नही कि वह गुण्डो के हाथ मे आश्रम को सौप दे, गुण्डों को अधिकारी बनाए। अभियुक्तो पर जो आरोप प्रमाणित हुए हैं वे संगीन हैं और ऐसे आदमी समाज के लिए बहुत भयानक है। मैं इन्हे इनकी दुष्टता के लिए डाक्टर सुखदयाल को दो वर्ष और अन्य लोगो को नौ-नौ मास का सपरिश्रम कारावास की सजा देता हू।"

दण्डाज्ञा सुनते ही डाक्टर साहब तो उसी भाति टेढ़ी गर्दन करके और बूढ़े बकरे की भाति दांत निकालकर हस दिए। परन्तु अधिष्ठात्री जी धाड़ मारकर रो दी। गजपति भी गुस्से से होठ चबाने और गालियां बकने लगा।

पुलिस ने सबको पकड-पकड़कर सीखचो मे बन्द कर दिया ! और तीनों स्त्रिया मय अपने सामान के स्वाधीन हो और एक बार 'पिता जी नमस्ते' का व्यग्य करके अपनी राह लगी !